गजेन्द्र व्याख्यान माला

तीसरा भाग

प्रवचनकार

जैनाचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब

सम्पादक

गजसिंह राठोड

प्रेमराज बोगावत

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक

बापू बाजार, जयपुर-3

प्रकाशक
प्रचारक मण्डल
बापू बाजार, जयपुर-३०२००३

प्रथम संस्करण १०००
वीर नि स २५०३

अल्प मूल्य ३) रु०

आवरण श्री पारस भसाली

मुद्रक पॉपुलर प्रिन्टर्स
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

ार्थिं सहा

शाह लालचन्द, मोतीलाल, बाबूलाल, गनपतलाल,

जितेन्द्र कुमार श्रीश्रीमाल

बेटा-पोता श्री नवलमलजी

बालोतरा (राजस्थान)

दूरभाष-१७२

प्र ाश ीय

परम पूज्य ˏ ' ' श्री हस्तीमलजी महाराज साहब के प्रबल प्रेरणाप्रदायी प्रवचनों के प्रकाशन की सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल द्वारा हाथ में ली गई योजना के अन्तर्गत ˜त की जा रही गजेन्द्र व्याख्यान माला' के द्वितीय पुष्प के साथ ही इस तृतीय पुष्प को भी सहृदय पाठकों की सेवा में समर्पित करते हुए हमें परमाह्लाद की अनुभूति हो रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में इसी वर्ष–ई0 सन १६७६ के बालोतरा चातुर्मास के समय पर्वाधिराज पर्युषण के प्रथम सात दिनों में श्रद्धेय आचार्यवर श्री हस्तीमलजी महाराज सा द्वारा कपापूर्वक फरमाये गये ७ दिनों के व्याख्यान प्रकाशित किये गये हैं। महापर्व के आठवें दिवस (सवत्सरी) का व्याख्यान इसमें इसलिये सम्मिलित नहीं किया गया है कि इस व्याख्यान माला के प्रथम भाग में सवत्सरी महापर्व के सम्बन्ध में विशद विवेचन सहित शोधपूर्ण ढग से गत वर्ष ब्यावर के चातुर्मास काल में आचार्य श्री द्वारा फरमाया गया व्याख्यान दे दिया गया था। सवत्सरी के सम्बन्ध में आज तक जितने भी तथ्य उपलब्ध हो सके हैं, वे प्राय सभी प्रमुख तथ्य उस व्याख्यान में समाविष्ट हो गये हैं। पिष्टपेषण न हो, इसी दृष्टि से इस वर्ष की सवत्सरी का व्याख्यान सकेतलिपि में लिपिबद्ध ही नहीं करवाया गया।

जैन समाज के सर्वांगीण समभ्युदय और मुख्यरूपेण नैतिक एव धार्मिक धरातल को समुन्नत करने की उत्कट हितकामना से आचार्यश्री ने इन सात दिनों में कृपा कर जो प्रवचन फरमाये, वे बडे ही प्रेरणाप्रदायी, पथप्रदर्शक और बडे ही अन्तस्तलस्पर्शी हैं। इनमे न कोई कहानी है और न कोई चटपटा चुटकला ही। इनमे तो केवल अध्यात्म–साधनापूत आत्मानुभूति के अक्षयहृद से उद्‌भूत पतितपावनी, पीयूषतोया वाग्गगा की कल–कलनिनादिनी वह सुधारसधारा है जिसके लव-कण मात्र के रसपान से ककर के समान दर-दर की ठोकरें खाने वाला प्राणी भी शिव-शकर पद का अधिकारी बन सकता है। आचार्यश्री का एक-एक वाक्य, एक-एक शब्द हृत ती को झकत कर अन्तर की आँखों को उन्मीलित कर देने वाला, निराश, निष्कर्मण्य मानव की शिथिल पडी धमनियों में विद्यु‌त्वेग भर देने वाला और प्रत्येक व्यक्ति को साधना के पथ पर हठात् आरूढ एव अग्रसर होने के लिये प्रोत्साहित करने वाला है।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक साधक को प्रारम्भिक साधना से लेकर चरम लक्ष्य प्राप्त कराने वाली साधना तक का मार्ग-दर्शन मिलेगा। इसके साथ ही इसमें आदर्श गृहस्थ बनने आदर्श समाज का निर्माण करने और धर्म की आधारभित्ति को सुदृढ एव सुदीर्घ काल तक स्थायी बनाने के उपायों पर भी विशद प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में श्री गजसिंह राठोड और श्री प्रेमराज जी बोगावत ने श्रम किया, उसके लिये मण्डल इन दोनों विद्वानों के प्रति आन्तरिक आभार प्रकट करता है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में बालोतरा निवासी उदारमना, धर्मनिष्ठ सुश्रावक सर्वश्री शाह लालचन्द जी, मोतीलाल जी, बाबूलाल जी, गनपत लाल जी और जितेन्द्र कुमार जी श्रीश्रीमाल, बेटा-पोता श्री नवलमल जी, ने जो आर्थिक सहायता प्रदान की है, उसके लिये मण्डल इनके प्रति हार्दिक कतज्ञता प्रकट करता है।

प्रस्तुत पुस्तक की सुन्दर एव स्वच्छ छपाई में पॉपुलर प्रिन्टर्स, जयपुर के सचालक श्री महावीर जी गोयल, फोरमेन श्री सीताराम जी एव प्रेस के कर्मचारियों का सराहनीय सहयोग रहा अत मण्डल उन सब के प्रति बडा आभारी है।

सुविज्ञ पाठक आचार्य श्री के इन प्रेरणा-प्रदायी प्रवचनों से अनुप्राणित हो सामाजिक एव धार्मिक सेवा के क्षेत्र में अग्रणी बन स्व-पर-कल्याण में उत्तरोत्तर अधिकाधिक सफलता प्राप्त करें, इसी आशा और शुभकामना के साथ

सोहननाथ मोदी
अध्यक्ष

चन्द्रराज सिंघवी
मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार,
जयपुर—३०२००३

पि ।

सहृदय पाठक कृपया प्रत्येक व्याख्यान के प्रारम्भ मे दिये हुए उस दिवस के नामकरण विषयक शीर्षक की ओर ध्यान न दें। प्रूफ रीडर के प्रमाद से वे शीर्षक व्यवस्थित रूप में नही छप सके हैं। इस अनुक्रमणिका को ही क्रमश उन व्याख्यानो का शीर्षक समझे। पृष्ठ १०४ के मुख्य शीर्षक मे जो "चतुर्थ दिवस का प्रवचन" छप गया है, वहा चतुर्थ के स्थान पर पचम पढें।

सम्पादक

न्द्र व्याख न ाला

(भाग ३)

पर्वाधिराज पर्युषण के प्रथम दिवस

'दर्शन-दिवस'

का प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा' सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृतिकान्तिकीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र दिश ।

पीयूषवर्षी पर्वाधिराज

बन्धुओ !

महान् आनन्द और उल्लास का समय है कि आज परम मगल की साधना कराने वाला, पाप-सन्ताप से सतप्त जगजीवो को कल्याण, हित व शान्ति प्रदान करने का निमित्त और सुख शान्ति प्राप्त कराने का साधन परम पावन पर्वाधिराज पर्युषण आप और हम सब के समक्ष उपस्थित हो गया है । इसकी शीतल छाया मे देव, दानव, मानव, पशु, पक्षी और ससार के प्राणिमात्र शान्तिलाभ किया करते है ।

वीतरागवाणी की विशेषता

भगवान् महावीर का निर्वाण हुए लगभग २५०२ वर्ष का समय बीत गया, फिर भी जिन-शासन जयवन्त रहा है। जन-जन के तन-मन के ताप-सताप को दूर करने मे समर्थ वीतरागवाणी आज भी भू-मण्डल पर गूँज रही है। वह वाणी आज भी जग-जीवो को आत्मकल्याण कराने मे समर्थ हो रही है। केवल भगवान् महावीर की विद्यमानता मे ही, उनकी छत्र-छाया मे ही यदि ससार के जीव कल्याण कर पाये तो इसमे विशेषता क्या ? महावीर की विशेषता और उनकी वाणी का महत्व तो यह है कि उनके परोक्ष मे भी ससार के प्राणी उनकी वाणी का आलम्बन ले आत्मकल्याण करते आ रहे हैं।

क्रिया-सिद्धि मे काल आदि साधन

कार्य सिद्धि के लिये काल, स्वभाव, कर्म और नियति—ये चार साधन माने गये है। षड् द्रव्यो मे काल की भी गणना की जाती है। यद्यपि काल धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के समान अस्तिकाय नही है तथापि इसे द्रव्य जरूर माना गया है। अन्य द्रव्यो के समान काल जड होते हुए भी कार्य-सिद्धि मे साधन होता है, क्रिया-सिद्धि के लिये वातावरण पैदा करता है अत जड होने पर भी क्रियासिद्धि मे साधन माना गया है।

जड द्रव्य, चेतन का भोग्य है, भोक्ता नही। काल भी इसी प्रकार क्रियासिद्धि के लिये हमारे उपयोग मे आता है अत साधन है पर उसमे स्वतन्त्र कर्तृत्व नही। काल मे कर्तृत्व नहीं, कर्तृत्व चेतन मे है। फिर भी चेतन के कर्तृत्व मे जड को साधन माना गया है।

इस प्रकार क्रियासिद्धि के लिये काल, स्वभाव, कर्म और नियति-ये चार साधन है और पाचवा कर्त्ता है पुरुष। पुरुष कोई भी क्रिया करता है, चाहे वह अच्छी क्रिया करे अथवा बुरी, उसमे सहायक निमित्त के रूप मे काल, स्वभाव, कर्म और नियति—इन चारो का सम्बन्ध जुडना चाहिये, तभी क्रिया सिद्ध होगी। ये चारो ही साधन अगर मौजूद हो और कर्त्ता-चेतन न हो तो काम नही हो

सकता। इसी प्रकार कर्त्ता तो विद्यमान है पर ये चार साधन नही हो तो उस दशा मे भी काम नही हो सकता, क्रियासिद्धि नही हो सकती। कार्यसिद्धि के लिये काल, स्वभाव, कर्म और नियति इन चारो साधनो और पाँचवे कर्त्ता चेतन —इन पाँचो की आवश्यकता रहती है। शास्त्रीय भाषा मे इसी को समवाय कहते हैं। तो हमारा आपका यह सद्‌भाग्य समझना चाहिए कि हम कर्त्ता हैं और हमे काल, स्वभाव, कर्म और नियति—इन चारो साधनो को उपयोग मे लेने का अवसर मिला है। काल की दृष्टि से कार्यसिद्धि के लिये हमे वर्षाकाल—चातुर्मास काल का लाभ मिला है। वर्षाकाल धर्म-साधना के कारणो मे सबसे अधिक अनुकूल कारण माना गया है।

कार्यसिद्धि का दूसरा साधन

काल के पश्चात् दूसरा साधन है स्वभाव। स्वभाव की दृष्टि से भव्यपन एक स्वभाव है। मोक्ष-प्राप्ति के लिये साधना करने वालो मे भव्यपन का स्वभाव होना चाहिये।

तीसरा साधन

काल और स्वभाव के पश्चात् तीसरा साधन है कर्म। शुभ कर्म का उदय हो तो धर्म-साधना के योग्य कुछ क्रिया कर सकेंगे और यदि अशुभ कर्म का उदय हुआ तो सब प्रकार का सुयोग मिल जाने पर भी उस सुयोग का लाभ नही ले सकेंगे। आप सब को धर्म-साधना का यह सुयोग मिला है। पर क्या आपके यहा कुछ ऐसे भाई बहिन नही है जो स्वय बीमार पडे हो अथवा उनके आत्मीय, निकट सम्बन्धियो मे से कोई बहिन अथवा भाई बीमार पडे हो और वे घर मे पलग पर पडे सोचते हो कि अशुभ कर्म के उदय से धर्म-साधना का ऐसा सुयोग मिलने पर भी हम इस लाभ से वचित हो रहे हैं ? आपके यहा कुछ ऐसे भाई भी होगे जो काम-धन्धे के कारण बाहर ही रह गये। चातुर्मास के समय मे उनकी बालोतरा आने की भावना थी, सेवा करने की भावना थी पर बाहर काम-धन्धे मे उलझ गये और यहा नही आ सके। उनका क्या अनुकूल नही है ? धर्म-साधना के लिये कर्म का कुछ अनुकूल सम्बन्ध नही है।

चौथा साधन

काल, स्वभाव और कर्म के पश्चात् चौथा साधन है नियति। चौथी वात है नियति। नियति का अर्थ है भवितव्यता-निश्चय। इसकी अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता कार्यसिद्धि के पश्चात् ही ज्ञात होती है।

इन चारो साधनो को अनुकूल मान कर—अनुकूल वना कर साधक धर्मसाधना की क्रिया करता है तो अन्ततोगत्वा कर्म-बन्धनो को काट कर परमपद-मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। सुयोग भी मिला, सावन भी मिले पर कर्त्ता क्रिया नही करे तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर सकता।

अन्तकृत् दशा और पर्वराज

अभी मगलमय अन्तगडदशा का वर्णन हमारे सामने चल रहा था, उसमे वताया कि भगवान् नेमिनाथ के सयोग को पाकर, काल, स्वभाव और कर्म की अनुकूलता से गौतम जैसे राजकुमार ने अपना जीवन साधना मे लगाया, साधना की क्रिया भी अनुकूल की। जिसके फलस्वरूप नियति भी अनुकूल दिखने लगी और वह आठो कर्मो को काट कर परम पद का अधिकारी वन गया।

आपको, हमको और उपस्थित सभी भाई बहनो को भी वधन काटने है। वन्धनो को काटने का रास्ता क्या है? पर्यू षण के आठ दिनो मे आठ गुणो को चमकाना है, ८ कर्मो के वन्धनो को ढीला करना है—काटना है, ८ मदो को गलाना है, इसीलिये पर्यू षण पर्वाधिराज के ८ दिन रखे हैं। प्राचीन काल मे किसी समय सन्त-जीवन की साधना मे एक दिन का पर्यू षण होता था। पर फिर कालान्तर मे आचार्यो ने सोच-विचार कर ७ दिन भूमिका के लिए जोडे। एक दिन साधना का और सात दिन भूमिका के रख कर आठ दिन का पर्यु षण पर्व मनाना आरम्भ किया।

मानव जीवन की विशेषता

'जीवाभिगम सूत्र, मे तो उल्लेख आता है कि पर्वाधिराज के प्रसग पर देव-देवियो के समूह नन्दीश्वर द्वीप मे आते और

भक्ति-स्तुति करते है। वे भक्ति-स्तुति-गुणग्राम का एक ही रास्ता पकड कर पुण्य का उपार्जन कर सकते है। देवगण सवर-निर्जरा का कोई लाभ नही ले पाते। वे कर्मो को नही काट सकते। वे तो देव-गुरु का गुणग्राम कर, तपस्वियो की सेवा कर, तपस्या को दीप्त कर पुण्य का अर्जन करते हैं और इसी मे अपना जीवन सफल मानकर सतोष करते है। वे किसी तपस्वी की तपस्या को दीपायमान करने के लिये स्वर्ण-वृष्टि, वस्त्र-वृष्टि, पचदिव्यो की वृष्टि कर "अहोदान", "अहो तप" की घोषणा कर अपना जीवन धन्य मान लेते हैं। पर मनुष्य के पास देवगण से एक डग आगे वढने का भी सामर्थ्य है। मानव चारित्र-धर्म की साधना द्वारा अपने समस्त वन्धनो को काट जन्म-जरा-मृत्यु के दु खो से सदा-सर्वदा के लिए छुटकारा पा परम पद मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सच्ची शासन प्रभावना

आप शायद सोचते होगे, कुछ भाई ऐसा सोचा करते है कि पहले जमाने मे देवता बरसाते थे फूल तो आज हम क्या करें? हवाई जहाज का जमाना है, भगवान् महावीर के शासन को दीपाना है, चमकाना है, आचार्य महाराज आये हैं तो हम भी हवाई जहाज से फूल क्यो नही बरसाये? पाच-दस वर्ष मे यह सिलसिला चला है कि आचार्य महाराज पधारे है तो विमानो से फूल वरसावें। वे लोग नजीर देते हैं कि देवता भी तो आकाश से फूल बरसाते थे। वे ऐसा करते समय भूल जाते हैं कि देवता अव्रती हैं और आप (वे) व्रती हैं। देवता अचित्त फूल भी वरसाते थे और आप सचित्त फूल बरसाते है।

आपको शासन-प्रभावना के कार्य करने हैं तो अनेक रास्ते हैं, जिनसे आप सच्चे अर्थ मे शासन की प्रभावना कर सकते है। इस प्रकार व्यर्थ ही द्रव्य लुटाकर थोथा आडम्बर दिखाना, यह कोई बुद्धिमत्ता नही है। देवता पुण्य का वन्ध कर सकते हैं। पर आप तो अनेक शुभ कार्य कर कर्मो की निर्जरा भी कर सकते हैं। मन, वचन और काया के शुभ योगो से आप पुण्य का अर्जन भी कर सकते हैं और निर्जरा भी। मन, वचन, काया के शुभ योगो से कुल मिला

कर पुण्य-बध के ९ साधन हैं, उन पर प्रकाश डालने का अभी प्रसग नही है। आपके पास तीनो ही साधन हैं। आप पुण्य भी कर सकते है, सवर द्वारा सयम का पालन भी कर सकते ह और कर्मो की निर्जरा भी कर सकते है। यो इन तीनो के उपार्जन का रास्ता आपके पास है। पाप से बचना है तो पाप से बचने के लिए मन, वचन और काया के योगो को शुभ मे लगाइये, जिससे आपके अशुभ कर्म कट जायेगे। अशुभ वृत्तियो को रोकेगे तो सवर हो जायगा, निर्जरा हो जायगी। यह सब कब करना है? साधारणत सदा ही और विशेपत पर्युपण के दिनो मे।

पर्वाधिराज और हमारा कर्त्तव्य

पर्युषण के दिनो मे ८ कर्मो के बधनो को ढीले करना है, ८ मदो को गलाना है, पर्युपण के आठ दिनो मे ८ गुणो को चमकाना है, ८ समितियो को पुष्ट बनाना है। आप सोचते होगे कि समितिया तो पाच ही होती है, महाराज ने आठ समितियाँ कैसे बताई? स्थानाग सूत्र के आठवे स्थान मे मन समिति, वचन समिति और काय समिति को भी समितियो मे गिना गया है। ये पर्वाधिराज के दिन कल्याण के दिन है, समिति के दिन है। यहाँ मन-समिति से रहेगे तो कर्मो की निर्जरा करेगे। वचन-समिति से रहेगे तो धर्म सभा को, व्याख्यान को शान्ति से चलने देने मे सहायक होगे, धर्म-सभा मे किसी प्रकार का व्यवधान नही होगा और काय-समिति मे रहेगे तो किसी से किसी प्रकार का टकराव नही होगा, किसी प्रकार का सघर्ष नही होगा।

समिति-माँ की गोद

समिति के नाम से कई लोग चौकते है, मानो इनमे कोई खतरा हो, पर वस्तुत समितियो मे किसी प्रकार का कोई खतरा नही है। जिस प्रकार माँ की गोद मे बच्चे को कोई खतरा नही, उसी प्रकार समिति माता की गोद मे किसी प्राणी को कोई खतरा नही। बच्चा जब तक माता की गोद मे हे, माता के पास है तब तक उसे किसी प्रकार का डर नही, कोई खतरा नही। चाहे बरसात पडती

है, सर्दी है, गर्मी है, माता की गोद मे बच्चे को कोई डर नही । चाहे कोई हिंसक जानवर आय, चाहे कोई हमलावर आय और बच्चा माँ की गोद मे है तो हर प्रकार के खतरे को माता झेलेगी, प्रत्येक खतरे का प्रत्येक डर का माता मुकाबला करेगी, बच्चे को किसी प्रकार का खतरा नही होने देगी । ठीक इसी प्रकार आठ समितिया माताए हैं । आप जब तक समिति माता की गोद मे रहेगे तब तक आपको कोई खतरा नही हो सकता, किसी प्रकार का डर नही हो सकता । समिति माता की गोद मे न आपको लडाई-झगडे का खतरा रहेगा, न किसी प्रकार के दु ख का खतरा रहेगा और न किसी प्रकार के बध का ही खतरा रहेगा । समिति माता की गोद मे आप सदा निर्भय रहेगे, सुरक्षित रहेगे, आनन्द मे रहेगे । असमिति मे पग-पग पर खतरा ही खतरा है पर समिति मे कोई खतरा नही है ।

अत इन आठ समिति माताओ की गोद मे रहते हुए पर्वाधिराज पर्यु षण के इन आठ दिनो मे आपको आठ गुणो को चमकाना है । उन आठ गुणो मे से मैं पहले आपको ज्ञान, दर्शन, चारित्र—इन तीन गुणो के सम्बन्ध मे समझाने का प्रयास करू गा ।

ज्ञान बिना नहीं भान

पर्वाधिराज का आज का यह पहला दिन ज्ञान-दिवस है । ज्ञान का विस्तार तो इतना है कि इस पर लगातार कई दिनो तक बोला जाय तो भी ज्ञान पर पूरी तरह से प्रकाश डालना सभव नही । हमारे जैसे छद्मस्थ भी ज्ञान के विषय मे कई दिन तक बोलें फिर भी ज्ञान का कही पारावार नही है । मैं एक पोइन्ट को लेकर, एक विचार को लेकर ज्ञान के विषय मे कहना चाहूगा ।

"बोध करो"

सूत्रकृताग की पहली गाथा मे आता है

> बुज्झेज्ज तिउट्टे ज्जा, बधण परिजाणिया ।
> किमाह बधण वीरो? किं वा जाण तिउट्टइ? ।।

इस गाथा की शिक्षा है—वुज्झेज्ज वधण—अर्थात् वधन का वोध करो। वधण परिजाणिया—वधन को अच्छी तरह जान कर समझ कर—वधण तिउट्टिज्जा—वधन को काटो। किमाह वधण वीरो? अर्थात् वीर प्रभु ने वधन क्या कहा है और—"किं वा जाण तिउट्टई ?" क्या जान कर वधन काटा जाता है। यह जानो और जान कर वधन काटो।

आप यहा किस लिये आये है ? ध्यान रखना वन्धन वाधने के लिये नही आये है। वन्धन काटने के लिये यह सत्सग का स्थान है।

इस गाथा का तात्पर्य ध्यान लगा कर सुनना।

किमाह वधण वीरो, किं वा जाण तिउट्टइ?॥

भगवान् महावीर ने वन्धन किसे कहा है ? सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान—केवल दर्शन द्वारा जान कर और देख कर कहा है अत उनका कहना ही सत्य हो सकता है। उन अथाह करुणासिन्धु भगवान् महावीर ने—'वन्धन क्या (किसे) कहा है और उस वन्धन को क्या क्या जान कर, किन किन वातो का ज्ञान प्राप्त कर तोडा जाता है, इन सव वातो का वोध करो। भगवान् महावीर द्वारा वन्धन के सम्वन्ध मे तथा वन्धनो को काटने के सम्वन्ध मे कही गई वातो को जान कर, उनका ज्ञान प्राप्त कर वन्धनो को काटो।" यही इस गाथा मे वताया गया है।

आप हम पहले इसका ज्ञान करेगे कि वधन क्या है और किन किन वातो को जानकर, किस प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर उन वधनो को काटा जा सकता है। मैं भी जो जो वातें यहा इस सम्वन्ध मे वताऊगा, वह सुयगडाग के आधार पर, भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर ही कहूँगा। कोई तुकवन्दी से अथवा इधर-उधर की जोड कर नही कहूँगा।

वन्धन क्या है ?

सूत्रकृताग की पहली गाथा के पश्चात् दूसरी गाथा मे कहा है —

चित्तमतमचित्त वा, परिगिज्झ किसामवि।
अण्ण वा अणुजाणाइ, एव दुक्खा ण मुच्चइ ॥२॥

बन्धन क्या है ? आज ज्ञान का दिन है, आपको, हमको बन्धन का ज्ञान करना है। प्रारम्भ मे ही मैं कह गया कि ज्ञान एक अति गहन विषय है, इसके ऊपर जितना भी बोला जाय, वह कम है, क्योकि ज्ञान का कोई पारावार नही है। इसे उदाहरण के रूप मे समझ लिया जाय कि हम बन्ध का ज्ञान करेंगे तो वह बन्ध का ज्ञान कहा जायगा। इसी प्रकार मोक्ष का ज्ञान करेंगे, जीव का, अजीव का, पुण्य का, पाप का ज्ञान प्राप्त करेंगे आस्रव, सवर और निर्जरा का ज्ञान प्राप्त करेंगे तो वह क्रमश बन्ध, मोक्ष, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर और निर्जरा का पृथक् पृथक् भिन्न भिन्न प्रकार का ज्ञान कहा जायगा। इस तरह ९ तत्वो का यह ९ प्रकार का ज्ञान हो गया।

भोगोपभोग एव काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य आदि का ज्ञान करने की दृष्टि से यदि ज्ञान के भेद-प्रभेदो की गणना की जाय तो ज्ञान के भेदो की तालिका भी थोडे समय मे पूरी नही होगी।

बन्धन का मूल कारण

बधन क्या है ? इस पर भगवान् ने कहा —

चित्तमतमचित्त वा, परिगिज्झ किसामवि।
अण्ण वा अणु ······ ········ ॥

अर्थात् सचित्त अथवा अचित्त किसी भी प्रकार के किञ्चित् मात्र भी परिग्रह को ग्रहण किया जाय अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन किया जाय तो वह परिग्रह-बन्ध का कारण है। इस गाथा का तात्पर्य यह है कि परिग्रह-बन्ध का सबसे बडा कारण है।

स्थानाङ्ग सूत्र के दूसरे स्थान मे कहा है —

"दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया नो केवलि-पण्णत्त धम्म लभेज्ज सवणयाए त जहा—आरम्भे चेव परिग्गहे चेव।" स्था २।

अर्थात्—दो स्थानो को जाने विना, दो स्थानो की परिज्ञा किये विना प्राणी केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्म के श्रवण का भी लाभ प्राप्त नही कर सकता। वे २ स्थान निम्न है— आरम्भ और

परिग्रह। यहा स्थानाङ्ग मे आरम्भ को पहले स्थान पर रखा है और परिग्रह को दूसरे स्थान पर। किन्तु सूयगडाङ्ग मे पहले परिग्रह वताया गया है और फिर आरम्भ को दूसरा स्थान दिया है।

परिग्रह के प्रकार

सोचा जाय तो आरम्भ किस लिये करते है? परिग्रह के लिये। अगर परिग्रह नही हो, परिग्रह एकत्रित करने की भावना नही हो तो किसी भी व्यक्ति को आरम्भ करने की आवश्यकता ही नही पडे। इसी लिये 'सूत्रकृताङ्ग' मे कहा है कि वन्ध का पहला कारण परिग्रह है। परिग्रह कैसा? इसके सक्षेप मे भेद किये है—"चित्त-मतमचित्त वा" अर्थात्-सचित्त और अचित्त परिग्रह।

नोट के कागज क्या है? अचित्त परिग्रह। जो भाई सामायिक मे वैठे है, उनमे से कई एक के पास नोट होगे। माताए तो अचित्त परिग्रह से खाली मिलेगी ही नही। सव के शरीर पर किसी न किसी प्रकार का जेवर अवश्य मिलेगा। ऐसा कोई भाई तो मिल सकता है, जिसके शरीर पर सोना नही हो पर इन देवियो मे से तो एक भी ऐसी नही मिलेगी, जिसके पास सोना नही हो। अगर इसी समय आपको १०-२० हजार रुपया इकट्ठा करना हो तो इतना अचित्त परिग्रह दागीने यहा वहनो के पास है कि १०-२० हजार आसानी से यही इकट्ठे हो सकते हैं। वहिनें चलता फिरता वैंक हैं।

सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह और मिश्र परिग्रह—ये परिग्रह के तीन भेद है। ६ या १० प्रकार के वे सव परिग्रह इन तीन परिग्रहो मे आ जाते है। किसी के पास दास, दासी, हाथी, घोडे, गाय, वैल आदि है—ये सव सचित्त परिग्रह है। सोना, चादी, जवाहरात, तावा, पीतल, लोहे आदि का सामान, फर्नीचर, मकान, कोठी, वगले, कल, करखाने आदि ये सव अचित्त परिग्रह है। सजे-सजाये दास-दासी है, उनके शरीर पर जेवर है, सजा-सजाया घोडा है, सोने के दागीने पहना कर घोडे को शादी-व्याह मे निकाला, इस प्रकार के दागीने से सुसज्जित घोडे मिश्र परिग्रह है। आपका वच्चा है, त्यौहार का दिन है, पाच-दस हजार के दागीने उसके गले

मे डाल दिये तो दागीनो के साथ वह मिश्र परिग्रह कहा जायगा। इस प्रकार सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन प्रकार के परिग्रह हैं। भगवान् ने कहा—"इनमे से यदि कोई व्यक्ति किसी थोडे से परिग्रह को भी ग्रहण करता है, ग्रहण करवाता है और ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है, तो वह दुख से मुक्त नही हो सकता। क्योकि परिग्रह आत्मा को पकडने वाला है, जकडने वाला है, यह दु ख और बन्ध का पहला कारण है। बडी विकट समस्या खडी हो गई फिर तो आपके सामने। परिग्रह दु ख का पहला कारण है, उससे मुक्त नही होते तो क्या किया जाय? परिग्रह के बिना गृहस्थ की गाडी चले भी कैसे?

भगवान् ने स्थानाग सूत्र और भगवती सूत्र मे फरमाया है कि परिग्रह को उपधि भी बनाया जा सकता है। कर्मो की गाठ बधाने वाले परिग्रह को उपधि-निर्जरा का कारण भी बनाया जा सकता है।

परिग्रह के अभी-अभी तीन भेद बताये—सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह और मिश्र परिग्रह। अब परिग्रह के तीन भेद और बताता हूँ जो शास्त्र मे, मूल मे कहे गये है। हमारा धर्म अपरिग्रह धर्म है। परिग्रह मे धर्म नही है। धर्म अपरिग्रह मे है। इसलिये हमारे मार्ग को—जैन मार्ग को "निग्गठ पावयण" इन शब्दो मे कहा है। जिन-शासन त्यागियो का शासन है, रागियो का शासन नही है। धर्म-शासन त्यागियो का और राज्य-शासन रागियो का शासन है।

त्याग का सम्बन्ध केवल बाहर से नही अपितु अन्तर से है, भाव से है, मन से है। बाहर से धन-परिग्रह को छोड दे, इतने भर से ही त्याग नही हो जाता। उसका सम्बन्ध मन से भी है स्थानाग सूत्र मे कहा है—"तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तजहा—कम्म परिग्गहे, सरीर परिग्गहे, बाहिर भडमत्त परिग्गहे।" अर्थात्—परिग्रह तीन प्रकार का है कर्मपरिग्रह, शरीर-परिग्रह और भाण्डोपकरण-परिग्रह। इस प्रकार कोई शरीरधारी मनुष्य ऐसा नही, जो इन परिग्रहो से बचा रहे। हमारे भी शरीर है, कर्म हैं और बाह्य उपकरण पोथी-पन्ने

परिग्रह । यहा स्थानाङ्ग मे आरम्भ को पहले स्थान पर रखा है और परिग्रह को दूसरे स्थान पर । किन्तु सूयगडाङ्ग मे पहले परिग्रह वताया गया है और फिर आरम्भ को दूसरा स्थान दिया है ।

परिग्रह के प्रकार

सोचा जाय तो आरम्भ किस लिये करते है? परिग्रह के लिये । अगर परिग्रह नही हो, परिग्रह एकत्रित करने की भावना नही हो तो किसी भी व्यक्ति को आरम्भ करने की आवश्यकता ही नही पडे । इसी लिये 'सूत्रकृताङ्ग' मे कहा है कि वन्ध का पहला कारण परिग्रह है । परिग्रह कैसा? इसके सक्षेप मे भेद किये है—"चित्त-मतमचित्त वा" अर्थात्-सचित्त और अचित्त परिग्रह ।

नोट के कागज क्या है? अचित्त परिग्रह । जो भाई सामायिक मे बैठे हैं, उनमे से कई एक के पास नोट होगे । माताए तो अचित्त परिग्रह से खाली मिलेगी ही नही । सव के शरीर पर किसी न किसी प्रकार का जेवर अवश्य मिलेगा । ऐसा कोई भाई तो मिल सकता है, जिसके शरीर पर सोना नही हो पर इन देवियो मे से तो एक भी ऐसी नही मिलेगी, जिसके पास सोना नही हो । अगर इसी समय आपको १०-२० हजार रुपया इकट्ठा करना हो तो इतना अचित्त परिग्रह दागीने यहा वहनो के पास हैं कि १०-२० हजार आसानी से यही इकट्ठे हो सकते हें । वहिनें चलता फिरता वैंक है ।

सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह और मिश्र परिग्रह—ये परिग्रह के तीन भेद हैं । ६ या १० प्रकार के वे सव परिग्रह इन तीन परिग्रहो मे आ जाते है । किसी के पास दास, दासी, हाथी, घोडे, गाय, वैल आदि है—ये सव सचित्त परिग्रह है । सोना, चादी, जवाहरात, तावा, पीतल, लोहे आदि का सामान, फर्नीचर, मकान, कोठी, वगले, कल, करखाने आदि ये सव अचित्त परिग्रह हैं । सजे-सजाये दास-दासी हैं, उनके शरीर पर जेवर है, सजा-सजाया घोडा है, सोने के दागीने पहना कर घोडे को शादी-व्याह मे निकाला, इस प्रकार के दागीने से सुसज्जित घोडे मिश्र परिग्रह है । आपका वच्चा है, त्यौहार का दिन है, पाच-दस हजार के दागीने उसके गले

मे डाल दिये तो दागीनो के साथ वह मिश्र परिग्रह कहा जायगा। इस प्रकार सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन प्रकार के परिग्रह है। भगवान् ने कहा—"इनमे से यदि कोई व्यक्ति किसी थोडे से परिग्रह को भी ग्रहण करता है, ग्रहण करवाता है और ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है, तो वह दुख से मुक्त नही हो सकता। क्योकि परिग्रह आत्मा को पकडने वाला है, जकडने वाला है, यह दु ख और बन्ध का पहला कारण है। बडी विकट समस्या खडी हो गई फिर तो आपके सामने। परिग्रह दु ख का पहला कारण है, उससे मुक्त नही होते तो क्या किया जाय? परिग्रह के बिना गृहस्थ की गाडी चले भी कैसे?

भगवान् ने स्थानाग सूत्र और भगवती सूत्र मे फरमाया है कि परिग्रह को उपधि भी बनाया जा सकता है। कर्मो की गाठ बधाने वाले परिग्रह को उपधि-निर्जरा का कारण भी बनाया जा सकता है।

परिग्रह के अभी-अभी तीन भेद बताये—सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह और मिश्र परिग्रह। अब परिग्रह के तीन भेद और बताता हूँ जो शास्त्र मे, मूल मे कहे गये है। हमारा धर्म अपरिग्रह धर्म है। परिग्रह मे धर्म नही है। धर्म अपरिग्रह मे है। इसलिये हमारे मार्ग को—जैन मार्ग को "निग्गठ पावयण" इन शब्दो मे कहा है। जिन-शासन त्यागियो का शासन है, रागियो का शासन नही है। धर्म-शासन त्यागियो का और राज्य-शासन रागियो का शासन है।

त्याग का सम्बन्ध केवल बाहर से नही अपितु अन्तर से है, भाव से है, मन से है। बाहर से धन-परिग्रह को छोड दे, इतने भर से ही त्याग नही हो जाता। उसका सम्बन्ध मन से भी है स्थानाग सूत्र मे कहा है—"तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तजहा—कम्म परिग्गहे, सरीर परिग्गहे, बाहिर भडमत्त परिग्गहे।" अर्थात्—परिग्रह तीन प्रकार का है कर्मपरिग्रह, शरीर-परिग्रह और भाण्डोपकरण-परिग्रह। इस प्रकार कोई शरीरधारी मनुष्य ऐसा नही, जो इन परिग्रहो से बचा रहे। हमारे भी शरीर है, कर्म है और बाह्य उपकरण पोथी-पन्ने

पात्र-वस्त्र हैं इसीलिये हमारे भाई (दिगम्बर) कहते है कि वस्त्र वाले वस्त्र, पात्र, पोथी-पन्ने का त्याग नही करते, इसलिये उनको मोक्ष नही मिल सकता। ऐसा कहते समय वे भूल जाते हैं कि वस्त्र पात्र के अतिरिक्त शरीर और कमडलु भी इस परिगणना मे अतर्हित हैं। यदि मूर्छाभाव है तो शरीर भी परिग्रह है और वस्त्रादि भी।

उपधि परिग्रह नहीं

हमारे उपकरण १४ प्रकार के है, हम १४ प्रकार के उपकरण रखते हैं। यह स्थविरकल्पी साधुओ के लिये सूत्र का विधान है। इन १४ चीजो को रखते हुए भी हम परिग्रह के त्यागी है। तो यह दोनो अटपटी वातें एक साथ कैसे ? हमारे पास शरीर है, कर्म है, पोथी-पन्ने है, वस्त्र-पात्र आदि हैं, तो फिर अपरिग्रही कैसे? तो आपको समझना होगा कि परिग्रह और उपकरण ये दो चीजें हैं। जो काम के लिये ली जाय, साधना के लिये उपयोग मे ली जाय अथवा साधना के लिये उपयोगी वनाई जाय, उसका नाम है उपकरण अथवा उपधि। इस प्रकार उपधि का सीधा सा अर्थ है— जो चीज काम मे ली जाय। जो चीज धर्म साधन के काम मे लेने को ली जाय, जिस चीज का सग्रह नही किया जावे, वह है अपरिग्रह।

परिग्रह क्या है? जो चीज सग्रह कर रखी जावे और जव कभी दूसरो के लिये उसे काम मे लेने का मौका आवे, उन्हे मना कर दिया जाय तो वह परिग्रह है। जिस चीज को अपने तथा दूसरो के उपयोग के लिये दिया जाय तो वह चीज उपधि है।

हमारे पास पात्र हैं, वस्त्र है, पुस्तके है। वस्त्र, पात्र और पुस्तको की कीमत है। अगर आप के पास पात्र के जोडे है। भाई धनराज जी पात्रो के जोडे रख लें। हमारे, सिवाणा के भाई लक्ष्मीचन्द जी को इन चीजो का वडा शौक है। वे हर वक्त त्यागियो के काम की चीजें चौपिये, ओघा, पू जणी आदि रखते है और किन्ही त्यागियो को उनकी आवश्यकता होती है तो दे देते हैं। वह उनका सग्रह उपकरण है कि परिग्रह ?

आपने अपने पास दस-बीस औघो का सग्रह कर लिया, पात्रो के दो जोडे रख लिये तो वह आपके लिए उपधि नही है, परिग्रह है।

हमारे साधु-साध्वी सामान्यत चार पात्र रखते है। अगर सारे साधुओ के पात्र गिनें तो कितने हो जाते हैं ?, एक-एक पात्र आज की स्थिति मे साधारण रूप (मूल्य) मे नही मिलता। फिर भी वह परिग्रह क्यो नही?, इसलिये कि हम पात्र को, बाध कर जमा रखने के लिये नही लेते। हमारे पास पात्र इसलिये है कि हम उन पात्रो मे गुरु-वृद्ध तपस्वियो एव स्वय के लिए आहार-पानी लाते हैं। बीमार साधुओ के लिये औषध-भेषज लाते हैं। किसी रोगी, तपस्वी, ग्लान की सेवा के लिये कोई वस्तु लावे तो कैसे लावे पात्र नही होगा तो वह वस्तु इधर-उधर खिरेगी, बिखरेगी। पात्र होगा तो इधर उधर खिरेगी नही, बिखरेगी नही। पात्र न होने पर अगर बिखरेगी, खिरेगी तो पानी से सफाई करनी पडेगी। सफाई नही की तो चीटियो के मरने का, एकत्रित होने का डर रहेगा। किसी गृहस्थ के पात्र मे लाना हमारी मर्यादा मे ठीक नही इसलिये श्वेताम्बर जैन साधु यतना के लिये, गुरु, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी के लिये आहार-पानी, औषध-भेषज लाने एव आहार करते समय यतना के लिये पात्र रखते है। ऐसी स्थिति मे हमारे पात्र परिग्रह न होकर उपकरण हो गये, उपधि हो गये।

आप सामायिक के समय पू जने के लिये पू जणी रखते हैं। उस समय दूसरा भाई भी सामायिक के लिये आया, उसके पास पू जणी नही है। पू जने के लिए आपसे उसने पू जणी मागी और आपने कह दिया लीजिये। इस प्रकार वह पू जणी आपके भी काम मे आई और दूसरे के भी काम मे आई अत वह परिग्रह नही हुई, उपधि हो गई। पर कभी किसी ने आपका बैठका छीन लिया और आपने अपनी पू जणी की डडी उसके दे मारी तो आपकी अपनी पू जणी उपधि नही रही किन्तु परिग्रह तथा अधिकरण हो गई।

परिग्रह को अधिकरण नहीं, उपकरण बनाओ

तो इस प्रकार एक ही वस्तु के तीन स्वरूप हो गये – पहला परिग्रह, दूसरा उपकरण अथवा उपधि और तीसरा अधिकरण।

यदि आपने अपने पैसे से दूसरो का भला किया, उपकार किया, धर्म किया तो वह पैसा परिग्रह न रह कर उपकरण वन जायगा। इसलिये आपको अपने धन को अपनी सम्पत्ति को, अपनी हवेलियो को, कोठियो को, वगलो को अधिकरण नही वनाना है, उपकरण वनाना है। इनको शुभ कार्यो के लिये उपयोग मे लाकर उपधि वनाना है तो परिग्रह से ममत्व घटाइये, अपने धन को धर्म के कार्यो मे, जनकल्याण के कार्यो मे, सामाजिक अभ्युत्थान के कार्यो मे लगाइये। इससे आपका परिग्रह वन्धन का कारण अधिकरण न रह कर उपकरण वन जायगा।

मूर्च्छा ही परिग्रह है

परिग्रह किसे कहते हैं, इस सम्वन्ध मे भगवान् ने कहा है—"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो।" अर्थात् पदार्थो पर मूर्च्छा रखना ही परिग्रह है। सामान थोडा है, या ज्यादा है, इसका सवाल नही। अपनी चीजो पर, अपने शरीर पर, हवेली पर, धन पर मूर्च्छाभाव का होना ही परिग्रह है। धन पर मूर्च्छाभाव छूटे विना क्या धर्म हो सकेगा? नही। शरीर पर मूर्च्छाभाव विना छूटे तप नही हो सकेगा। शरीर की ममता छूटेगी तभी तप होगा। मन की ममता जमीन से, जायदाद से, पैसे से छूटे तभी दान दिया जा सकेगा, गरीवो की, जरूरतमन्दो की, स्वधर्मियो की सेवा की जा सकेगी। अगर परिग्रह पर से मन की ममता नही छूटी तो दान, सेवा आदि कोई शुभ कार्य नही हो सकेगा।

इसी लिये भगवान् ने कहा—"ओ मानव! अगर तू सुखी वनना चाहता है तो इन वाहरी चीजो पर परिग्रह की वुद्धि मत रख। परिग्रह की पकड ढीली कर दे। अगर तेरी परिग्रह की पकड ढीली हो जायगी तो तेरा वन्धन भी ढीला हो जायेगा। वाहरी चीजें तू वाहर से पकडता है, यदि उन चीजो को वाहर की वजाय भीतर से पकड लिया तो तेरा वन्धनो से छुटकारा नही हो सकेगा।

मूर्च्छा हटी, वेडी कटी

राजपुत्र गौतम कुमार राज्य का उत्तराधिकार छोड कर साधु क्यो वन गया? उसके पास अतुल राज-वैभव था, रानिया

उसकी कैसी थी ? राज्य सत्ता का, वैभव का, रानियो का, सब चीजो का ठाट था। सब कुछ उसे पकडने वाला था, दीक्षा के लिये जाते समय उसे उसके चारो ओर का सारा सरजाम रोकने वाला था। फिर भी वह ससार मे क्यो नही रहा ? उसके भीतर का बन्धन ढीला था इसलिये वह साधु बन गया और सब प्रकार के बन्धनो को काट कर परम-पद मोक्ष प्राप्त कर लिया।

मूर्च्छा की मादकता

आर्द्रकुमार, एक अनार्य देश का राजकुमार साधु बन गया। बारह वर्ष तक उसने विशुद्ध सयम का पालन किया। पर उदय का जोर आया और सयम का परित्याग कर वह पुन गार्हस्थ्य जीवन मे फस गया। तभी तो एक भक्त ने कहा है —

"उदय का जोर है जो लो, न छूटे विषय सुख तो लो।
कृपा गुरुदेव की पाई, निजातम भावना भाई।
कुन्थु जिनराज तू ऐसो, नही कोई देव तो जैसो॥

"हे प्रभो! जब तक उदय का जोर है तब तक चाहते हुए भी मैं साधना मे शुभ प्रवृत्ति नही कर सकता।" तो आर्द्रकुमार का उदय का जोर बढा तो वह यद्यपि विशुद्ध सयम का पालन करने वाला था, बडा आत्मनिष्ठ साधु था तथापि पुन ससार के दलदल मे प्रविष्ट हो गया। अपनी राजरानी के साथ रहते और सासारिक विविध भोगोपभोगो का उपयोग करते हुए उसका समय बीतने लगा। महापुरुषो की चरण-शरण मे बैठ कर एक बार चढा हुआ व्यक्ति यदि कभी फिसल भी जाता है तो उसके अन्तर्मन मे पुन चढने की चाह जगती है। गिरने पर भी, फिसलने पर भी उसके मन मे विचार आता है कि उसने अच्छा नही किया। उसके मानस मे पुन चढने की चाह जगती है और वह सयम-मार्ग पर आरूढ होने के लिये लालायित हो जाता है।

आर्द्रकुमार को भी अपने अध पतन पर आन्तरिक पश्चात्ताप हुआ, शोक हुआ कि उसने सब दु खो का अन्त करने वाले आध्यात्मिक पथ से पतित हो भवभ्रमण बढाने वाले भोगो के अन्ध कूप मे

गिर कर वडा ही अनर्थकारी अश्रेयस् कार्य कर डाला है। उसने अपनी पत्नी से कहा—"वाले ! मैं सयम-मार्ग पर चढ कर, आगे वढ कर भी फिसल गया हू किन्तु तुम्हारे जीवन का अवलम्बन हो जाय तो फिर मैं तुम्हारे पास रहने वाला नही हू।"

कालान्तर मे आर्द्र कुमार की राजरानी ने एक पुत्र को जन्म दिया। शिशु क्रमश वढ कर वाल-लीलाए करने लगा तो आर्द्र कुमार ने अपनी पत्नी से कहा—"प्रिये ! प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। अव मैं सयम ग्रहण करू गा।"

मूर्छा महाठगिनी माया

आर्द्र कुमार की रानी ने जव यह देखा कि उसके पतिदेव दीक्षा ग्रहण करने हेतु आतुर है तो वह अपना समय इज्जत से विताने को चर्खा लेकर सूत कातने वैठ गई। आर्द्र कुमार पलग पर सो रहा था। अपनी माता को चर्खा चलाते देख कर वालक ने पूछा—"माँ तुम यह क्या कर रही हो ? धन-सम्पदा, दास-दासी और नौकर-चाकर सभी कुछ तो है, फिर तुम स्वय यह काम क्यो कर रही हो ?"

आर्द्र कुमार की पत्नी की आखें अश्रुओ से आर्द्र हो गई। उसने कहा—"वत्स ! अभी तुम वच्चे हो, तुम्हे वहुत सी वातो का वोध नही। मुझे अपनी और तुम्हारी जिन्दगी गुजारनी है। कल कोई अगुली से न वताये इस लिए आगे की व्यवस्था के लिए मैं चर्खा कात रही हूँ। क्योकि तुम्हारे पिताजी तो कल तुम्हे, मुझे और घर-द्वार को छोड कर चले जायेंगे, साधु वन जायेंगे।

इस पर उस वालक ने कहा—"माँ ! मैं मेरे पिताजी को साधु नही वनने दू गा। देख, मैं तेरे देखते ही देखते पिताजी को वाध देता हूँ। फिर वे हमे छोड कर नही जा सकेंगे।" यह कह कर उसने कच्चे सूत की कोकडी ली और पास ही पलग पर सोये हुए पिता को पलग से वाध देने का प्रयास करते हुए कच्चे सूत के तार को पिता के शरीर और पलग पर लपेटना प्रारम्भ कर दिया। पूरी कोकडी के तार लपेट चुकने के पश्चात् वाल-सुलभ विश्वास के साथ वालक

ने अपनी माता से कहा—"माँ देखो मैंने पिताजी को अच्छी तरह कस कर पलग से बाध दिया है, अब ये हमे छोड कर कही नही जा सकेंगे।"

आर्द्रकुमार के मन मे बच्चे की बाल चेष्टा देख कर विचार आया—"बच्चा मेरे ऊपर कितना स्नेह रखता है? पत्नी ने मुझे रोकने की चेष्टा नही की पर यह पुत्र मुझे रोके रखने के लिए अपनी शक्ति अनुसार पूरा प्रयास कर रहा है।"

कच्चे सूत का धागा लोह शृंखला बन गया

इस प्रकार का विचार आते ही आर्द्रकुमार पुन अन्तर्मन के भीतरी स्नेह-बन्धन मे बध गया। उसने सोचा कि बालक ने कच्चे सूत के तार के जितने आटे दिये हैं, उतने वर्ष तक और वह घर मे रहेगा। इस प्रकार का सकल्प कर वह उठा। उसने देखा कि सूत के १२ आटे बालक द्वारा उसके शरीर पर लगाये गये है। अत आर्द्रकुमार घर मे बारह वर्ष के लिए और रुक गया। यह कैसा परिग्रह है? यह भीतर का परिग्रह है। भीतर का, अन्तर का बन्धन सबल हुआ तो बाहर का बन्धन भी सबल हो गया। ठीक ही कहा है—"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" अन्तर्मन के निर्बल होते ही कच्चे सूत के धागे का बन्धन लोह शृखला के पाश के समान बन गया।

इसलिए भगवान् महावीर ने सभी गृहस्थो के लिए कहा—"ओ श्रावको! ओ गृहस्थो! अगर तुम्हे परिग्रह के बन्धन से बचना है तो इसके बन्धन को ढीला करने के लिए ममता-मूर्च्छा पर कन्ट्रोल करो, नियन्त्रण करो।"

कवि भी भगवान् की वाणी को अपनी भाषा मे कह रहा है—

परिग्रह की इच्छा को सीमित रख लो,
तन-धन महिमा भेद, ध्यान मे धर लो।
गृहि धर्मी नही धन को जकड पकडते,
कुल गण के हित देते नही सकुचाते।

कर मूर्छा को मन्द सुमति पथ धर लो,
भव-सागर तिरने का सबल कर लो।
कहे वीर प्रभु पाप भार लघु कर लो,
भवसागर तिरने का सम्बल कर लो।

अल्प और महापरिग्रही की पहचान

भगवान् महावीर का निर्णय बाहर की चक्षुओ से देख कर किया हुआ निर्णय नही है, वह तो अन्तर्चक्षुओ से देख कर किया हुआ निर्णय है। भगवान् महावीर ने कहा—"एक करोडपति भी अल्प परिग्रही हो सकता है और इसके विपरीत एक हजारपति बडा परिग्रही और एक लगोटी वाला महापरिग्रही हो सकता है।" 'होता है' यह नही कहा, 'हो सकता है' यह कहा है। अल्पपरिग्रही की क्या पहिचान है ? जिसने अपनी परिग्रह की इच्छा को सीमा मे कर लिया है, अपनी परिग्रह की इच्छा पर कन्ट्रोल कर लिया है, अपने परिवार के हित मे, समाज के हित मे, जन-कल्याण के निमित्त अथवा किसी धार्मिक कार्य के निमित्त कही पैसे की जरूरत पडे तो मुट्ठी भीच कर न रखे, दिल खोल कर अपने धन का व्यय करे, वह कोटिपति, अरबपति होते हुए भी स्वल्प परिग्रही माना जायगा। शुभ कार्यो के लिए, धार्मिक कार्यो के लिए, सार्वजनिक कल्याण के लिए पैसा दे, वह स्वल्प-परिग्रही और जो इस प्रकार का प्रसग उपस्थित होने पर मुट्ठी बाध रक्खे, पास मे सम्पत्ति होते हुए भी पैसा न दे, वह बडा परिग्रही। यही अल्प परिग्रही और परिग्रही अथवा महा परिग्रही की पहचान है।

श्रीमन्त स्वय को सम्पत्ति का स्वामी नहीं सरक्षक समझें

जिस किसी की रकम बैंक मे जमा है, वह अपनी रकम मागना चाहता है, तो बैंक का अथवा किसी फर्म या सस्था का खजान्ची देने से इन्कार नही करेगा। आपने अनेक बार सुना होगा कि धन्ना सेठ की माता ने रत्नकम्बल के १६ टुकडो के लिए बीस लाख सोनैये देने का अपने खजान्ची को हुक्म दिया और खजान्ची ने तत्काल २० लाख सोनैये दे दिये। बैंक मे चाहे किसी व्यक्ति का, सस्था का, चाहे राष्ट्र का रुपया जमा है और उसे उस व्यक्ति द्वारा,

सस्था द्वारा या सरकार द्वारा मागा जाता है तो कैशियर तत्काल उन्हे दे देता है कैशियर को, खजान्ची को, बैंक के मैनेजर को कोई दु ख नही होता। उदाहरण के तौर पर बाडमेर जिले मे राष्ट्र-निर्माण के, जन-कल्याण के अनेक कार्य किये जा रहे है। उनके लिये यदि सरकार की ओर से बैंक के मैनेजर को आदेश दे दिया जाता है कि इतने लाख रुपये इस काम के लिये लोन दे दो, इतना कर्जा कृषि उत्पादन के लिये और इतने लाख का कर्जा उद्योगो को बढाने के लिये दे दो तो बैंक का मैनेजर उतना ही रुपया दे देगा। सरकारी आदेशो की पूर्ति मे उसने ५० लाख रुपया कर्ज दे दिया, तो भी उसे दु ख नही होगा। मैनेजर ने आप लोगो से सम्पर्क स्थापित कर चालीस-पचास लाख रुपया बैंक मे जमा किया, उसने बैंक की रकम बढाई, तो इससे उसको खुशी हुई। आस-पास मे बैंक की दो-चार शाखायें खुल गयी, तो उसे और भी बडी खुशी हुई। बैंक मैनेजर ने प्रयास कर बैंक मे साल भर मे ४० लाख रुपये जमा किये और सरकार के आदेश से ५० लाख रुपये यदि उठा लिये गये तो उसे किसी प्रकार का दु ख नही होगा। हा, अनधिकारी को नही दिया जायगा।

स्वामित्व की भावना ही श्रीमन्त के दु ख का कारण

तो हमारे जैन श्रावक परिग्रह रख कर, सेठाई रख कर भी खजान्ची की तरह, कैशियर की तरह, मैनेजर की तरह अपने आपको पैसे के रखवाले समझें। अपने आपको पैसे का मालिक न समझें। आप अपने आपको बैंक का कैशियर मान कर चल रहे है या बैंकपति होकर चल रहे हैं?, आप दु खी क्यो है?, इसीलिये न कि आपने परिग्रह से मालिकपन का नाता जोड लिया है। आपके पास १० लाख की पू जी है और आपको पूछा जाय कि इस १० लाख की पू जी का मालिक कौन? तो आप कहेगे—"मैं"। यह १० लाख की पू जी किसके अधिकार मे रहनी चाहिये ? तो आप कहेगे "मेरे।" १० लाख के २० लाख हो गये तो आपको खुशी होगी। और १० लाख के ६ लाख हो गये तो आपको दु ख होगा। इस खुशी और दु ख का मूल कारण यह है कि आपने अपनी पू जी से, अपने परिग्रह से मालिकाना नाता, मालकियत का नाता जोड लिया है।

कर मूर्छा को मन्द सुमति पथ धर लो,
भव-सागर तिरने का सवल कर लो।
कहे वीर प्रभु पाप भार लघु कर लो,
भवसागर तिरने का सम्बल कर लो।

अल्प और महापरिग्रही की पहचान

भगवान् महावीर का निर्णय बाहर की चक्षुओ से देख कर किया हुआ निर्णय नही है, वह तो अन्तर्चक्षुओ से देख कर किया हुआ निर्णय है। भगवान् महावीर ने कहा—"एक करोडपति भी अल्प परिग्रही हो सकता है और इसके विपरीत एक हजारपति वडा परिग्रही और एक लगोटी वाला महापरिग्रही हो सकता है।" 'होता है' यह नही कहा, 'हो सकता है' यह कहा है। अल्पपरिग्रही की क्या पहिचान है ? जिसने अपनी परिग्रह की इच्छा को सीमा मे कर लिया है, अपनी परिग्रह की इच्छा पर कन्ट्रोल कर लिया है, अपने परिवार के हित मे, समाज के हित मे, जन-कल्याण के निमित्त अथवा किसी धार्मिक कार्य के निमित्त कही पैसे की जरूरत पडे तो मुट्ठी भीच कर न रखे, दिल खोल कर अपने धन का व्यय करे, वह कोटिपति, अरबपति होते हुए भी स्वल्प परिग्रही माना जायगा। शुभ कार्यों के लिए, धार्मिक कार्यों के लिए, सार्वजनिक कल्याण के लिए पैसा दे, वह स्वल्प-परिग्रही और जो इस प्रकार का प्रसग उपस्थित होने पर मुट्ठी वाध रक्खे, पास मे सम्पत्ति होते हुए भी पैसा न दे, वह वडा परिग्रही। यही अल्प परिग्रही और परिग्रही अथवा महा परिग्रही की पहचान है।

श्रीमन्त स्वय को सम्पत्ति का स्वामी नहीं सरक्षक समझें

जिस किसी की रकम वैंक मे जमा है, वह अपनी रकम मागना चाहता है, तो वैंक का अथवा किसी फर्म या सस्था का खजान्ची देने से इन्कार नही करेगा। आपने अनेक वार सुना होगा कि धन्ना सेठ की माता ने रत्नकम्बल के १६ टुकडो के लिए बीस लाख सोनैये देने का अपने खजान्ची को हुक्म दिया और खजान्ची ने तत्काल २० लाख सोनैये दे दिये। वैंक मे चाहे किसी व्यक्ति का, सस्था का, चाहे राष्ट्र का रुपया जमा है और उसे उस व्यक्ति द्वारा,

सस्था द्वारा या सरकार द्वारा मागा जाता है तो कैशियर तत्काल उन्हे दे देता है कैशियर को, खजान्ची को, बैंक के मैनेजर को कोई दु ख नही होता। उदाहरण के तौर पर बाडमेर जिले मे राष्ट्र-निर्माण के, जन-कल्याण के अनेक कार्य किये जा रहे हैं। उनके लिये यदि सरकार की ओर से बैंक के मैनेजर को आदेश दे दिया जाता है कि इतने लाख रुपये इस काम के लिये लोन दे दो, इतना कर्जा कृषि उत्पादन के लिये और इतने लाख का कर्जा उद्योगो को बढाने के लिये दे दो तो बैंक का मैनेजर उतना ही रुपया दे देगा। सरकारी आदेशो की पूर्ति मे उसने ५० लाख रुपया कर्ज दे दिया, तो भी उसे दु ख नही होगा। मैनेजर ने आप लोगो से सम्पर्क स्थापित कर चालीस-पचास लाख रुपया बैंक मे जमा किया, उसने बैंक की रकम बढाई, तो इससे उसको खुशी हुई। आस-पास मे बैंक की दो-चार शाखायें खुल गयी, तो उसे और भी बडी खुशी हुई। बैंक मैनेजर ने प्रयास कर बैंक मे साल भर मे ४० लाख रुपये जमा किये और सरकार के आदेश से ५० लाख रुपये यदि उठा लिये गये तो उसे किसी प्रकार का दु ख नही होगा। हा, अनधिकारी को नही दिया जायगा।

स्वामित्व की भावना ही श्रीमन्त के दु ख का कारण

तो हमारे जैन श्रावक परिग्रह रख कर, सेठाई रख कर भी खजान्ची की तरह, कैशियर की तरह, मैनेजर की तरह अपने आपको पैसे के रखवाले समझें। अपने आपको पैसे का मालिक न समझे। आप अपने आपको बैंक का कैशियर मान कर चल रहे हैं या बैंकपति होकर चल रहे हैं?, आप दु खी क्यो है?, इसीलिये न कि आपने परिग्रह से मालिकपन का नाता जोड लिया है। आपके पास १० लाख की पू जी है और आपको पूछा जाय कि इस १० लाख की पू जी का मालिक कौन? तो आप कहेगे—"मैं"। यह १० लाख की पू जी किसके अधिकार मे रहनी चाहिये ? तो आप कहेगे "मेरे।" १० लाख के २० लाख हो गये तो आपको खुशी होगी। और १० लाख के ९ लाख हो गये तो आपको दु ख होगा। इस खुशी और दु ख का मूल कारण यह है कि आपने अपनी पू जी से, अपने परिग्रह से मालिकाना नाता, मालकियत का नाता जोड लिया है।

सर्वज्ञ-त्रिकालदर्शी वीतराग प्रभु महावीर कहते हैं—"मानव! याद रख कि परिग्रह दु ख का कारण है, बन्धन का कारण है। तुम्हारे पास तन का, धन का, बाहर का और भीतर का परिग्रह है, इससे बधो नही, आवद्ध मत बनो। जो धन तुमने जुटाया है, उसे यह समझो कि यह साधन है तुम्हारे बाल बच्चो के लिये, तुम्हारी समाज के काम मे आने के लिये, जरुरतमन्दो के काम मे आने के लिये, शुभ कार्यो के लिये, धार्मिक एव सामाजिक कार्यो के लिये।

एक बुढिया, जिसके कोई टावर-टूवर कमाने वाला नही है, वह पेट काटकर, पेट के आटे दे कर पाई-पाई इसलिये जोड कर रखती है कि अभी तो वह काम कर लेती है। हाथो पैरो मे शक्ति न रहने की दशा मे वह काम नही कर सकेगी और बारह महीना, दो वर्ष बैठी रही तो क्या खावेगी ?

परोपकार ही परिग्रह का सदुपयोग

इसी तरह 'वक्त पर काम नही रुके'-इसलिये आप पैसा जोडते हैं या 'तिजोरी का खाना खाली न रहे इस लिये जोडते है ?, कभी मौका पडा है तो आपने तिजोरी का खाना खाली किया है। तीन दिन मे हजारो रुपये निकाले हैं, लाखो रुपये निकाल कर भी आपने खर्च किये है। जिस तिजोरी के खाने मे आपने चालीस-पचास हजार के नोट जमा किये और लडकी की शादी का प्रसग आ गया। प्यारी लाडली लडकी है, समाज मे शोभा भी दिखानी है, टाबरी (लडकी) का मन राजी रखना है, जँवाई का मन राजी रखना है, आने वाले मेहमानो का मन राजी करना है, तो तीन दिन मे ही लाख रुपया खर्च कर देते है, तिजोरी का कोना खाली कर देते है। किया है न आपने?, लडकी की शादी की है? आपने तीन दिन मे ही शादी मे, खान-पान आदि की व्यवस्था मे पचास, पिचहत्तर हजार या एक लाख रुपये निकाल दिये। बाजार का रुपया चुकाने मे क्या आपने चार-छ महीने की मुद्दत ली?, नही ली। हाथो-हाथ तत्काल तिजोरी मे से निकाल कर दिये। आपने सोचा कि काम के लिये ही पैसा इकट्ठा किया है। जँवाई, मेहमान, सगे-सम्बन्धी, सभी राजी रहे, समाज मे शोभा हो इसलिये आपने

खुले हाथो, हसते मन तिजोरी मे से रुपया निकाल कर खर्च किया। कितने ही ब्याह आप लोगो ने किये होगे। ऐसे मौको पर, ऐसे प्रसगो मे आपकी निगाह क्या थी?, आपने यही देखा कि पैसा काम के लिये है, काम के वक्त भी पैसा काम मे नही आया तो फिर पैसा किस काम का।

तो जिस प्रकार आदमी अपने स्वय के लिये, अपने परिवार के लिये, अपनी शोभा के लिये खर्च करता है, उसी प्रकार आवश्यकता के समय, समाज के लिये, जन-हित के लिये, धर्म के लिये, राष्ट्र हित के लिये, दीन, दुखियो, गरीबो और पीडितो के हित के लिये सहर्ष खुले हाथो पैसा लुटा दे तो वह धन उसका परिग्रह होगा क्या?, नही। उसका वह धन, उसकी वह पूँजी परिग्रह न रह कर उपकरण हो गई। इस प्रकार के परोपकार के कार्यों के लिये, जनहित के कार्यों के लिए इतना खर्च कर देने पर भी उसके मन मे किसी प्रकार का रज, दु ख अथवा पश्चात्ताप नही होगा। ५० हजार मे से यदि कोई चोर १ हजार रुपया भी ले जाय तो मन मे बडा दु ख होगा, पर अपने हाथ से राजी मन से धर्म कार्यो मे ५० हजार रुपया भी दे दिया, उमग के साथ दे दिया तो उसके मन को बुरा नही लगेगा, उसके मन मे खुशी ही होगी।

जजाल और झगडे की जड ममता–सग्रहवृत्ति

इसलिये भगवान् ने परिग्रह का स्वरूप बताते हुए कहा है कि "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो।" अर्थात् किसी वस्तु पर मन की ममता का बन्धन होना ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर मन की ममता का बन्धन प्रगाढ हो जाने की स्थिति मे वह परिग्रह अधिकरण बन जाता है, दु खदायी बन जाता है।

परिग्रह के लिये लडाई कब होगी? जब धन पर मन का, ममता का प्रगाढ बन्धन होगा। दो व्यक्तियो की किसी व्यवसाय मे २० वर्ष से पार्टनरशिप है। पर बटवारे के प्रश्न को लेकर उनमे विवाद हो गया, मनमुटाव हो गया। सामने वाला भी थोडा सन्तोष धारण कर ले और जिससे मागा जाय, वह भी सोचे कि विवाद को घर मे हल कर लेना ही ठीक है और इस प्रकार दोनो सोच-विचार

कर थोडा कम-ज्यादा ऊ चा, नीचा करके आपस मे निवट ले तो झगडा नही होगा। पर यदि एक ने सोच लिया कि हिसाव की वात है, हिसाव से आगे एक पाई भी देने वाला नही हू ँ। तव सामने वाला कहेगा कि कैसे नही देगा, चाहे ५०००) भी खर्च क्यो न हो जाय, मैं पाई-पाई लेकर रहू गा। एक ने कहा "दू नही" और दूसरे ने कहा "लेकर रहू गा" तो उन दोनो मे झगडा होगा, कोर्ट मे मुकद्दमावाजी होगी। तो इस प्रकार यह परिग्रह अधिकरण वन गया। यह तो व्यक्तिगत परिग्रह हुआ।

यही हालत घर, नगर और समाज के परिग्रह की होती है। कुछ सामाजिक परिग्रह भी होते हैं। पचायतो की धरोहर है, मन्दिरो की धरोहर है, धर्मस्थानो की अथवा धर्मशालाओ की धरोहर है। कही समाज के गरीव विद्यार्थियो की व्ययस्था करने का प्रश्न आया तो ट्रस्टी कहेगे कि इसमे से एक भी पाई मिलने वाली नही है। सामाजिक कमेटी के मेम्वर समाज के भूखे, गरीव लोगो की मदद के लिये कहेगे तो व्यावस्थापक कहेंगे कि यह देव-द्रव्य है। इसमे से एक भी पाई नही मिलेगी, क्योकि यह देव-द्रव्य है। यदि समाज के आदमी भूखो मरते हैं तो उनकी सहायता के लिये अलग से फण्ड करो, इसमे से नही दिया जा सकता।

पहले देहली मे हमने चातुर्मास किया तो वहाँ वारहदरी स्थानक के लाला गोकुलचन्द मुख्य ट्रस्टी Chief Trusty थे। वे कहते थे—"मै इस ट्रस्ट के नीचे पैसा जमा नही रखता। ट्रस्ट मे जितनी इन्कम आती है, उसको खर्च कर देता हू ँ और एक दो हजार का कर्जा रखता हू।" इसका परिणाम यह रहा कि उनके समय मे ट्रस्ट को लेकर कभी कोई झगडा या विवाद नही हुआ। नाकोडाजी जैसे तीर्थ-स्थानो मे और अन्य धर्मस्थानो मे, जहाँ वडे-वडे फण्ड्स जमा है, वहा कभी झगडे हो जाते होगे?

सामाजिक परिग्रह वालो की नीति यह होती है कि खर्चा कम करना और जमा ज्यादा रखना। जितनी इन्कम हो, उसे शुभ कार्यो मे खर्च कर दिया जाय तो कभी झगडा नही होगा। सामाजिक फण्ड—चाहे वह धर्मादे का ट्रस्ट हो, पचायत का फण्ड

हो चाहे किसी तीर्थ-स्थान का ट्रस्ट हो, उनमे सग्रह एव ममत्व भाव नितान्त अवाछनीय है। जहा धर्म-स्थान के ट्रस्ट है, वहा आज झगडे होते है। इनमे झगडे क्यो चलते हैं? इसी नीति के कारण झगडे होते हैं कि जमा ज्यादा करना और खर्च कम करना।

मन्दिरो को लेकर आज जगह-जगह झगडे होते हैं। श्वेताम्बर कहते हैं कि हम पूजा करेगे, दिगम्बर कहते हैं कि मन्दिर हमारा है, हम पूजा करेगे। यह भक्ति का झगडा है या परिग्रह का झगडा? यह सव भक्ति का नही, परिग्रह का झगडा है। कई जगह स्थानको के सम्बन्ध मे भी यही स्थिति है। स्थानक सब का सम्मिलित धर्मस्थान होते हुए भी कोई दलविशेष उस पर कब्जा कर लेता है और कहता है "हमारे हुक्म के बिना यह स्थानक नही खुल सकता। तो इस प्रकार की स्थिति मे स्थानको को लेकर भी झगडे हो जाते हैं।

धन सदुपयोग के लिये हो न कि सग्रह के लिये

वस्तुत ये सारी चीजें—मन्दिर, मस्जिद, स्थानक, उपासरा आदि के फण्ड काम के लिये हैं, सग्रह करने के लिये नही हैं। धर्म के, समाज हित के, जनहित के काम मे खर्च करने की बजाय केवल सग्रह करके फण्ड वढाने की नीति रखेगे तो वह परिग्रह होगा, बन्धन का कारण होगा, और होगा अधिकरण। आप तो कहते है फण्ड बढाने चाहिये। आज समाज मे काम करने की वृत्ति कम है, इसीलिये घर का परिग्रह भी बढा रहे है और समाज का परिग्रह भी वढा रहे है।

जैन धर्म के अनुयायी जब तक अपरिग्रह धर्म को मानते रहे, अपने जीवन मे ढालते रहे, तब तक झगडे नही हुए। मन्दिरो के झगडे कब से चले?, तभी से न, जब से कि सामाजिक परिग्रह, फण्ड्स का सग्रह वढने लगा? महान् पर्वाधिराज के इन दिनो मे इस परिग्रह की गाठ को ढीली करना है। अगर आप सुखी बनना चाहते हैं, दु ख से वचना चाहते है तो व्यक्तिगत परिग्रह और सामाजिक परिग्रह की गाठ को ढीली करिये। परिग्रह की गाठ को ढीली करेंगे तो क्या होगा? भगवान् ने कहा—"आन्तरिक परिग्रह

की और बाहरी परिग्रह की गाठ ढीली करोगे, तो तुम्हारे कर्म कटेंगे और कर्म कटने पर हल्के बनोगे, हल्के होने से तुम्हारी आत्मा ऊपर उठेगी। इसके विपरीत यदि अपने भीतरी एव बाहरी परिग्रह की गाठ को ममता के बन्धन से गाढी करोगे तो कर्मों का भार बढेगा और कर्मों के भार से तुम्हारी आत्मा भारी होकर पतनोन्मुख होगी, उत्तरोत्तर नीचे की ओर गिरेगी।"

अनासक्ति मे मुक्ति, आसक्ति मे अध पतन

भरत चक्रवर्ती और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का उदाहरण ही ले लीजिये। छ खण्डो का अधिपति भरत भी था और ब्रह्मदत्त भी था। भरत के समय मे देश अधिक समृद्ध हो तो बाहरी परिग्रह भरत का अधिक हो सकता है और भरत की अपेक्षा ब्रह्मदत्त का परिग्रह हीयमान समय की दृष्टि से कम हो सकता है। किन्तु थे दोनो ही समान रूप से चक्रवर्ती। दोनो चक्रवर्तियो मे नवनिधि आदि महर्द्धियो की दृष्टि से काल-प्रभाव के अतिरिक्त कोई अन्तर नही था। पर ब्रह्मदत्त नरक का महमान बन गया और भरत मोक्ष का महमान बन गया। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पतन की पराकाष्ठा तक गिर कर नीचे से नीचे सातवे नरक मे गया और भरत चक्रवर्ती सर्वोपरि ऊचा उठ कर मोक्ष मे गया। यह आकाश-पाताल का अन्तर क्यो?, छ खण्डो के अति विशाल साम्राज्य का एकछत्र आधिपत्य करने वाला, हजारो देवो पर स्वामित्व रखने वाला भरत चक्रवर्ती, जिसने एक दिन भी सामायिक नही की, पौषध नही किया, उसने महलो मे बैठे-बैठे ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इसका कारण क्या?, उसकी कौनसी गाठ ढीली हुई?, उसकी परिग्रह की गाठ ढीली हुई— "यह राज्य मेरा नही, यह अतुल वैभव मेरा नही, यह अपार सम्पत्ति मेरी नही, यह खजाना मेरा नही, यह नव निधिया मेरी नही, अरे यह शरीर भी मेरा नही है।" इस प्रकार की अनित्य भावना मे भरत ने सोचा—"यह सब नाशवान् है। अभी-अभी मेरी अगुली कान्तिमान महार्घ्य रत्नजटित मुद्रिका से जगमगा रही थी, मुद्रिका के गिरते ही वह शोभाशून्य हो गई, तो मेरे शरीर की भी यही दयनीय दशा होगी। भरत ने बाहर के पदार्थो के—भौतिक पदार्थो के बीच रह कर भी अपने आपको उनसे अलग समझा, उन पर

आधिपत्य की-मालिकपने की जो भावना थी, वह नही रखी। फलस्वरूप तत्काल राजभवन मे ही—महलो मे ही भरत को केवलज्ञान हो गया। भरत ने बाहरी परिग्रह पहले छोडा कि उन्हे केवलज्ञान पहले हुआ?, भरत ने अपने गले के हार आदि सभी आभूषण पहले छोडे कि उन्हें केवलज्ञान पहले हुआ, महल पहले छोडा कि केवल ज्ञान पहले हुआ? महल से किस वेश मे निकले? आपने सुना ही होगा कि भरत के शरीर पर परिग्रह था पर मन पर परिग्रह नही रहा तो उनको केवलज्ञान हो गया।

पर आपके शरीर पर जितना परिग्रह नही है, उससे कई गुना अधिक परिग्रह आपके मन पर है। पर्वाधिराज पर्युषण हमे यह शिक्षा देता है कि हमारे मन पर जो परिग्रह का भाव है—मूर्छा-भाव है, उसको कम करे, उस परिग्रह भाव, मूर्छाभाव की गाठ को ढीली करे।

स्वर्णिम अतीत

आनन्द कामदेव आदि पहले के करोडपति भी अल्प परिग्रही क्यो कहे गये थे? मैं यदि ऐसा कह दू तो अतिशयोक्ति नही होगी कि जैन समाज मे आज की अपेक्षा पहले परिग्रह अधिक था। इतना होते हुए भी पहले वालो की ममता प्रगाढ नही थी।

भारत का प्राचीन इतिहास सुनेगे तो पता चलेगा कि प्राचीन काल मे आप के पुरखाओ मे कैसे-कैसे उच्चकोटि के कोटिपति-लक्ष्मीपति हुए हैं। एक श्रीमत के यहा पैर की जूतियो के तैल लगाया जा रहा था, उस समय तेल की एक बूद, एक टपका नीचे गिर गया। कोटिपति सेठजी ने नीचे झुक कर अगुली से उसे पोछा और पगरखी के लगा लिया तो नौकर-चाकरो ने देखा कि यह मक्खीचूस क्या करेगा। सेठ जी अक्लमद थे। उन्होने नौकरो के मनोभाव को चटपट ताड लिया और कहा—"तुमने हमे पहचाना नही है। महाजन यो तो एक बूद भी व्यर्थ नही जाने देता, एक पाई भी फिजूल खर्च नही करता पर आवश्यकता पडने पर पैसे को पानी की तरह बहा देता है।

उन दिनो सूरत मे बालदिये आये हुए थे। उनकी बालद के

पोटियो (बैलो) पर लदी केसर न बिकने पर निराश हो वे सूरत से कूच की तैयारी करने लगे। सूरत जैसे देश-विदेशो मे विख्यात नगर के श्रेष्ठी भी केसर से भरी बालद नही खरीद सके, अन्य नगरो मे, इस प्रकार के अपवाद के फैलने से सूरत नगर की प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा, इस विचार से श्रेष्ठी ने बालद के मुखिया को कहा— "तुम लोग खाली हाथ मत जाओ, मेरे यहा भवन-निर्माण हेतु चूने का घरट चल रहा है। तुम्हारी केसर से भरी पूरी बालद उसमे डाल दो। इस प्रकार आन शान के धनी श्रेष्ठी ने विशाल बालद की सारी केसर खरीद कर चूने के गाले मे डलवा दी। धरती पर गिरी तेल की बूद को व्यर्थ न जाने देने वाले श्रेष्ठी का साहस कितना बडा था ?

मन्दिरो के इतिहास मे सुनते हैं—मन्दिर के निर्माण मे शिल्पियो के मुख से ईंटो के अभाव की बात सुन कर एक श्रेष्ठिवर ने कहा—"ईंटे नही हैं तो नीव मे चादी की सिल्लिया डाल दो।" तत्काल चादी की सिल्लियो से मन्दिर की नीव भर दी गई। ऐसे-ऐसे महाजन पूर्वकाल मे हमारी इस आर्य धरा पर थे।

मेवाड का इतिहास तो स्पष्ट रूप से बता रहा है कि जिस समय मेवाड के महाराणा प्रताप उदास हो कर बादशाह के साथ सधि करने को तैयार हो जाते हैं, मेवाड की स्वतन्त्रता खतरे मे जाने को होती है, उस वक्त अकेला भामाशाह कहता है—"हमारे जीते जी, हमारे जीवित रहते हुए तो हमारे देश को गुलामी मे पडने की नौबत नही आने दी जायगी।" उसने महाराणा प्रताप से कहा—"आप चिन्ता मत कीजिये। यह दास जब तक जीवित है तब तक किसी बात की कमी नही आने पायेगी। मेरे खजाने, मेरे कोठार आपके लिए, मेवाड की स्वतन्त्रता के लिए खुले हैं। जितना धन, जितना धान्य चाहिए ले लीजिये। मेवाड की सेना बारह वर्ष तक खाती रहे और शत्रुओ से लोहा लेती रहे, इतना तो हमारे पास है।" यह कहते हुए श्रेष्ठिवर भामाशाह ने अपना अन्न-धन-सर्वस्व महाराणा को समर्पित कर दिया। भामाशाह ने रोते-रोते नही दिया, अपितु हसते हसते अपना खजाना मातृभूमि मेवाड की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप को सम्हला दिया। भामाशाह अपने

सर्वस्व का समर्पण करते समय महाराणा से कहता है—"मेवाड नाथ! मेवाड की स्वातन्त्र्यरक्षा का कार्य मेरा काम है। यह पैसा मेरा नही हमारी मातृभूमि मेवाड का ही है। यह पैसा यदि मेवाड की रक्षा के लिए, मेरे भाइयो के लिए काम नही आया, मेरी तिजोरियो मे ही पडा रह गया और मेरा प्राणाधिक प्रिय देश मेवाड पराधीन हो गया तो मेरा और मेरे देशवासियो का नाम डूब जायगा।"

स्वर्णिम इतिहास से शिक्षा लें

इसी तरह आपको भी, आवश्यकता पडने पर यदि आपका पैसा आपके सघ के हित के लिए, समाज हित के लिए, शासन के हित के लिए काम मे आता है तो पैसा देने मे तिल भर भी सकोच नही करना चाहिये। इससे ममता का बन्धन ढीला होगा, ममता का बन्धन ढीला होने पर आपकी आत्मा का कर्मभार हल्का होगा और वह ऊपर उठेगी।

तो मैंने यह परिग्रहवध का ज्ञान आपके सामने रखा। परिग्रहबन्ध के इस ज्ञान से लाभ उठा कर आप इन पर्वाधिराज के दिनो मे परिग्रह के बन्धन को ढीला करिये। यही बात कवि ने अपने शब्दो मे कही है—

यह पर्व पजूसण आया,
सब जग मे आनन्द छाया रे, यह पर्व पजूसण आया।
तन से ममता को मारो, धन से कोइ मोह निवारो।
मन के सब सल्य मिटाओ रे, यह पर्व पजूसण आया॥
कोइ तप मे जोर लगावे, कोई शील धर्म मन लावे।
तप दान का जोर लगावो रे, यह पर्व पजूसण आया॥

आपको यह अच्छी तरह बता दिया गया है कि परिग्रह बन्ध का कारण है। जब परिग्रह बन्ध का कारण है तो हमे सबसे पहले यह ज्ञान करना है, यह विश्वास करना है कि परिग्रह का मतलब केवल बाहरी सामग्री ही नही है, परिग्रह का मतलब है बाहरी सामग्री पर हमारे मन की पकड। अत परिग्रह के बधन को काटने के लिए अथवा ढीला करने के लिए बाहरी सामग्री पर जो हमारे

मन की पकड है, उस पकड को मिटाना है। आपकी अपने तन पर, धन पर और मन पर जो ममत्व की पकड है, उसे मिटाइये।

ममता को मारो

सब से पहले अपने तन से इस पकड को मिटाइये। यदि तन पर से ममता की पकड ढीली नही होती है तो तप नही होगा। प्रतिदिन तीन चार बार खाने-पीने का कार्यक्रम होता है। तन पर ममता है तभी तो तन की सार-सम्हाल और पुष्टि के लिए व्यक्ति दिन मे दो बार, तीन बार और चार बार भी नाश्ता, खाना, पीना आदि करता है। तन पर से यह मन की ममता की पकड ढीली होगी तभी तो तप होगा, अन्यथा नही।

इसी तरह धन पर ममता की पकड, ममता की गाठ ढीली होगी, तभी दान की भावना जगेगी, दान दिया जा सकेगा। धन पर ममता की पकड को ढीली नही करेंगे, तब तक दान नही दिया जा सकेगा।

इसी प्रकार मन की ममता को मारेंगे तो मन के विकार निकलेंगे। मन के विकारो को निकालने से कर्म का भार हल्का होगा। तो पर्वाधिराज के इन पावन दिनो मे इन तीनो ममताओ को मारना है।

तन की ममता को मारना अधिक मुश्किल नही है। पर्वाधिराज के दिनो मे तपस्याओ की झडी लग जाती है। भाई और बहिने उपवास, बेला, तेला, पचोला, अठाई और बडी बडी तपस्याए कर रहे हैं। किसी ने पहले अठाई नही भी की है तो अठाई करने के लिए तैयार हो जाता है। बच्चे और बच्चिया भी लाड-कोड के लिए तपस्यायें करने को तैयार हो जाती है। तो तन की ममता को छोडना कठिन तो है पर मन की ममता छोडने की अपेक्षा उतना अधिक कठिन नही है।

धन की ममता भी नाम कमाने की भावना से कम हो जाती है। समाज मे नाम होगा—इस दृष्टि से अनेक भाई धन पर ममता के बन्धन को ढीला कर दान देने के लिए उद्यत हो जाते हैं। आपने अपने नगर बालोतरा मे ही मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय कुछ समय पूर्व देखा कि एक एक आदमी धन पर अपनी ममता को कम करने

के लिए किस प्रकार किस हद तक तैयार हो गया था। तीसरी है मन की ममता। तन और धन की ममता को छोडने की अपेक्षा मन की ममता को छोडना कही अधिक कठिन है। तन का परिग्रह, धन का परिग्रह, ये दोनो बाह्य परिग्रह हैं। मन का परिग्रह है, यह आभ्यन्तर परिग्रह है—कर्म परिग्रह हैं। महिमा पूजा की कामना से, नाम के लिये, किसी भी प्रकार की लोकैषणा के लिये तप, जप, दान आदि कोई भी कार्य करना, यह कर्म-परिग्रह है, मन का परिग्रह है। इस कर्म परिग्रह को कम करना, मन की ममता को मिटाना बडा ही कठिन है। यह अन्तर का परिग्रह, मन की ममता का आभ्यन्तर परिग्रह जब हम ढीला करेंगे तभी निर्भय हो सकेंगे, चरम लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

आप ससार मैं बैठे हैं, आवश्यक बाह्य परिग्रह के विना आपका गृहस्थ जीवन चल नही सकता। पर गृहस्थ होते हुए भी, गृहस्थ धर्म के निर्वहन योग्य परिग्रह रखते हुये भी आपको अपरिग्रही बनना है। आवश्यक परिग्रह रखते हुये भी आप मन के परिग्रह की पकड को, परिग्रह पर ममता की गाठ को ढीली कर के अपरिग्रही बन सकते हैं। धन पर मूर्छा है, उसको कम करिये। धर्म-शासन की अभ्युन्नति के लिये, समाज के हित के लिये और जरुरतमन्दो के हित के लिये मौका आय तो अपनी सम्पदा का उन कार्यों मे उपयोग कीजिये। इस प्रकार अपनी सपदा का उपयोग करना सीखेंगे तो आपका परिग्रह अधिकरण वनने के बजाय उपकरण बन जायगा।

भगवान् वीतराग की अमृतमय वाणी सुनने से हमे यह ज्ञान होता है कि परिग्रह पर ममता का वन्धन नही होना चाहिये। परिग्रह का वन्धन यदि प्रगाढ होगा तो उत्तरोत्तर ईर्ष्या, द्वेष, कलह लडाई-झगडे, मिलावट, चोरबाजारी और मुकद्मावाजी होगी। और यदि आपने परिग्रह पर ममता घटा ली तो आप सोचेंगे कि आप अपने स्वय के जीवन-निर्वाह के लिये, अपने परिवार और वच्चो के लिये, समाज के हित के लिये आवश्यकता पूर्ति योग्य अर्थोपार्जन करेंगे तो सभी लोग आपके मित्र होगे, आपको न राज्य का डर रहेगा और न समाज का ही। आज महाजन समाज

यदि एक परिग्रह का ही सही मतलब, सही स्वरूप समझ ले तो ससार के सब लोग उसके मित्र बन सकते हैं।

पर्व दिनो मे कर्त्तव्य—आध्यात्मिक उत्थान

एक बात साधारणतया आप सबको और विशेषत युवा पीढी को ध्यान मे लेनी है। आठ दिन के लिये बाजार बन्द है अत आपको अपना अधिकाधिक समय धर्म साधना मे, स्वाध्याय मे लगाना है। ऐसा न हो कि कोई भी युवक पर्वाधिराज के पावन अनमोल आठ दिन ताश-चौपड खेलने मे व्यर्थ ही बरबाद कर दे। मुझे बडा दुख हुआ यह सुन कर कि कल कुछ युवक और वह भी जैन कुल के युवक जुआ खेलते हुए पकडे गये और उन्हे राजदण्ड से दण्डित होना पडा। जो युवक हैं, किशोर हैं, उन्हे यह बात अपने हृदय मे अच्छी तरह बैठा लेनी चाहिये, खयाल मे ले लेनी चाहिये कि जैन कुल मे जन्म लेकर इस प्रकार की हीन और गदी प्रवृत्तियो मे भाग लेना, स्वय को, अपने माता-पिता को, अपने कुल को और अपने समाज को कलकित करना है। जवानो को चाहिये कि वे युवक दल को सगठित कर भविष्य मे इस प्रकार की कलकपूर्ण प्रवृत्तियो पर पूर्ण रूप से रोक लगायें। आप इस प्रकार की प्रवृत्तियो मे पकडे जायेंगे तो सम्पूर्ण समाज को शर्मिन्दा होना पडेगा। केवल जैन ही नही अपितु सभी सभ्य समाज के लोगो को इस बात पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देने की आवश्यकता है। जिन युवको ने जुवा खेला, उन्हे सिपाही पकड कर ले गये, कठघरे मे बन्द किया गया, इससे उनके माता-पिता को, उनके परिवार वालो को कितना शर्मिन्दा होना पडा होगा ? मैं सभी जवानो को सावधान करते हुए सलाह देता हू कि वे मेरी इस बात को ध्यान मे ले। बाजार बन्द है इन पर्व के दिनो मे तो अपना अधिकाधिक समय ज्ञान-ध्यान, स्वाध्याय, सामायिक, धर्मश्रवण, धर्माराधन और धर्मचर्चा मे लगायें। आपसे समाज को बडी ऊ ची-ऊ ची आशाए है,। आप लोग सुदृढ युवकदल सगठित कर सामाजिक कुरीतियो को दूर करने का सकल्प करें। अगर आपको कुछ करना है तो समाज सुधारक बनिये, समाज को ऊ चा उठाने का प्रयास कीजिये। जुआरी बनकर अपना, अपने माता-पिता का और अपने कुल का नाम कलकित

मत कीजिये। कम से कम इन पर्व के दिनो मे तो इस प्रकार की गदी प्रवृत्तियाँ न कीजिये। दूसरे को ठोकर खाकर गड्ढे मे गिरा देखकर सबक लीजिये। अगला व्यक्ति ठोकर खाकर गड्ढे मे गिरा और पीछे चलने वाले भी उसी प्रकार गड्ढे मे गिरें तो, यह तो भेड चाल हो गई।

इन पर्व के दिनो मे तन से, मन से, वाणी से मगल प्रदायिनी धार्मिक प्रवृत्तियो मे भाग लेकर अपनी आत्मा को ऊचा उठाने का प्रयत्न करिये। यहा अखण्ड जाप चल रहा है। व्याख्यान के पूर्व और पश्चात् एक-एक घटा इस जाप मे सम्मिलित होने का कार्यक्रम रखिये। व्याख्यान के बाद एक घटा मौन रखकर देव-वदन, गुरु-वदन कीजिये। अरिहत प्रभु को प्रत्येक भाई-बहिन बारह (१२) बार वन्दन और धर्माचार्य को ३६ वदन अवश्य करे। इस प्रकार त्रिकाल-वदन करना है। यह बिना गाठ खाली किये हो सकता है। तन मन से ममता को दूर हटा कर यथाशक्ति व्रत नियम लें और उपवास करने वाले भाई पौषध का ध्यान रखे। जो भाई बहिन इस प्रकार धर्मसाधना करेंगे और ममता की गाठ ढीली करेंगे वे इहलोक और परलोक मे परम मगल और कल्याण के भागी बनेंगे।

ॐ शाति शाति शाति

मुकन भवन,
बालोतरा,
दि २२ ८ ७६

द्वितीय दिवस—दर्शन दिवस—का

प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र दिश ।

अलौकिक जादू

वन्धुओ !

आज हम परम पावन पर्वाधिराज के मगलमय दूसरे दिवस मे प्रवेश कर रहे है और पर्व की मगल साधना मे आप महापुरुषो के मगलप्रदायी जीवन का 'अन्तगड दशासूत्र' के माध्यम से परिचय भी पा रहे हैं। राजघराने के व्यक्ति अतुल वैभव एव उत्कृष्ट भोगो को तृण के तुल्य समझ कर साधना के कण्टकाकीर्ण मार्ग मे आगे आये और अपना जीवन सफल वना गये। अनेक जन्मो से नही, अपितु उसी जन्म मे वे जन्म-जरा-मृत्यु के दु खो का अन्त कर मुक्ति के अधिकारी वन गये। उनमे से वर्तमान का वर्णन श्रीकृष्ण के भ्राताओ के सम्वन्ध मे चल रहा है। श्री कृष्ण के उन छ भ्राताओ का वाहर का परिचय सुलसा गाथापत्नी के पुत्रो के रूप मे मिलता है पर वस्तुत वे सुलसा के पुत्र नही, महारानी देवकी के पुत्र थे। तीन खण्डो के नायक श्री कृष्ण के सहोदर भ्राता और इतने वडे सम्पत्तिशाली हो कर भी वे छहो एक साथ ससार के समस्त भोगोपकरणो को लात मार कर साधु वन गये। ऐसा क्या जादू था और कौन था जादूगर ?

आज रात दिन कहने-सुनने पर भी त्याग की बात गले नही उतरती। गले उतरनी तो रही दूर, कुछ माई के लाल ऐसे भी होगे जो त्याग-तप की साधना के इन मगलमय महापर्व के दिनो मे भी वीतराग-वाणी सुनने को नही आ पाते।

जैन समाज ने बडा साहस किया कि बालोतरा मे ६ दिन बाजार बन्द रखने का निर्णय किया। बाजार बन्द रहने पर किसी को धर्म-साधना मे भाग लेने मे कोई दिक्कत नही होगी। बाजार बद रहने के कारण घर मे खाने-पीने और बाल-बच्चो को सम्हालने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नही रह जाता। ऐसी स्थिति मे भी जो भाग्यशाली घण्टा-दो-घण्टा वीतराग वाणी नही सुन सकें तो किसे अवरोधक कारण मानना चाहिये ?

(अनेक श्रोताओ ने समवेत स्वर मे कहा—"घोर अन्तराय कर्म को।")

सम्यग्दर्शन का चमत्कार

हाँ तो मैं कह रहा था कि ऐसा क्या जादू था, क्या कारण था, भगवान् नेमिनाथ और भगवान् महावीर ने ऐसी कौन सी वाणी कही कि उसे एक बार सुन कर ही बडे बडे राजघरानो के युवक, युवतिया, वृद्ध, वृद्धाएँ, बालक तथा बडे-बडे गाथापति, कोटिपति अनुपम ऐश्वर्य, अतुल धन सम्पत्ति और विपुल भोग सामग्री को ठुकरा कर कण्टकाकीर्ण अति कठोर साधना-पथ पर अग्रसर हो गये ? जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, उनको सही ज्ञान हो गया। भगवान् की वाणी को सुन कर उन्हे विष और अमृत का सच्चा ज्ञान हो गया और इसी सही ज्ञान के फलस्वरूप उन्होने भौतिक सम्पदा, ऐश्वर्य एव भोगोपभोग की सामग्री को विष समझ कर ठुकरा दिया और सयम को अमृत समझ कर अगीकार कर लिया, आत्मसात् कर लिया। वस्तुत आदमी को सही ज्ञान हो जाना चाहिये, सही दर्शन अर्थात् विश्वास हो जाना चाहिये, उसके पश्चात् वह सच्चे पथ पर आरूढ होने मे, अग्रसर होने मे विलम्ब नही करता।

हम भी ज्ञान और विश्वास अर्थात् दर्शन की वात कर रहे हैं। कल पहला दिन था ज्ञान का अत ज्ञान की वात कही। परिग्रह और वध के सवध मे कुछ वाते कही, जिससे कि—परिग्रह क्या है, वध क्या है, यह हम जाने। क्योकि जानने से ही मानेंगे।

मोक्ष प्राप्त करने का पहला साधन ज्ञान और दूसरा साधन दर्शन है। ज्ञान की वात लम्बी हो सकती है पर समय की सीमा मे वधे होने के कारण कल मूल मुद्दे की बातें ही कह सके। कल वन्ध के ज्ञान की वात चली तो सूत्र कृताङ्ग की पहली और दूसरी गाथा से वताया गया था कि वन्ध क्या है। उन गाथाओ का साराश इस प्रकार है —

वोध करो वन्धन को तोडो

"वोध करो कि भगवान् महावीर ने वन्धन किसे कहा है और किन किन वातो को जानकर उस वन्धन को तोडा जाता है। वन्धन और वन्धन को तोडने का ज्ञान प्राप्त कर वन्धन को तोडो। सचित्त अथवा अचित्त वस्तु को पकड कर जो कोई थोडे से भी परिग्रह को लेता है, उस पर मूर्छा-ममता करता है अथवा उस पर मूर्छा-ममता करने वाले का अनुमोदन करता है, वह व्यक्ति दु ख से मुक्त नही होता।"

वन्धन और मुक्ति दोनो का मूल कारण मन-

अगर इसे सीधे शव्दो मे कहना चाहें तो यो कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति परिग्रह से चिपका रहता है, वह व्यक्ति वन्ध की वेडियो मे जकडा जाता है, दु खो मे लिप्त हो, दु खो से ग्रस्त हो अहर्निश निरन्तर तडपता रहता है, दु खो से मुक्त नही होता। कल इस पर थोडी वाते एव विचार-चर्चा की थी। शरीर-परिग्रह, वाह्य भाण्डोपकरण-परिग्रह और कर्म-परिग्रह-ये तीन भेद परिग्रह के भगवान् ने कहे पर साथ ही कहा कि परिग्रह का सम्वन्ध जितना चीजो से, वस्तुओ से नही, उतना मन से हे।

तन-परिग्रह वन्धन एव मुक्ति दोनो का साधन-

कल के व्याख्यान का यह निचोड रहा कि परिग्रह की गाठ को ढीली करो। परिग्रह की गाठ को, वन्धन की गाठ को ढीली

करोगे तो बाहर की सामग्रियाँ तुम्हारे पास रहकर भी दु खदायी नही बनेगी। तुम उनको सुख का साधन बना सकोगे। गौतम कुमार और अनीकसेन आदि ने मोक्ष-मार्ग की साधना किससे की? तन से। क्या आप और क्या हम—मोक्ष-मार्ग की साधना किससे करते हैं अथवा किससे कर सकते है ? तन से। अगर हमारा यह तन नही हो तो हम मोक्ष की साधना नही कर सकते। यह तन भी परिग्रह है पर तन के परिग्रह को परिग्रह के रूप मे नही रखे, तन पर से ममता की गाँठ को ढीली कर दे और इस तन से जो हिंसा, आरम्भ-समारम्भ आदि बन्धन बढाने वाले कार्य किये जाते है उनकी बजाय तन की शक्ति को धर्मसाधना मे लगा दें तो यह तन-परिग्रह कर्मबन्ध काटने का उपकरण बन जायगा। उपकरण का अर्थ है उपकारी और अधिकरण का अर्थ है अपकारी। आप इस तन से स्व तथा पर का उपकार भी कर सकते है और अपकार भी। आपके एक हाथ मे उपकार है और दूसरे हाथ मे है अपकार। आप अपना पराया उपकार अर्थात् भला करना चाहते हैं या अपकार अर्थात् बुरा? आज आपका धन, आपका तन आपके लिये अपकार कारक हो रहा है। इसका एक मात्र कारण यही है कि आपने अपने धन पर से और तन पर से बन्धन-वर्द्धक ममता की गाठ ढीली करने की वजाय दृढ कर रखी है, प्रगाढ बना रखी है। आप स्वय अपने हृदय पर हाथ रखकर विचार कीजिये। आप व्यवसाय करते है, बाजार मे काम करते है तो कितने हिंसा, झूठ, अदत्ता-दान, क्रोध, मान, माया लोभ आदि पापो का आसेवन करते हैं? लडते है, झगडते है, हाथ से, वाणी से, मन से चौबीसो घटे इस तन के द्वारा कितना कर्मो का भार इकट्ठा करते है। इस प्रकार पाप वढाया तो स्व-पर का, अपना तथा पराया अपकार हुआ कि उपकार? अपकार। यह पाप का और कर्मो का भार शरीर से वढाया कि और किसी से? शरीर से।

तन एव धन-परिग्रह को अपकारी नहीं, उपकारी बनाओ

इसी तरह बाजार मे वैठ कर वोलना शुरु किया तो कोई न कोई आरम्भ-परिग्रह की, लेन-देन की, धधे की वात करेंगे, शादी-

विवाह की बात करेंगे, राजनैतिक बातें करते हुए एक दूसरे की आलोचना कर व्यर्थ ही परापवाद का पाप उपार्जित करेंगे। तो वाणी से भी क्या किया? अपकार। तो इस प्रकार तन और धन दोनो को ही अपकारी बना रहे हैं। अपकारी बनाते है तो ये परिग्रह हो गये आपके लिये दु खदायी। उपकारी बनाना चाहते हो तो बन्धन मे लगे, अपकार मे लगे तन और धन को, इन पर लगी ममता की गाठ को ढीली करके उपकारी बनाओ। ममता की गाठ ढीली करते ही ये तन और धन दोनो ही अपकारी से उपकारी बन जायेंगे।

तन की ममता मारने पर ही तप-साधना

तप की साधना करते हुए तन पर से ममता को हटा कर, ममता के बधन को ढीला करके व्रत-प्रत्याख्यान द्वारा जो व्यक्ति निरवद्य कार्यो की साधना करता है, वह व्यक्ति कर्मो के भार को, पापो को हल्का करेगा या भारी? हल्का करेगा। इसलिये भगवान् महावीर ने कहा—"परिग्रह को उपकरण बनाओ।" परिग्रह शब्द शास्त्रीय है, इसको सरल करके कहू तो यही कहना होगा कि तन और धन को उपकारी बनाओ। यह पहले कहा जा चुका है कि तन के ऊपर से, धन के ऊपर से ममता हटेगी, तभी ये उपकारी बन सकेंगे। धन उपकारी कब बनेगा? क्या आपकी तिजोरी मे पडे-पडे आपका धन उपकारी बन जायगा? नही। वाणी उपकारी कब बनेगी?

मैं अभी वाणी का उपयोग कर रहा हू। तन को-शरीर को सयत आकार मे रख, एक आसन से बैठ कर आप लोगो की ओर अभिमुख रहते हुए अपनी हलन-चलन आदि क्रियाओ का निरोध कर, अपने सुखासन आदि इधर-उधर के आराम छोड कर, अपने तन के द्वारा अपनी वाणी के द्वारा आप लोगो को वीतराग भगवान् की पाप-पक-प्रक्षालिनी वाणी सुना रहा हूँ, तो यह उपकार कर रहा हूँ, तन-परिग्रह को धर्म-साधना का उपकरण बना रहा हूँ। वीतराग की वाणी सुनाने के बजाय यदि नदी के किनारे शीतल हवा का सेवन करने के लिये घूमने चला जाता, बडी शीतल हवा है, इन

दिनो बालोतरा भी समुद्री किनारे की सीनरी उपस्थित कर रहा है, यह विचार कर वहा घूमने चला जाता तो मेरे शरीर का वह काम अपने शरीर पर राग के कारण मेरे लिये अपकारक हो जाता।

मानव तन नहीं बार-बार

याद रखो मानव तन बडी मुश्किल से मिला है। सामायिक, स्वाध्याय, जप, तप आदि कर के इस तन को धर्मसाधना का उपकरण बना लो, उपकारी बनाओ। तास-जुवा-चौपड आदि खेलने मे व्यर्थ ही समय नष्ट कर इस तन को अपकारी मत बनाओ।

बालोतरा सघ को साहसिक निर्णय—युवको को चुनौती

यहा के पचो ने कल यह निर्णय लेकर सूझ-बूझ का काम किया कि बाजार के एक ओर से लेकर दूसरे छोर तक कोई ताश-जुआ न खेले। मैं नौजवानो को सजग करता हूँ कि वे सदा इस प्रकार की गदी प्रवृत्तियो से दूर रह कर धर्माभ्युदय, धर्म-साधना और समाजोत्थान के कार्यों मे अपनी शक्ति का सदुपयोग करें। अब समय नही है कि गफलत मे रहे। ये अधिकाश बडे-बूढे सोचा करते हैं कि ये छोरे क्या करेंगे। जैसी कि एक मारवाडी कहावत है—"छोरिया सू घर बसतो, तो बावो बूढो क्यू लावतो ?" जवानो को इस बात की चुनौती देनी चाहिये। बूढी काग्रेस वालो को जवान काग्रेस वाले चुनौती देने लग गये हैं। सजय थोडे दिनो मे ही पहचान मे आ गया है। आज देश के नौजवान कार्यक्षेत्र मे उतर रहे है पर महाजनो के लडके, खाने-पीने की सब प्रकार की सुख-सुविधा होते हुये भी सामाजिक सुधार मे, धर्म-साधना के कार्य मे आगे नही आते। सुबह सात आठ बजे तक उठते है। वे सोचते हैं—"हमारी नवाबी कायम रहेगी। अब समय बदल गया है, जवानो को होश भरे जोश के साथ समाज-सेवा के कार्यो मे, धर्म-साधना मे अग्रसर होना होगा। एक शायर ने कहा है—

किस काम की नदी वह, जिसमे नही रवानी।
जो जोश ही न है तो, किस काम की जवानी ॥

विवाह की वात करेंगे, राजनैतिक वाते करते हुए एक दूसरे की आलोचना कर व्यर्थ ही परापवाद का पाप उपार्जित करेंगे। तो वाणी से भी क्या किया? अपकार। तो इस प्रकार तन और धन दोनो को ही अपकारी बना रहे है। अपकारी बनाते है तो ये परिग्रह हो गये आपके लिये दु खदायी। उपकारी बनाना चाहते हो तो बन्धन मे लगे, अपकार मे लगे तन और धन को, इन पर लगी ममता की गाठ को ढीली करके उपकारी बनाओ। ममता की गाठ ढीली करते ही ये तन और धन दोनो ही अपकारी से उपकारी बन जायेंगे।

तन की ममता मारने पर ही तप-साधना

तप की साधना करते हुए तन पर से ममता को हटा कर, ममता के बधन को ढीला करके व्रत-प्रत्याख्यान द्वारा जो व्यक्ति निरवद्य कार्यो की साधना करता है, वह व्यक्ति कर्मो के भार को, पापो को हल्का करेगा या भारी? हल्का करेगा। इसलिये भगवान् महावीर ने कहा—"परिग्रह को उपकरण बनाओ।" परिग्रह शब्द शास्त्रीय है, इसको सरल करके कहू तो यही कहना होगा कि तन और धन को उपकारी बनाओ। यह पहले कहा जा चुका है कि तन के ऊपर से, धन के ऊपर से ममता हटेगी, तभी ये उपकारी बन सकेंगे। धन उपकारी कब बनेगा? क्या आपकी तिजोरी मे पडे-पडे आपका धन उपकारी बन जायगा? नही। वाणी उपकारी कब बनेगी?

मैं अभी वाणी का उपयोग कर रहा हू। तन को-शरीर को सयत आकार मे रख, एक आसन से बैठ कर आप लोगो की ओर अभिमुख रहते हुए अपनी हलन-चलन आदि क्रियाओ का निरोध कर, अपने सुखासन आदि इधर-उधर के आराम छोड कर, अपने तन के द्वारा अपनी वाणी के द्वारा आप लोगो को वीतराग भगवान् की पाप-पक-प्रक्षालिनी वाणी सुना रहा हूँ, तो यह उपकार कर रहा हूँ, तन-परिग्रह को धर्म-साधना का उपकरण बना रहा हूँ। वीतराग की वाणी सुनाने के बजाय यदि नदी के किनारे शीतल हवा का सेवन करने के लिये घूमने चला जाता, बडी शीतल हवा है, इन

दिनो वालोतरा भी समुद्री किनारे की सीनरी उपस्थित कर रहा है, यह विचार कर वहा घूमने चला जाता तो मेरे शरीर का वह काम अपने शरीर पर राग के कारण मेरे लिये अपकारक हो जाता।

मानव तन नहीं वार-वार

याद रखो मानव तन वडी मुश्किल से मिला है। सामायिक, स्वाध्याय, जप, तप आदि कर के इस तन को धर्मसाधना का उपकरण वना लो, उपकारी वनाओ। तास-जुवा-चौपड आदि खेलने मे व्यर्थ ही समय नष्ट कर इस तन को अपकारी मत वनाओ।

वालोतरा सघ को साहसिक निर्णय—युवको को चुनौती

यहा के पचो ने कल यह निर्णय लेकर सूझ-बूझ का काम किया कि वाजार के एक ओर से लेकर दूसरे छोर तक कोई ताश-जुआ न खेले। मैं नौजवानो को सजग करता हूँ कि वे सदा इस प्रकार की गदी प्रवृत्तियो से दूर रह कर धर्माभ्युदय, धर्म-साधना और समाजोत्थान के कार्यो मे अपनी शक्ति का सदुपयोग करें। अव समय नही है कि गफलत मे रहे। ये अधिकाश वडे-वूढे सोचा करते हैं कि ये छोरे क्या करेंगे। जैसी कि एक मारवाडी कहावत है—"छोरिया सू घर वसतो, तो वावो वूढी क्यू लावतो ?" जवानो को इस बात की चुनौती देनी चाहिये। बूढी काग्रेस वालो को जवान काग्रेस वाले चुनौती देने लग गये है। सजय थोडे दिनो मे ही पहचान मे आ गया है। आज देश के नौजवान कार्यक्षेत्र मे उतर रहे है पर महाजनो के लडके, खाने-पीने की सव प्रकार की सुख-सुविधा होते हुये भी सामाजिक सुधार मे, धर्म-साधना के कार्य मे आगे नही आते। सुवह सात आठ बजे तक उठते है। वे सोचते है—"हमारी नवाबी कायम रहेगी। अब समय बदल गया है, जवानो को होश भरे जोश के साथ समाज-सेवा के कार्यो मे, धर्म-साधना मे अग्रसर होना होगा। एक शायर ने कहा है—

किस काम की नदी वह, जिसमे नही रवानी।
जो जोश ही न है तो, किस काम की जवानी।।

जवानी की शोभा

दश बीस दिन पहले भी यही नदी थी। इसे कौन नदी पहचानता था। कोई राहगीर जाता तो बालू मे पैर धसते थे, सब ओर रेगिस्तान ही रेगिस्तान। नदी मे रवानी आई, कल्लोल करती वेगवती जलधार बही, तो आज रेगिस्तान दिखने वाली भूमि सस्य श्यामला हरी-भरी हो गई। नदी के दोनो कूलो की, दोनो किनारो की चप्पा-चप्पा भूमि पर किसान ललचाई निगाह किये कब्जा करना चाहते है। यह कब ? जबकि नदी मे रवानी आई। जिस तरह नदी की रवानी से शोभा है, उसी तरह जवानी की जोश से शोभा है। मेरा नौजवानो से यही कहना है कि सगठित हो कर, नवयुवक दल बना कर सामाजिक और धार्मिक कार्यों मे, धर्म-साधना मे सलग्न होकर अपने तन, मन तथा धन को उपकारी बनाओ। इसी मे जवानी की शोभा है।

आत्मा का रक्षक धन नहीं, धर्म

मोक्ष-मार्ग के चार साधनो मे ज्ञान के पश्चात् दर्शन का नबर आता है। मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर होने के लिये ज्ञान आवश्यक है। आपने जान लिया कि जीव क्या है, अजीव क्या है, बन्ध क्या है, मोक्ष मार्ग क्या है, पर जानने के बाद भी दर्शन अर्थात् श्रद्धान नही हो, विश्वास नही हो तो ? आप सब जानते है और जान कर ही आप बोलते है—"धम्म सरण पवज्जामि।" आप मे से कोई भी यह तो नही बोलता कि—"धन सरण पवज्जामि।" शरण क्या है, आप प्रतिदिन बोलते हैं, सन्तो से प्राय नित्य प्रति मागलिक्य सुनते हैं और कहते है—"भगवन् ! हमारा तो धर्म ही शरण है, धर्म ही आधार है, बावजी ! धर्म के बिना तो कुछ भी नही।" यह बात आप मे से सभी बोलते हैं। किन्तु मुझे कहना होगा कि—आप बोलते तो हैं पर आपका अभी इस पर पूरा विश्वास नही है। यदि आपको दृढ विश्वास हो जाय और आप अन्तर्मन से यह मान ले कि आपकी आत्मा की रक्षा करने वाला धन नही, अपितु धर्म है, तो क्या परिग्रह के बन्धन को ढीला होने मे देर लगेगी ? नही, कोई देर नही लगेगी।

परिग्रह का वन्धन ढीला कैसे हो ? आज चारो ओर नजर दौडा कर देखे तो पता चलता है कि परिग्रह का वन्धन ढीला होने की वजाय प्रगाढ से प्रगाढतर होता चला जा रहा है। लोग धन कम नही कर रहे हैं। धन से राग घट नही रहा है, राग वटता ही जा रहा है। प्राचीन काल की अपेक्षा, पुरातन पूर्वजो की अपेक्षा आज आपका परिग्रह थोडा है, पर परिग्रह थोडा होते हुए भी उस परिग्रह पर आपका ममत्व का वन्धन, मन की ममता का वन्धन प्रगाढ है, निबिड है । परिग्रह के लिये मन मे वडी उथल-पुथल, वेचैनी, परेशानी होती है और चाहते है कि जितना अधिक से अधिक सभव हो, उतना ही अधिकाधिक परिग्रह एकत्रित करे, सचित करे ।

बन्धन ढीले करने का अमोघ उपाय परिसीमन

परिग्रह के वन्धन ढीले न होने का कारण क्या है ? इसका एक वडा कारण है और वह यह है कि जव तक समाज मे, समाज के लोगो मे, व्रती गृहस्थो मे भोग्योपभोग्य सामग्री की सीमा नही होगी, उसके परिमाण पर कन्ट्रोल नही होगा, तव तक परिग्रह की लालसा बढेगी, परिग्रह वढेगा और परिग्रह के वन्धन भी गाढे होते जायेंगे। वस्तुत पाचवे व्रत के साथ सातवे व्रत का गहरा सम्वन्ध है। इसी लिये भगवान् ने कहा—"ओ मानव ! यदि तू परिग्रह को सीमित करना—कम करना और परिग्रह के वन्धनो को ढीला करना चाहता है तो भोगोपभोग की सामग्री को सीमित करना होगा, अपनी भोगोपभोग की भावना पर अ कुश लगाना होगा, भोगोपभोग की भावना को घटाना होगा। भोगोपभोग की भावना अधिक कहा वढेगी ? जहा तन पर ममता है, वहाँ भोगोपभोग की भावना वढेगी। तन की ममता को घटाने पर भोगोपभोग की चाह भी घटेगी। एक भाई भोजन करने वैठा, उसके सामने दो साग हैं, फिर भी कहता है "फला चीज नही है, आज तो अमुक साग वनाना"। थाल मे दाल चटनी है तो कहेगा "हरा साग नही है, पत्ती का साग नही है।" पत्ती का साग वनाया तो कहेगा "आलू नही है, हमारे लिये तो जमीकन्द, प्याज, आलू होना चाहिये।" उसको तिथि का भी कोई ध्यान नही रहेगा। क्यो ? इसीलिये कि शरीर पर उसकी ममता अधिक है, स्वाद पर विजय नही है। परिग्रह के वन्ध को ढीला करना है तो

भोगोपभोग की भावना पर ममत्व-भावना पर अकुश लगाना होगा। परिग्रह त्याग और भोगोपभोग की भावना का उपशमन अथवा सयमन-इन दोनो की परस्पर कडिया वधी हुई है, इन दोनो मे परस्पर अन्योन्याभाव सम्बन्ध है। ये दोनो परस्पर जुडे हुए है। ममता कम होगी तो परिग्रह कम होगा और ममता अधिक होगी तो परिग्रह बढेगा।

जिस व्यक्ति के मन मे अपने शरीर के प्रति जितनी कम ममता होगी, उसका परिग्रह उतना ही कम होगा। जिन लोगो को जीवन-निर्वाह के लिये उपयोगी अशन-पान-वस्त्रादि भोग्योपयोग्य सामग्री की जितनी कम मात्रा मे आवश्यकता होगी और अपनी आवश्यकता के अनुरूप ही इस प्रकार की सामग्री रखने की वृत्ति होगी तो उनका परिग्रह भी उतना ही कम होगा।

परिग्रह का मापक यन्त्र-मन अथवा ममत्व

यह सदा ध्यान मे रहे कि परिग्रहजन्य वन्ध का द्रव्य की अपेक्षा भाव से अधिक गहरा सम्बन्ध है। एक व्यक्ति दिन भर मे १०) रु० कमाता है, दस ही खर्च कर देता है १५) रु० कमाता है पन्द्रह ही खर्च कर देता है। उसके पीछे कोई पुछल्ला नही है। उसको यह चिन्ता नही है कि वच्चो को पढाना-लिखाना है, लडके की शादी करनी है, लडकी की शादी के लिये २५-५० हजार रुपया सचित करना है। परिवार के अभाव मे उसको अपने शरीर की चिन्ता है, अपने शरीर पर ममत्व है, अत जितना कमाता है, उतना ही अपने शरीर पर खर्च कर देता है। वचा कर पास मे नही रखता तथापि उसे अपरिग्रही नही कहा जा सकता, उसने परिग्रह का वधन ढीला कर दिया है ऐसा नही कहा जा सकता, क्योकि अपने शरीर, पर और अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये आवश्यक परिग्रह पर, द्रव्य पर उसका ममत्व केन्द्रित है।

जन्म तो विजेताओ के कुल मे, लक्षण पराजितो जैसे

दूसरी ओर आपके पीछे यह सव आवश्यकताए है। आपके पीछे परिवार है, कुटुम्व के भरण-पोपण का उत्तरदायित्व है। आप जिस कुल मे जन्मे है वह कौन सा कुल है ? वह त्यागियो का

कुल है अथवा रागकर्मियो का कुल ? वह जीतने वालो का कुल है अथवा हारने वालो का कुल ? जीतने वालो का कुल किसे कहते है। जैन कुल को। जैन का मतलब है जीतने वाला, स्वय को जीतने वाला, और राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि आत्मघाती विकारो को जीतने वाला। जो इन विकारो को जीतता है, वह जैन कहलाता है। आपने जीतने वालो के कुल मे जन्म लिया इसलिये आपका कुल जैन कुल कहलाता है। ऐसी स्थिति मे विकारो को जीतने वाले कुल के व्यक्ति मे तो विकारो के गुलाम बनने की बात दिखनी ही नही चाहिए। पर आज महावीर के अनुयायी, जैन कुल मे उत्पन्न हुए व्यक्ति परिग्रह के पक मे प्रलिप्त, परिग्रह के प्रगाढ बन्धन मे आवद्ध मिलेंगे, तो देखने वालो को आश्चर्य होगा। क्योकि कुल तो है विकारो को जीतने वालो का और बने हुए हैं परिग्रह-ममत्व आदि विकारो के गुलाम-क्रीतदास। इस प्रकार की विपरीत स्थिति क्यो है ?

कुबेरोपम पुरखाओ से शिक्षा लो

इसके कारणो की खोज करते है तो पता चलता है कि जैन समाज मे खाने-पीने-पहनने-ओढने आदि प्राय सभी कार्यो मे खर्चीला आडम्बर, शादी-विवाह आदि मे दिखावा आदि ये सब बहुत बढे हुए है, भोगोपभोग का आडम्बर अत्यधिक हो गया है। प्राचीन काल के श्रावको के पास सम्पत्ति अधिक थी कि आज आप लोगो के पास ? आनन्द श्रावक बारह करोड सोनैयो का स्वामी, चालीस हजार पशुओ एव अतुल वैभव का अधिपति—पर उसने अपने पहनने के लिये क्या रखा ? केवल दो सूती कपडे। आपको धोती, कुर्त्ता, कमीज, कोट, पैंट, बुशशर्ट आदि के पाच-पाच, दस-दस सूट चाहिए। अब आप ही बताइये आनन्द श्रावक के पास सम्पत्ति अधिक थी कि आज आपके पास ? गर्मी के दिनो मे एक कपडे की जरूरत रहती है या चार कपडो की ? गर्मी मे जहाँ एक कपडा भी असह्य लग रहा है, वहा बनियान, बुशशर्ट, अण्डरवीयर, पैंट-इस प्रकार चार-चार कपडे पहने जाते है। इसके उपरान्त रात की ड्रेस अलग, आफिस की अलग, शादी मे जाने की अलग, सामूहिक भोज मे जाने की अलग, धर्म-स्थान मे जाने की अलग पोशाक हो तो कोई बात नही। पर धर्म

स्थान मे तो पैंट, शर्ट अथवा वुशशर्ट पहनकर आते है । किसी के चमडे का कमर पट्टा लगा है, किसी के सूत का तो किसी के प्लास्टिक सेलोलाइट का । ऐसा लगता है मानो मशीन चलाने अथवा शारीरिक श्रम का कार्य करने के लिये अपने शरीर को कस कर आये हो । धर्म स्थान मे आये तो इस तरह कस कर आने की क्या आवश्यकता है? आप दूसरी सव जगहो पर यूनिफार्म वदलते हैं पर धर्मस्थान के लिये धर्मस्थान के योग्य पोशाक पहनने की ओर अधिकाश युवको का ध्यान नही जाता ।

धर्म स्थानो का आदर करना सीखो

एक मुस्लिम युवक अपने अजीज की कब्र पर खडा होकर फातिहा पढता है, कुरान शरीफ की आयत पढता है, तो सिर पर कपडा वाधता है । वह उस समय कोई मस्जिद मे नमाज नही, वल्कि कब्रिस्तान मे फातेहा पढ रहा है, तो भी सिर पर कपडा वाधता है, यह कब्रिस्तान की इज्जत है । तो राम, कृष्ण और महावीर के अनुयायियो को भी अपने धर्मस्थानो के सम्मान का सदा पूरा ध्यान रखना चाहिए । अस्तु ।

शोक-सतापहारी सम्पत्ति-परिसीमन

हाँ, तो मैं अभी आपको जैन धर्म के अनुयायियो के परिग्रह मे लिप्त होने का प्रमुख कारण वता रहा था कि जैन कुल मे उत्पन्न हुए लोगो की वाहरी आवश्यकताए आज वहुत अधिक वढ गई है, इच्छा पर अकुश नही रहा है । भोगोपभोग की सामग्री का परिमाण करने की प्रवृत्ति आज कही दृष्टिगोचर नही होती । भाइयो की परिग्रहवृत्ति के सम्वन्ध मे अभी वताया गया । वहनो मे तो परिग्रह वृत्ति की वृद्धि भाइयो की अपेक्षा भी अधिक रहती है । एक एक वहिन के वक्सो मे तरह-तरह की डिजाइन के पाच-पाच, दस-दस सूट साडियाँ लहगे आदि भरे पडे हैं, यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी । तो भी इन वहिनो को यदि यह कहा जाय कि जो उनके पास है, उससे सतुष्ट होकर पर्व के दिनो मे यह प्रतिज्ञा कर लें कि अपने लिये नया कपडा नही खरीदेगी, तो वे कभी इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने को उद्यत नही होगी । हर किस्म के कपडे इनके

पास हैं पर एक वर्ष के लिये भी नया कपडा खरीदना बन्द नही कर सकती। तो इसका मतलब यह हुआ कि आपका अपनी इच्छा पर, सग्रहवृत्ति पर अकुश नही है, ममत्व के बध की गाठ ढीली नही हुई है। परिमाण करने को कहेंगे तो यही कहा जायगा—"महाराज! कदेई अहमदाबाद जावाँ, शो रूम देखा, कोई सूट दाय आ जावे और खरीदण री लालसा जाग जावे तो खरीदणो ही पडे।"

बारह करोड सौनेयो और चालीस हजार गायो के स्वामी आनन्द श्रावक ने जिस दिन भगवान् महावीर का उपदेश सुना, उसी दिन से परिग्रह का परिमाण कर लिया। केवल दो कपडे रखे और अपनी उस सम्पत्ति मे आगे एक पाई तक भी बढाने का त्याग कर दिया। हम तो एक लाख की सम्पत्ति वाले को दो लाख तक का परिमाण करने को कहते हैं, फिर भी नही करते। २ लाख की सम्पत्ति वाले सेठजी को कहे कि ब्याज से ही सब काम चल सकता है, अब हाथाफेरी क्यो करते हो? तो कहते है—"महाराज! उपासरा मे बैठा-बैठा अरिहन्त-अरिहन्त कठा ताइ बोलता रेवा। आप तो काल विहार कर जावोला। दुकान पर तो बैठणो ही पडेगो।" उससे कहा—भाई! पाच-दस लाख जिनके पास है, उसकी रखवाली करना भी मुश्किल हो गया है। लोग, जिनके पास जो कुछ सम्पत्ति है उसे बचाने के लिए नये नये उपाय खोजने मे लगे हुए है। कुछ दिनो पहले पढने को मिला कि मद्रास मे एक भाई ने अपनी सपत्ति की रक्षा के लिये एक बडा हौज बनाया। उसके पास जो सोना था, उसकी मछलिया बनवाई और उस हौज मे पानी भरकर उन सोने की मछलियो को उसमे छोड दिया। उसने सोचा कि तिजोरी सम्हालेंगे और जर जेवर सोने के रूप मे जो भी सम्पत्ति मिलेगी, उसे सरकार द्वारा जब्त कर लिया जायगा। सोने की मछलिया बना कर हौज मे रखेंगे तो समझेंगे कि जलजन्तु हैं और इस तरह सोना सुरक्षित रहेगा। कोई यह न समझे कि इधर-उधर छुपाने से छुपा रह जायगा। जब भाग्य फूटने को हो तो छुपाने पर भी छुपा नही रह सकता। हौज मे छुपाया हुआ उस भाई का धन भी छुपा नही रह सका। कस्टम विभाग के अधिकारी आये उन्होने उस भाई के घर की तलाशी ली, तिजोरियाँ देखी, बही खाते देखे और

अन्त मे हौज भी देखा। हौज के पानी की सतह मे पीली-पीली चमकती हुई चीजें देखी तो हौज मे गोता लगाया और असलियत का पता चलते ही सोने की सारी मछलियाँ निकालकर उस भाई का वह समग्र स्वर्ण जब्त कर लिया। कितना शोक, कितना दु ख हुआ होगा उस भाई को? इससे आज श्रीमन्त लोगो को शिक्षा लेनी चाहिये।

भगवान् महावीर ने सम्पत्ति और भोगोपभोग की सभी प्रकार की सामग्री का परिमाण करने का उपदेश दिया और फरमाया —"मानवो! यदि तुम अपनी भोगोपभोग की सामग्री का आवश्यकतानुसार परिमाण करोगे, तो तुम्हे कभी शोक से सतप्त नही होना पडेगा, दु ख से छटपटाना नही पडेगा।"

सम्पत्ति की सीमा निर्धारित करने वाला भी अपरिग्रही

परिग्रह को सीमा मे कब रख सकोगे? अपरिग्रही कब बन सकोगे? गृहस्थ को भी अपरिग्रही माना गया है। जिस प्रकार गृहस्थ को ब्रह्मचारी माना गया है, 'एक नारी ब्रह्मचारी' अर्थात् गृहस्थी मे रहते हुए गृहस्थ एक नारी मे सतोष करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है। उसी प्रकार जो गृहस्थ अपने गार्हस्थ्य जीवन की आवश्यकता के अनुरूप एक लाख, दो लाख अथवा दस लाख की पू जी का परिमाण कर, इससे आगे अपनी पू जी नही बढाता है, वह एक प्रकार से अपरिग्रही माना जाता है।

"मुच्छा परिग्गहो वुत्तो"—इस आगम वचन के अनुसार कोई भी व्यक्ति—चाहे वह तुच्छ से तुच्छतर नगण्य सम्पत्ति का स्वामी ही क्यो न हो, यदि अपनी अकिन्चन सम्पत्ति पर मूर्च्छाभाव, ममत्वभाव रखता है, तो वह परिग्रही है। दूसरी ओर विपुल से विपुलतर वैभवशाली व्यक्ति भी परिग्रह का परिमाण कर अपनी सम्पत्ति पर मूर्च्छाभाव नही रखता, तो वह एक अर्थ मे अपरिग्रही माना जायगा। कवि ने कहा है —

इच्छा मूर्च्छा परिग्रह नाम पिछानो,
खान पान भोगेच्छा जड मे जानो।

भोगोपभोग दिखावा पाप बढाता,
धर्म सघ इससे ऊपर उठ जाता ।
वीतराग मार्गी हो साहस कर लो,
भवसागर तिरने का सम्बल करलो ।
देव हमारा तन पर वस्त्र न रखे,
गुरुजन को भी वस्त्रो से ना परखे ।
त्याग तपस्या की महिमा है मानी,
सदाचार की पूजा वीर बखानी ।
समय देख अब मूल मार्ग अपना लो,
भवसागर तिरने का सम्बल कर लो ।
कहे वीर प्रभु पाप भार लघु कर लो,
भवसागर तिरने का—सम्बल कर लो ।

परिग्रह रसातल का द्वार

परिग्रह की एक सीमा कर, परिग्रह का परिमाण कर अपरिग्रही बनने के साथ-साथ भोगोपभोग की सामग्री को यथाशक्ति सीमित करते रहना, भोगोपभोग की इच्छा पर नियन्त्रण करना परमावश्यक है । भोगोपभोग की इच्छा जब तक शान्त नही होती, तब तक अपरिग्रहपन की आराधना करना गृहस्थ के लिये सभव नही है । क्योकि पाचवे व्रत मे परिग्रह को तो कहा है अधर्म का द्वार और अपरिग्रह को कहा है धर्म का द्वार । परिग्रह अधर्म का पाचवा द्वार है । अधर्म के घोर दु खपूर्ण तलघर मे घुसने का प्रथम द्वार हिंसा, दूसरा द्वार झूठ, तीसरा द्वार चोरी, चौथा द्वार अब्रह्म अथवा कुशील और पाचवा द्वार परिग्रह है । इस प्रकार अधर्म के कैदखाने के हिंसा आदि पाच द्वार हैं । अधर्म के कैदखाने से छूटकर धर्म के सुरम्य प्रासाद मे, अपने निज के घर मे, आत्मघर मे आना हो तो उसके पाच द्वार हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

मैं अभी अपरिग्रह की बात कर रहा हू । अपरिग्रह के द्वार से धर्म के सुखद सुन्दर प्रासाद मे वही व्यक्ति प्रवेश पा सकेगा, जिसने कि भोगोपभोग की लालसा पर अकुश लगा दिया है, भोगोपभोग

की इच्छा पर कट्रोल कर लिया है और धन सपत्ति एव भोगोपभोग की सामग्री पर मूर्च्छाभाव को मिटा दिया है, कम कर दिया है। 'प्रश्न व्याकरण' मे परिग्रह के ये तीन नाम वताये गये है—इच्छा, मूर्च्छा और गृद्धि। इच्छा-मूर्च्छा अथवा गृद्धिभाव पर नियत्रण करना व्रत है और व्रत का ही दूसरा नाम है परिग्रह-परिमाण। भगवान् ने वन्धन काटने का उपाय वताते हुए फरमाया—"परिग्रह बन्ध का कारण है, अपरिग्रही बनकर वन्धनो को तोडो। परिग्रह मात्र का —खाने पीने, पहनने भोग, उपभोग के काम मे आने वाली सब प्रकार की वस्तुओ का परिमाण करो।"

रस-लोलुपता का अद्भुत् उदाहरण

प्रत्येक मुमुक्ष को खाने पीने आदि की वस्तुओ पर से ममत्व-भाव हटाकर उनका परिमाण करना चाहिये। जीवनी शक्ति को वनाये रखने के लिये जितना खाना आवश्यक है, उतने का परिमाण कर ले, उससे अधिक न खाए। साधारणत देखा जाता है कि प्राय सभी व्यक्तियो की अधिकाधिक खाने की इच्छा रहती है और जव पेट मना कर देता है, तभी वे खाना वन्द करते है। इतिहास की पुस्तको मे उल्लेख मिलता है कि प्राचीनकाल मे रोम के एक वादशाह को रात-दिन निरन्तर अनेक प्रकार की स्वादिष्ट वस्तुए खाने की वडी तीव्र लालसा वनी रहती थी। एक प्रकार का स्वादिष्ट भोजन भर पेट खा चुकने के तत्काल पश्चात् उसे दूसरी प्रकार का स्वादिष्ट भोजन करने की उत्कट एव अमिट उत्कण्ठा उत्पन्न होती। वमन-क्रिया द्वारा पहले खाई हुई भोजन-सामग्री से पेट को खाली कर वह फिर दूसरे प्रकार का स्वादिष्ट भोजन खाता और कुछ ही क्षणो के पश्चात् उसका वमन कर पुन अन्य प्रकार का भोजन करता। इस प्रकार दिन और रात मे उसका यह क्रम सदा ही चलता रहता। मोदक आदि नये-नये पक्वान्न वनवाते रहता, पुन पुन खाता और वमन करता। भोगोपभोग की लालसा आदमी को किस प्रकार परेशान करती है, इसका यह एक विचित्र उदाहरण है।

फैशन ने मानव मे गिरगिट वृत्ति डाल दी

भाति-भाति के सुन्दर सूट, रग-विरगे कपडे पहनने की अभि-

लाषा अथवा अभिरुचि रखने वाले लोगो की भी हालत ठीक इसी तरह की होती है। बाजार मे गये तो और ड्रेस, आफिस मे गये तो और, शादी मे गये तो और, खाने पर गये तो और तथा कमरे मे घुसे तो दूसरा ड्रेस, सोते समय का अलग ड्रेस। एक छोटा सा जानवर होता है किरकाटिया। वह दिन मे अनेक बार रग पलटता है। दु ख तो इस बात का हे कि आज-कल जगल कम हो जाने के कारण किरकाटिये तो अधिक दिखते नही, मनुष्यो ने उनकी कमी की पूर्ति कर दी है। पहले तो रग-विरगे कपडे पहनने का प्रचलन केवल मातृसमाज मे ही था पर अब तो मातृसमाज के समान रग-विरगे कपडे पहनना युवको ने भी प्रारम्भ कर दिया है। अधिकाश युवको को सफेद रग के कपडे पसन्द नही। रग-विरगे छापे के बेल-बूटे दार कपडे पहनते है। बुशशर्ट का सीने से ऊपर का रग दूसरा है, सीने से नीचे का रग दूसरा, पीछे की ओर का अन्य तरह का और बाहो का उससे भिन्न और तरह का। सादे बुशशर्ट की सिलाई मे और तरह तरह के कपडे के इस प्रकार के बुशशर्ट की सिलाई मे भी कितना अन्तर होता होगा ? युवको के पेंट, बुशशर्ट, कोट, शर्ट आदि मे आज फैशन ने कितना गहरा घर कर लिया है, उन्हे सोचना चाहिए कि इस प्रकार रग-विरगे कपडो के रखने, बदलने और बनवाने मे कितना समय एव पैसे का खर्चा होता है।

बच्चियो की ड्रेस मे भी नित्य नयी फैशन बढ रही है। फ्राक की बाहो पर पखे की तरह झालरी लटकी रहती है। बाहे अलग है, झालरी अलग है। कधे के ऊपर पखे की तरह लटकते हुए इस कपडे का क्या उपयोग ? शरीर की हिफाजत मे उस लटकते हुए कपडे का क्या काम ? क्या कोई उपयोग है ? समझ मे नही आता। दो तीन बच्चियो के कधो पर लटकते हुए इस कपडे को यदि अलग किया जाय तो एक गरीब बच्ची के पहनने का कपडा बन सकता है। पडौस मे गरीब घर की बच्ची को पहनने के लिए कपडा नही मिल रहा और दूसरी ओर अमीर घर की बच्ची झालरी के रूप मे व्यर्थ ही कपडा रोक रही है।

कितनी विवेक की कमी—क्या इसी को जैन दृष्टि कहते हैं ?

सादा और आवश्यकता के अनुसार ही कपडा होता तो कपडे

का मूल्य भी कम चुकाना पडता और सिलाई भी कम लगती। यदि चार बच्चे घर मे है और उनके इस प्रकार के व्यर्थ के कपडे की पूर्ति के लिए कुल हिसाब लगाया जाय, तो गृहपति को कितना अधिक कमाना पडेगा, कितना अधिक खर्च पडेगा ? यह तो एक प्रत्यक्ष दिखती हुई नजीर है। प्राय सभी भोग्योपभोग्य सामग्रियो के सम्बन्ध मे विचारपूर्वक देखा जाय तो यही हाल दृष्टिगोचर होगा। यह जो फैशन का भूत आज समाज के सिर पर सवार है, यह जो भोगोपभोग की वस्तुओ का कोई परिमाण न रखने की वृत्ति है, इसको आप घटाना चाहे तो घटा सकते है कि नही ? रोटी खाना, पानी पीना, कपडा पहनना तो आवश्यक है, इन्हे नही छोड सकते पर इन सब के उपयोग का परिमाण तो कर सकते है। फैशन घटाना तो आपके हाथ की बात है। इसके घटाने से कोई हानि तो नही होने वाली है, लाभ ही होने वाला है। यह झालर लटकाना घटा सकते हैं कि नही ? शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिये खाना, पीना, नहाना आपके लिये आवश्यक होता है पर बीडी, सिगरेट और अन्यान्य मादक वस्तुओ का सेवन करना, साबुन, पाउडर, सेन्ट आदि लगाना आवश्यक है क्या ? पर । इन्हे तो आप आसानी से छोड सकते है, घटा सकते है। पर स्थिति आज इससे बिल्कुल विपरीत दिखाई दे रही है। श्रीमन्त घरो के लडके सोचते है कि हम बडे घरो के लडके है, हमारे पास पैसे की तो कोई कमी नही है, हम कोई गरीब घर के लडके तो हैं नहीं, जो कजूसी करें।

इस प्रकार की विचारधारा के अधिकाश नवयुवक अपने आप को विशिष्ट स्थिति का अथवा बडे घर का सदस्य सिद्ध करने की भावना से भोगोपभोग, प्रसाधन, फैशन आदि की सामग्री पर फिजूल खर्ची करते है। उनकी देखा-देखी अथवा इस भावना से कि कही कोई उन्हे साधारण घर का—गरीब घर का न समझ ले, साधारण घरो के युवक भी फैशन पर अपनी हैसियत से अधिक व्यय करने लगते हैं।

इसका परिणाम आज आँखो के सामने है कि फैशन की युवक युवती वर्ग मे होड के साथ दौड लग रही है। आज अन्यान्य दुकानदारो की अपेक्षा शृगार स्टोर वालो की बिक्री अधिक होती है। पहले

सिंदूर की टीकी से काम चलाया जाता था। आज तरह तरह की डिजाइनदार टीकिया चाहिये। मेहदी की पत्तिया कूट, पीस, भिगोकर माताए, वहने, बच्चिया सतुष्ट हो जाती थीं। मेहदी से वदन को ठडक पहुँचती और चमडी पर रग भी आ जाता था। सादी सी मेहदी की पत्तियो पर साधारण सा खर्चा होता था पर आज चाहिये नेल पालिस और रग-रोगन। दीवारो पर, छतो पर, मकानो के द्वार पर रग लगाया जाता है, वैसा रग चाहिए। उस रग से क्या फायदा ? कोई फायदा नही। मेहदी अगर महीने मे चार वार लगाये, साल मे पचास वार भी लगाये, तो उस मेहदी पर कितना खर्चा आता है ? वहुत कम। पोलिश वगैरह शरीर पर रग लाने के अलावा और कुछ गुण भी करती है या नही ? कोई गुण नही करती। आराम भी अधिक किसमे होगा ? नेल पॉलिश रग रोगन के विना भी केवल मेहदी से काम चल सकता है कि नही ? वालोतरा के आस-पास के गावो मे कितने किसान रहते है ? उन किसान औरतो का रग रोगन, नेल पॉलिश लिपिस्टिक, पाउडर, सेंट पर कितना खर्चा आता है? कुछ भी नही। हाथ पैर वे भी रगती है या नही? रगती हैं। पर उनको आपकी तरह परिग्रह के लिये छटपटाना नही पडता। आप भी इस परिग्रह का वडी ही आसानी से त्याग कर सकती है। इस पवित्र पर्व के प्रसग पर जो माताए और वहने तपस्या कर रही हैं, कम से कम वे तो इस बात की दृढ प्रतिज्ञा करें कि वे भोगोपभोग की सामग्रियो का परिमाण कर परमावश्यक के अतिरिक्त सभी प्रकार के परिग्रह को घटाने का प्रयास करती रहेंगी। अभी जोधपुर से आई हुई बच्ची ने कहा कि महिलाए यदि दृढ सकल्प कर ले तो एक सुन्दर, सुगठित एव धर्मनिष्ठ आदर्श समाज का निर्माण कर सकती हैं। पर यह तभी सभव हो सकता है, जवकि वे भोग उपभोग की सामग्री को कम कर उसका परिमाण करें—परिग्रह को घटाये। इसके विपरीत यदि वे भोगोपभोग की सामग्री को बढाने मे ही रही तो उनकी सतति, जो आने वाली पीढी है, वह भी इनसे यही सीखेगी।

परिग्रह–वृद्धि की स्पर्धा को रोकने का एक मात्र उपाय–परिसीमन

परिग्रह का परिमाण कर यदि आप परिग्रह को कम करना चाहते हैं, तो अपरिग्रह की भावना के साथ उपभोग-परिभोग को,

भोगोपभोग की सामग्री को घटाने की आवश्यकता है । उपभोग-परि-भोग को घटाने के साथ ही परिग्रह की आवश्यकता स्वत कम हो जायगी और परिग्रह-सचय के लिये होने वाला पाप भी कम हो जायगा ।

जिस प्रकार भोगोपभोग परिग्रह को वढाने के साधन है, उसी प्रकार दिखावा-आडम्वर भी परिग्रह को वढाने का साधन है । पुराने जमाने का इतिहास सुनेगे तो पता चलेगा कि किसी कोटिपति के यहा भी लडकियो की शादी होती थी तो वडी सादगी के साथ होती थी । विपुल सम्पदा के होते हुए भी कोई आडम्वर, कोई दिखावा नही किया जाता था, खर्चा कम किया जाता था । वे विशाल वैभव के धनी होकर भी आज-कल के लोगो की तरह आडम्वर-दिखावा अथवा अपव्यय नही करते थे । जैसी कि राजस्थान मे कहावत है —

ऊँची दुकान फीके पकवान
केसर का तिलक कपूर की माला
पाच सौ की पू जी, पन्द्रह सौ का दिवाला ।

इस कहावत के अनुसार वे दिखावा नही करते थे । राजस्थानी की इस कहावत के अनुसार किशनगढ रियासत के जमाने मे वहा का कोई मुसद्दी हाकिम वन जाता तो उसका ओहदा तो हाकिम का पर तनख्वाह २०) रु० माहवार ही होती थी । कम तनख्वाह होते हुए भी हाकिम साहव अपना रुतवा-वडप्पन दिखाने के लिये सावुन लेकर तालाव पर जाते और वहा अपनी जूतियाँ सावुन से धोते । वस्तुत यह दिखावे की, वाहरी आडम्वर वताने की अभिलापा, भोगोपभोग की तीव्र इच्छा भीतर की ममता को जगाती है, भीतर के परिग्रह को जगाती है । ज्योही भीतर की ममता जागी कि मन की शान्ति भी समाप्त हो जायगी ।

समाज-निर्माण और सामाजिक नियम

समाज मे जो लोग ज्यादा पू जी वाले है, वे सोचते है कि अपने घर मे लडकी की शादी है, शादी ऐसी करनी चाहिये कि लोग देखते ही रह जाय । पहले के श्रावको के तो परिग्रह का परिमाण होता था । इसके अतिरिक्त सामाजिक नियम भी होते थे । उन

नियमो का समाज के सभी लोगो द्वारा पूरी तरह समान रूप से पालन किया जाता था। विवाह आदि के अवसर पर पचो के परामर्श के अनुसार सब कार्य किया जाता था। चाहे करोडपति के घर विवाह हो, चाहे लखपति के घर, पचो की रजा लेनी पडती थी। पच लापसी बनाने की राय देते तो पचो की राय के मुताबिक लापसी ही बनाई जाती थी। आज तो कोई नया लखपति बनता है और उसके यहा शादी-विवाह का प्रसग आता है, तो वह कहता है—"मै तो ५ प्रकार की मिठाई करूगा।" फिर कहता है—"बादाम की कतली करूगा।" ऐसा कहते और करते समय वह यह नही सोचता कि उसके पीछे मध्यम वर्ग के भाई पिस जायेगे। यह सब आडम्बर एव दिखावे की वृत्ति का तथा परिग्रह के परिमाण के अभाव मे परिग्रह-परिवर्द्धन और परिग्रह-प्रदर्शन की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का कुपरिणाम है। भगवान् महावीर का उपदेश, महावीर का अपरिग्रह का सिद्धान्त ही आज के सतप्त विश्व को वास्तविक शान्ति प्रदान करने वाला है। यदि आप भौतिक ताप के सताप से, आधि-व्याधि से मुक्त होना चाहते हैं, तो भगवान् महावीर के उपदेशो को हृदयगम कर उनके अनुसार अपने जीवन को ढाले। परिग्रह-प्रदर्शन और परिग्रह बढाने की प्रतिस्पर्धा का त्याग कर, सामाजिक हित को दृष्टि मे रखते हुए कोई भी ऐसा कार्य न करे, जिससे आपके किसी भी स्वधर्मी बन्धु को किसी भी प्रकार की असुविधा हो, परेशानी हो। आज समय रहते ही आप सम्हल जाय तो आपका, आपके समाज का और आपके छोटे-बडे बन्धुओ का, सभी का बडा हित हो सकता है।

परिग्रह ने समाज मे वर्गभेद उत्पन्न कर दिया है। आज समाज श्रीमन्त और गरीब के रूप मे दो भागो मे बटा हुआ प्रतीत होता है। आज किसी श्रीमन्त पर सकट आ जाय तो उसकी सहायतार्थ समाज के मध्यमवर्ग एव निम्नवर्ग के व्यक्ति एकत्रित नही होगे। क्योकि परिग्रह ने समाज को विभागो मे बाट कर एक प्रकार से विघटित कर दिया है। जब तक सम्पन्न लोग सब के साथ मिल-जुल कर चलते थे, दूसरो के सुख दु ख का खयाल रखते थे, तब तक परस्पर सब मे आत्मीयभाव था, सौहार्द था और पारस्परिक आत्मीयभाव के कारण सम्पूर्ण समाज एकता के सूत्र मे सुगठित था,

सुसगठित था । आज परिग्रह को प्रमुख महत्व देने के कारण वह आत्मीयता, वह बन्धुभाव जाता रहा । भगवान् महावीर ने कहा– "मानव ! परिग्रह पर मूर्छा-ममत्व मत कर । यदि तुमने प्राप्त धन को धर्म-वन्धुओ के हित मे लगा कर परिग्रह को उपयोगी बनाया तो तुझे दुर्गति मे भटकना नही पडेगा । आगम की भाषा मे कहा है– "जे ममाइय मतिं जहाति, से जहाति ममाइय ।" अर्थात् जो ममत्व-बुद्धि को छोडता है, वह परिग्रह को भी छोडता है ।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक कार्य मे समाज का प्रत्येक सदस्य यदि इस बात का ध्यान रखे कि उसका कोई भी कार्य दूसरे के लिये किसी प्रकार की कठिनाई पैदा करने वाला एव भारस्वरूप न हो, तो समाज मे परिग्रह-प्रदर्शन तथा परिग्रह बढाने की होड समाप्त हो सकती है और येन केन प्रकारेण अधिकाधिक परिग्रह उपार्जन के पाप से समाज काफी अशो मे बच जाता है ।

धन से प्रदर्शन नही, धर्मनिष्ठ पीढी का निर्माण किया जाय

आज प्राय यह देखा जाता है कि समाज मे परिग्रह-प्रदर्शन, आडम्बर और दिखावे मे धन का अपव्यय किया जाता है । परिग्रह-प्रदर्शन की सर्वत्र होड सी लगी हुई है, जो वस्तुत साधारण स्थिति के स्वधर्मी बन्धुओ को परेशानी मे डालने वाली, दु खदायी और उन पर अनावश्यक भार डालने वाली है । यही होड यदि सामाजिक सुधार, धार्मिक अभ्युत्थान और धार्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार मे लगे, तो कितने सुखद परिणाम निकल सकते हैं ? एक अति सुन्दर आदर्श समाज का निर्माण हो सकता है, जन-जन के मानस मे धार्मिक चेतना की अमिट लहर उत्पन्न हो सकती है । समाज का धार्मिक और नैतिक स्तर उन्नत हो सकता है । आज से लगभग १०-११ वर्ष पहले बालोतरा मे बच्चो एव बच्चियो को धार्मिक शिक्षण देने के लिये धार्मिक स्कूल खोला गया था, वह आज भी उसी तरह चल रहा है । आडम्बर और दिखावे के प्रति जिस प्रकार की आप लोगो की अभिरुचि है, उस प्रकार की रुचि यदि धार्मिक शिक्षा के प्रति भी होती, जिस प्रकार विवाह शादी मे आडम्बर और प्रदर्शन के साथ खर्चा करते हैं, उसी प्रकार इस धार्मिक शिक्षण-सस्था के लिये भी

त्याग करते तो आज यह धार्मिक शिक्षा देने वाली सस्था कितनी समुन्नत होती ? आज तक कैसी प्रवल धर्मनिष्ठ पीढी का निर्माण हो जाता ?

आप वीतराग प्रभु के उपासक है

इन सब वातो को हृदयगम कर आपको अपने जीवन मे उतारना है, प्रतिदिन के आचरण मे लाना है। आप अपरिग्रही वीतराग प्रभु के उपासक है। आपके देव कैसे हैं? अरिहन्त वीतराग। रेशम के कपडे पहनने वाले, सिर पर मुकुट धारण करने वाले, हीरे के सिंहासन पर वैठने वाले, श्री कृष्ण के मन्दिर मे कृष्ण का जैसा रूप मिलता है, उस प्रकार के परिधान धारण करने वाले तो नही है? आपके देव अरिहन्त। जिनके तन पर एक वालिश्त भर भी कपडा नही, उनको आप अपना देव मानते है। आपके गुरु कौन ? आपके गुरु के पास तो सभी प्रकार के सुन्दर एव विपुल साधन होने चाहिये ? नही। गुरु काष्ट-पात्र मे खाने वाले, फटे वस्त्र पहनने वाले, भिक्षा लाकर खाने वाले। विक्रम की तेरहवी शताब्दी की बात है, एक वार महाराजा कुमारपाल ने अपने गुरु आचार्य हेम-चन्द्र से कहा—"महाराज! आप भी गजब कर रहे है। आप मेरे गुरु हैं, राजगुरु हैं। आपको यह फटी चादर शोभा नही देती।"

इस पर आचार्य हेमचन्द्र बोले—"राजन्! हम राजगुरु अथवा राजाओ के गुरु नही, फक्कडता के गुरु है। हमारी चादर की चिन्ता मत करो। तुम तो ये जो तुम्हारे स्वधर्मी वन्धु उपासरे मे, मन्दिर मे आ रहे हैं, इनमे से किनके कपडे फटे है, किस-किस को किस-किस वस्तु की आवश्यकता है, इस वात की चिन्ता करो और उनकी कठिनाइया दूर करो।"

आचार्य हेमचन्द्र ने राजा कुमारपाल की आख खोल दी कि उनके कपडे फटे हैं, तो वह उनकी शान को घटाने वाला नही अपितु शान को वढाने वाला ही है।

हा, तो आपको गुरु ऐसे मिले कि फूटे पात्र मे खाने वाले, फटे वस्त्र पहनने वाले और देव ऐसे कि जिनके तन पर एक वालिश्त भर भी कपडा नही। आश्चर्य की बात है कि ऐसे देव एव गुरु के

उपासक, अनुयायी होकर भी आप रात-दिन अपना घर नोटो से भरने मे लगे हुए हैं, अपनी आत्मा को पाप के भार से भारी बना रहे है। आत्मा पर बढ रहे इस भार को कम करने के लिये, कर्म-वन्ध को ढीला करने के लिये परिग्रह को घटाने की आवश्यकता है। फैशन घटेगी, आडम्बर-दिखावा घटेगा, तभी परिग्रह घटेगा। जब तक आप भोगोपभोग की वस्तुओ का परिमाण नही करेंगे, तब तक परिग्रह भी नही घटेगा। जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है, आप इस बात को अच्छी तरह हृदयगम कर लें कि परिग्रह के बाहरी बन्धन की अपेक्षा भीतरी बन्धन, अर्थात् परिग्रह पर ममत्व, अत्यधिक खतरनाक, घोर कर्मबन्ध और भवभ्रमण का कारण है। आप परिग्रह पर ममत्व के भीतरी बन्धन को ढीला करेंगे, तभी परिग्रह को घटा सकेंगे, अपरिग्रही बन सकेंगे, अन्यथा नही।

धन तारने वाला नहीं, धर्म ही तारने वाला है

आप अपने मन, मस्तिष्क और हृदय मे निश्चित धारणा बना लीजिये कि धन आपको कभी तारने वाला नही है, धर्म ही तारने वाला है। धन के लिये नीति-अनीति को भुलाना, यह जैन का लक्षण नही है। सच्चा जैन लक्ष्मी का दास नही, अपितु लक्ष्मी का पति होता है। दुनिया मे दो तरह के आदमी होते है, एक तो लक्ष्मी के दास और दूसरे लक्ष्मी के पति। यदि आप लक्ष्मी के दास न बनकर लक्ष्मी के पति बन गये तो लक्ष्मी सदा आपके चरण चूमती रहेगी।

पर्वाधिराज के इन पवित्र दिनो मे देव, गुरु, और धम के प्रति अपनी श्रद्धा, आस्था, विश्वास अथवा दर्शन को सुदृढ बनाते हुए इस सुनिश्चित धारणा के साथ कि 'धन कदापि तारने वाला नही, केवल धर्म ही तारने वाला है'—शिव-सुखप्रदायी साधना-मार्ग पर आगे बढेंगे तो इह लोक और परलोक मे सुख तथा शान्ति के अधिकारी बन सकेंगे।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

तृतीय दिवस—चारित्र दिवस—का

प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र दिश ।

अद्‌भुत् सयोग

वन्धुओ !

अभी पर्वाधिराज के मगल प्रसग पर 'अन्तगडदसा-सूत्र' का वाचन चल रहा है। इस महापर्व का लक्ष्य भी दु खो का अन्त करने का है और इस पर्व मे वाचन (वाचित) किया जाने वाला शास्त्र और उसके समस्त प्रसग भी सपूर्ण दु खो का अन्त करने वाले ऐसे साधको के जीवन बताने वाले है, जिन्होने उसी जन्म मे अपने सकल दु खो का अन्त कर शिव-पद प्राप्त किया। योग ऐसा बैठता है कि पर्व के इन आठ दिनो मे वाचा जाने वाला अतगडदशा सूत्र भी एकादशागी मे आठवा अगशास्त्र है। फिर खूबी यह है कि जिस प्रकार इस पर्व के दिन आठ हैं, उसी प्रकार इस शास्त्र के वर्ग भी आठ हैं और आठो वर्गो मे ऐसा एक भी साधक नही लिया गया है, जिसने उसी जीवन मे कर्म काट कर मोक्ष प्राप्त न कर लिया हो।

शास्त्र का नाम है 'अन्तकृत् दशा'। अन्तकृत् का अर्थ है—अन्त करने वाले। किसका ? भवसागर का, आठ कर्मो का। दशा का अर्थ है दशा-अवस्था। तो इस प्रकार आठ कर्मो की बेडिया काट कर मोक्ष प्राप्त करने वाले साधको की दशा का वर्णन जिस शास्त्र मे किया गया है, उसका नाम है अन्तकृत् दशा।

उपासक, अनुयायी होकर भी आप रात-दिन अपना घर नोटो से भरने मे लगे हुए हैं, अपनी आत्मा को पाप के भार से भारी बना रहे है। आत्मा पर बढ रहे इस भार को कम करने के लिये, कर्म-बन्ध को ढीला करने के लिये परिग्रह को घटाने की आवश्यकता है। फैशन घटेगी, आडम्बर-दिखावा घटेगा, तभी परिग्रह घटेगा। जब तक आप भोगोपभोग की वस्तुओ का परिमाण नही करेंगे, तब तक परिग्रह भी नही घटेगा। जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है, आप इस बात को अच्छी तरह हृदयगम कर ले कि परिग्रह के बाहरी बन्धन की अपेक्षा भीतरी बन्धन, अर्थात् परिग्रह पर ममत्व, अत्यधिक खतरनाक, घोर कर्मबन्ध और भवभ्रमण का कारण है। आप परिग्रह पर ममत्व के भीतरी बन्धन को ढीला करेंगे, तभी परिग्रह को घटा सकेंगे, अपरिग्रही बन सकेंगे, अन्यथा नही।

धन तारने वाला नही, धर्म ही तारने वाला है

आप अपने मन, मस्तिष्क और हृदय मे निश्चित धारणा बना लीजिये कि धन आपको कभी तारने वाला नही है, धर्म ही तारने वाला है। धन के लिये नीति-अनीति को भुलाना, यह जैन का लक्षण नही है। सच्चा जैन लक्ष्मी का दास नही, अपितु लक्ष्मी का पति होता है। दुनिया मे दो तरह के आदमी होते है, एक तो लक्ष्मी के दास और दूसरे लक्ष्मी के पति। यदि आप लक्ष्मी के दास न बनकर लक्ष्मी के पति बन गये तो लक्ष्मी सदा आपके चरण चूमती रहेगी।

पर्वाधिराज के इन पवित्र दिनो मे देव, गुरु, और धम के प्रति अपनी श्रद्धा, आस्था, विश्वास अथवा दर्शन को सुदृढ बनाते हुए इस सुनिश्चित धारणा के साथ कि 'धन कदापि तारने वाला नही, केवल धर्म ही तारने वाला है'—शिव-सुखप्रदायी साधना-मार्ग पर आगे बढेंगे तो इह लोक और परलोक मे सुख तथा शान्ति के अधिकारी बन सकेंगे।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

तृतीय दिवस—चारित्र दिवस—का
प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र दिश ।

अद्भुत् सयोग

वन्धुओ !

अभी पर्वाधिराज के मगल प्रसग पर 'अन्तगडदसा-सूत्र' का वाचन चल रहा है। इस महापर्व का लक्ष्य भी दु खो का अन्त करने का है और इस पर्व मे वाचन (वाचित) किया जाने वाला शास्त्र और उसके समस्त प्रसग भी सपूर्ण दु खो का अन्त करने वाले ऐसे साधको के जीवन बताने वाले है, जिन्होने उसी जन्म मे अपने सकल दु खो का अन्त कर शिव-पद प्राप्त किया। योग ऐसा बैठता है कि पर्व के इन आठ दिनो मे वाचा जाने वाला अतगडदशा सूत्र भी एकादशागी मे आठवा अगशास्त्र है। फिर खूबी यह है कि जिस प्रकार इस पर्व के दिन आठ है, उसी प्रकार इस शास्त्र के वर्ग भी आठ हैं और आठो वर्गो मे ऐसा एक भी साधक नही लिया गया है, जिसने उसी जीवन मे कर्म काट कर मोक्ष प्राप्त न कर लिया हो।

शास्त्र का नाम है 'अन्तकृत् दशा'। अन्तकृत् का अर्थ है—अन्त करने वाले। किसका ? भवसागर का, आठ कर्मो का। दशा का अर्थ है दशा-अवस्था। तो इस प्रकार आठ कर्मो की बेडिया काट कर मोक्ष प्राप्त करने वाले साधको की दशा का वर्णन जिस शास्त्र मे किया गया है, उसका नाम है अन्तकृत् दशा।

श्रमरण-धर्म के समक्ष ससार का समग्र वैभव नगण्य

अभी भगवान् नेमिनाथ के शासन के महान् साधको की वात चल रही है, किसी छोटे घर की वात नही, अतुल वैभव एव सत्ता-सपन्न विशाल कुल की, वडे घर की वात चल रही है। वहुत से लोगो का खयाल है कि भूखे-नगे घरो के लोग ही धर्म किया करते है, साधना किया करते है। वडे घर का कोई लडका अथवा लडकी दीक्षा लेने को तैयार हो तो कहते हैं—"आपा रा घर री भू डी लागेला, आपा रो घर कुणसो है, आपा रे घर मे कमी किण वात री है? सगाई री वात पक्की हो गई है, जल्दी ही थारी शादी करणी है। खूव खाओ-पीओ, दुनिया को आनन्द लूटो और मस्त रहो।"

तो वहुत से लोग समझते है कि गरीव घर के लोग ही दीक्षित होते है, धर्म करते है। वारह व्रती भी लखपति एव सम्पन्न लोग नही वनते। गरीव लोग ही शादी होने के वाद वारह व्रती श्रावक वनते है। पर अभी अन्तगड दशा-सूत्र मे वात चल रही है, वह तीन खण्ड के नाथ के घर की वात चल रही है। गजसुकुमाल कुमार श्री कृष्ण के सगे भाई, एक ही मा के जाये सहोदर भाई, श्री कृष्ण भी देवकीनन्दन और गजसुकुमाल भी देवकीनन्दन। एक ओर माता-पिता एव भाई उनके विवाह की तैयारी कर रहे है। गजसुकुमाल का विवाह करने के लिये सर्वगुण सम्पन्ना सुन्दरी कन्याए भी अन्त पुर मे रखी जा रही हैं। लडकिया भी सोच रही होगी कि कुमार गजसुकुमाल के साथ उनका विवाह होगा। कृष्णजी भी सोच रहे होगे कि अति सुन्दर, श्रेष्ठ एव कुलशील और रूप-लावण्य सम्पन्ना कन्याओ के साथ वे अपने प्राणाधिक प्रिय सहोदर गजसुकुमाल कुमार का विवाह करेगे। दूसरी ओर वसुदेव-देवकी के दुलारे, त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्ण के लाडले लघु भ्राता गजसुकुमाल विपुल वैभव, ऐश्वर्य और सासारिक भोगो को तृणवत् त्याग कर पग-पग पर कण्टकाकीर्ण दुर्गम एव कठोर आचार-मार्ग-सयम-मार्ग-साधना-मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

मोक्षमार्ग के तृतीय चरण 'चारित्र' का माहात्म्य

आज पर्वाधिराज का तीसरा दिवस है। इसे हम चारित्र-दिवस की सज्ञा देकर चारित्र-दिवस के रूप मे मनाते हैं। मोक्ष-मार्ग

की साधना मे ज्ञान और दर्शन के पश्चात् तीसरा स्थान चारित्र का आता है। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के २८ वें अध्ययन मे मोक्ष-मार्ग के साधनो के सम्बन्ध मे वताया गया है —

नाणेण जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे
चरित्तेण णिगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।।उ०२८

याद रखिये ज्ञान और विश्वास हो जाने मात्र से ही लक्ष्य की प्राप्ति नही होने वाली है। केवल यदि ज्ञान हो जायगा, विश्वास हो जायगा तब भी मात्र ज्ञान और विश्वास से ही कर्म कटने वाले नही हैं। ज्ञान से अज्ञानान्धकार दूर होगा। ज्ञान आया तो कुछ आगे वढ पाये 'नाणेण जाणई भावे'—अर्थात ज्ञान से पदार्थो के स्वरूप को समझते हैं, पदार्थो के स्वरूप, स्वभाव आदि का ज्ञान होता है। ज्ञान से वस्तुस्वरूप का बोध हो जाने के पश्चात 'दसणेण य सद्दहे।' अर्थात दर्शन से श्रद्धान करता है। दर्शन होगा तो श्रद्धा होगी। भोजनालय मे पहुँचकर वाई ने कटोरदान खोला तो आपने जाना कि यह मोतीचूर के लड्डू है, यह कलाकन्द है, पूरी है, शाक है। इस तरह भोजन के पदार्थो को जाना और साथ ही आपने यह भी जान लिया कि परोसने वाली आपकी माता है, वहिन है, पुत्री है अथवा धर्मपत्नी है और वह भोजन सामग्री आपके लिये पुष्टिकारक है। इस प्रकार यह सब जान लिया कि भोजन पौष्टिक है, भोजन परोसने वाली भी विश्वासपात्र है, किसी प्रकार का कोई धोखा नही है। अगर किसी अदावत (शत्रुभाव) वाले के यहा चले जाओ और वह लड्डू भी दे तो आपको अदेशा होगा, आशका होगी कि कही लड्डू मे विष तो नही मिला दिया है। अनजान आदमी से भी धोखा होने की आशका रहेगी पर माता, वहिन, बेटी से कोई धोखा नही होगा, यह आपके मन मे पक्का विश्वास है पर यदि आप उस भोजन-सामग्री को खावे नही तो क्या केवल जानने और विश्वास करने मात्र से आपकी भूख मिट जायगी? नही।

परसो और कल, विगत दो दिनो मे आपको वताया गया कि 'वन्धन' क्या है, 'वन्धन' का कारण परिग्रह किन-किन कारणो से वढता है। पर अब जान लेने के वाद और मान लेने के वाद यह

जानना है कि बधन कटे कैसे। बन्धनो को काटने का साधन है चारित्र। चारित्र का दूसरा नाम है क्रिया।

कर्मबन्धन काटने की क्रिया ही चारित्र

ससार के प्राणी अपने अपने सासारिक जीवन मे कदम-कदम पर प्रतिपल-प्रतिक्षण अपने बन्धनो को बढाते रहते हैं। सासारिक जीवन मे उनके द्वारा बन्धनो को काटने का कोई काम नही होता। सासरिक जीवन मे, खाने, पीने, पहनने-ओढने, भोग-विलास करने, धन-धान्यादिक के उपार्जन-सग्रहण-रक्षण करने आदि इन सभी कामो मे सासारिक प्राणी कर्मबन्ध करेगा। कही तो आप हिंसा का व्यवहार करते है, कही झूठ का। लेन-देन मे आप अपनी रकम वसूल करते समय चाहेगे कि अगले से ज्यादा वसूल करे। दिये तो ५००)रु० पर मन चाहेगा १०००)रु० वसूल करना। कुछ ब्याज, कुछ काटा, कुछ बाढा, कुछ पडब्याज, यह सब कुछ जोड कर मूल ५००)रु० के बदले १०००)रु० आप लेना चाहेगे। उसका मन नही है। उसका मन नही होते हुए भी आप लेगे तो आपको अदत्त लगेगा कि नही ? उसका मन नही है, पर वह सोचता है कि अगले साल और लेना है। अभी नही दिया तो भविष्य मे कभी नही मिलेगा, नही दिया तो लडाई झगडा होगा, मुकद्दमा होगा, यह सब सोच कर नही चाहते हुए भी उसे ५००)रु० के बदले मे १०००)रु० देना पडेगा। इस तरह ससारी प्राणी का सासारिक जीवन कदम-कदम पर बन्धन बढाने वाला है। वह बन्धन जिस क्रिया से काटा जाय, उस बन्धन को काटने वाली क्रिया का नाम चारित्र है। वह कर्म-बन्धन कटे उस कारण का नाम है चारित्र।

आत्मनद को कर्मजल से रिक्त करने की प्रक्रिया

चारित्र मे सबसे बडी बात है कि जीवन मे पाप-मार्ग से, बन्ध के कारणो से आत्मा का सम्बन्ध नही हटाया जायगा, तब तक कर्म-बन्ध का द्वार बन्द नही होगा और कर्मबन्ध का द्वार बन्द न होने की दशा मे कर्म का भार भी हल्का नही होगा। एक बाध को, एक तालाब को खाली करना है तो सबसे पहले उस बाध मे आकर गिरने वाले पानी के स्रोतो को बन्द करना होगा और तत्पश्चात् उसमे

एकत्रित हुए पहले के पानी को सिंचाई आदि के माध्यम से निकालना पडेगा। यदि उस बाध मे निरन्तर गिरने वाले स्रोतो को वन्द नही किया गया और वाध को खाली करने का प्रयास किया जाय तो उस मे सफलता नही मिल सकेगी। जिस प्रकार एक वन्ध मे गिरने वाले नालो को, स्रोतो को बन्द न करने की दशा मे उस वन्ध के पानी के निकास के मोखो को खोल दिये जाने पर भी उस वन्ध को पानी से रिक्त नही किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार आत्मनद मे अविरल गति से निरन्तर गिरते हुए कर्मो के नालो को—आस्रवद्वारो को अवरुद्ध नही करेगे तव तक आत्मनद मे एकत्रित हुए पुराने कर्मजल को निकाला नही जा सकेगा। इसीलिये मोक्ष-मार्ग के चार साधनो मे तप से पहले चारित्र को रखा गया है। जैन धर्म का तरीका कितना सुन्दर है? अतिशय ज्ञानियो का अनुभव कितना अवितथ-अविशवादी और शतप्रतिशत यथार्थवादी है कि आत्मनद को कर्मजल से रिक्त करने के लिये तप से पहले चारित्र को रखा है।

आस्रव-निरोध

वहुत वडा नाला पानी आने का रोका नही और छोटे मोखे से पानी निकाला जाय तो क्या किसी तालाव अथवा टकी का पानी खाली किया जा सकेगा? नही। किसी टकी मे कई दिनो का पानी एकत्रित हो गया है, उसमे कचरा इकट्ठा हो गया है। उस कचरे को साफ करने के लिए उस टकी को खाली करना आवश्यक है। पर जव तक बडे नाले से उस टकी मे पानी आ रहा है तव तक छोटे नल को खोलकर उस टकी के कचरे को साफ किया जा सकेगा? नही। उस टकी को साफ करने के लिये उसमे आने वाले पानी को रोकना होगा। एक तलाई का पानी खराव हो गया, उसमे काई फैल गई है, तो वह साफ कव होगी? अगला पुराना पानी निकलेगा तब। यह एक दृष्टात की वात है।

तपश्चरण

आपके आत्मनद मे, आत्मा रूपी तालाव मे कर्म का पानी भरा है, इसमे अशुभ कर्मो का कचरा भरा हुआ है और आपको ज्ञान, दर्शन की प्राप्ति से विचार आया कि अशुभ कर्मो के कचरे को नष्ट

कर आत्मा को साफ करू । इसके लिये आपने कोशिश भी की, उपवास किये, वेला किया, अठाई की। तपश्चर्या कर्म-जल को जलाने के लिये आग का काम करती है। जिस प्रकार आग कडाही मे डाले हुए दूध के पानी को सोखती है, उसी तरह तपश्चर्या का काम है कर्मो को तपाना, जला कर खत्म करना। तो तपश्चरण कर आप काम तो वही कर रहे हैं कर्मो को जलाने का कर्मो को खपाने का। उपवास तो किया पर केवल एक घटा धर्मस्थान मे बैठे और रात भर का तथा दिन भर का आपका समय खुला रहा आस्रव मे, तो उपवास कर क्या किया ? केवल आहार छोडा, अनाहार कर लिया। इस तरह रात भर और दिन भर खुले रह कर आपने दो चीजे छोडी। खाना छोडा और पीना छोडा। हिंसा नही छोडी। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेप, कलह, लडाई, झगडा खुला रखा। वाईजी तेला करके बैठी है पर पडौसिन ने पानी छानते वक्त पानी गिरा दिया और पानी का रेला वाई के द्वार के सामने आ गया तो दगल करने लगी और न कहने योग्य बाते सुनाने और गालिया देने लगी। तेला किये हुए है और लडाई कर रही है। पडोसिन यदि कहे कि आगे से ध्यान रखेगे, तेले से आपके कठ सूख रहे है, ज्यादा बोलो मत। तो कहेगी—"वोले काई, थारो तो माजनो एडो ही है।" अव आप ही वताइये, इस प्रकार के तेले की तपस्या से कितने कर्म काटे ? खाना और पीना—ये दो चीजे छोडी। तडक-भडक वाली पोशाकें और गहना पहनना वन्द हुआ क्या?

प्रोत्साहन तपश्चर्या का विकार वन गया

सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनने का यह रिवाज जो है, उसके पीछे कारण था। नये वालक-वालिकाओ को अच्छा पहनाओ तो उनका मन वढता है, तपस्या के प्रति उनके मन मे रुचि जागृत होती है, उत्साह वढता है। गुजरात प्रदेश मे देखा कि धार्मिक पाठ-शालाओ के वच्चे-वच्चियो के तिमाही, छ माही तथा वार्पिक इम्तिहान लेते हैं और अच्छे नम्वरो से उत्तीर्ण होने पर उनका धार्मिक शिक्षा के प्रति उत्साह वढाने के उद्देश्य से वच्चियो एव वच्चो को पारितोपिक देते है। आप यहा वच्चो को पूछते ही नही। धार्मिक अध्ययन अच्छा किया—अधिक किया तो ठीक, कम किया

तो ठीक, इस ओर आपका कोई ध्यान नही तो छात्र-छात्राओ का उत्साह नही बढेगा। प्रेम प्रदर्शित करने से, उत्साह बढाने से ज्ञानाभ्यास करने वालो और साधना की ओर उन्मुख होने वालो को बल मिलता है।

पुराने लोगो ने प्रारम्भिक रूप से तपस्या की ओर अग्रसर होने वाले बच्चे-बच्चियो का उत्साह बढाने के लिये पहनावे वगैरह का सिलसिला चलाया, वह तप के साथ विकार के रूप मे नही चलाया था। नये बच्चे-बच्ची उमग के साथ तपस्या कर लें, उनकी अभि-रुचि तपस्या की ओर बढे, इस उद्देश्य से पहले यह सिलसिला चलाया था। आज तो ५० वर्ष की अवस्था वाली बाई है और कोई बडी तपस्या करती है, तो वह भी सोचेगी—"मेरे आज आठ उपवास हैं, अठाई की तपस्या है, तो और दिनो की अपेक्षा आज विशिष्ट रूप का पहनावा पहनना चाहिये, दुगुना गहना पहनना चाहिये।" नया बढिया बेस निकाला, गोखरु, दस्तबद, भुजबद, हथफूल, कर्णफूल, जडाऊ भारी हार और अन्यान्य प्रकार के अलकार धारण कर पच्चक्खाण के लिये आडम्बर के साथ व्याख्यान मे जावे, तो यह तपस्या मे एक प्रकार का विकार है।

तप से पूर्व चारित्र

कर्मो को जलाने के लिये, पाप के भार को हल्का करने के लिये तपश्चर्या की, पर आरम्भ-परिग्रह नही छोडा, बहुमूल्य सुन्दर वेश, स्वर्णाभूषण पहनना नही छोडा। अठारह पापो मे से कितने पाप छोडे? यदि आरम्भ-परिग्रह और अठारह पापो को नही छोडा तो कर्म का मैल कैसे जलेगा? इसीलिये भगवान् ने तप से पहले चारित्र को महत्व दिया। कर्म-मल को खपाने के लिये, पाप के भार को हल्का करने के लिये तपस्या से पहले चारित्र आवश्यक है। पहले चारित्र है, तपस्या पीछे है। चारित्र का मतलब है आस्रवो को, आत्मनद मे निरन्तर आकर गिरने वाले कर्म-मल के मार्ग को—कर्म जल के मार्ग को बन्द करने, अवरुद्ध करने, रोकने की क्रिया करना, जिससे नये कर्मों का बन्ध होना रुके। पहले चारित्र के द्वारा आस्रव-द्वारो अर्थात् कर्म प्रवाह आने के मार्गो को अवरुद्ध करेंगे, नये कर्म-

जल का आना रोकेगे तभी तपस्या की अग्नि द्वारा, आत्मनद मे एकत्रित उस पुराने कर्मजल को, कर्म के कचरे को जला सकेंगे।

कर्म काटने की प्रक्रिया अवरुद्ध न हो

पर्वाधिराज का आज का यह तीसरा दिन चारित्र का दिन है। कुछ ने व्रत-ग्रहण का दिन रख आज के दिन विरति ग्रहण की है। दया, सामायिक आदि व्रत ग्रहण किये है—यह पाप को रोकने की, कर्ममल को साफ करने की क्रिया है। पर याद रहे कि यह एक दिन का दयाव्रत, सामायिक का आराधन आज के दिन तक ही सीमित न रह जाय। इसका अभ्यास जीवन मे नियमित रूप से चलते रहना चाहिये। जीवन पर्यन्त यह क्रम रहे और उत्तरोत्तर वढता ही रहे, जिससे कि महान् पुण्य के प्रभाव से प्राप्त इस दुर्लभ मानव-जीवन मे पाप का भार अधिकाधिक कम किया जा सके, कर्म रूपी जल को जलाया जा सके। कवि ने अपने मनोभावो को निम्नलिखित शब्दो मे अभिव्यक्त किया है —

सयम विन जीवन की महिमा नाही,
शुद्ध भाव से करो नियम चित्त लाई।
विन कपाट के घर मे कोई नही रहते।
मणि कचन धन रक्षण का भय करते।
विना नियम जीवन धन टिक नही पावे।
विना पाल सर जल जिम वह कर जावे।
निज वल रक्षण को व्रत धारो भाई,
शुद्ध भाव से करो नियम चित्त लाई ।।सयम।।

चारित्र धर्म के भेद

चारित्र दो प्रकार का है। स्थानाग सूत्र मे चारित्र-धर्म के दो भेद वताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं —

"चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—*आगार-चरित्तधम्मे* चेव अणगारचरित्तधम्मे चेव।"

तत्वार्थाधिगम सूत्र मे--"ज्ञान दर्शन चारित्राणि मोक्षमार्ग।" इस सूत्र के माध्यम से ज्ञान, दर्शन और चारित्र को मोक्ष का माग

बताया गया है। मोक्ष मार्ग का जो तीसरा साधन चारित्र है, उसके दो भेद हैं--आगार चारित्र धर्म और अणगार चारित्र धर्म।

आगार के दो अर्थ हैं। एक तो आगार कहते है घर को। इस दृष्टि से आगार चारित्र धर्म का मतलब हुआ आगार अर्थात् घर मे रहने वाले गृहस्थ का चारित्रधर्म। अणगार का अर्थ है-- जिसका कोई घर नही अर्थात् जो गार्हस्थ्य जीवन मे नही रहता।

आगार-चारित्र-धर्म

आगार का दूसरा अर्थ है--प्रावधान अथवा छूट। जो अपने व्रतो को छूट के साथ ग्रहण करे, कुछ प्रावधान रखते हुए ग्रहण करे, उसका नाम आगार धर्म है। छूट यह कि किसी जीव की हिंसा नही करेगा, पर यदि कोई हमला करने आ गया, तो उसका मुकाबला करेगा। गृहस्थ ने आगार सहित व्रत ग्रहण किया--"महाराज मैं कभी किसी प्रकार का झूठ नही बोलू गा, पर यह आगार रहेगा, यह प्रावधान रहेगा, यह छूट रहेगी कि यदि कभी मेरी चल अथवा अचल सम्पत्ति की हानि होने लगे तो अपनी सम्पत्ति की--पैसा, रुपया, जमीन आदि की रक्षा के लिये, झूठ बोल सकू गा।" इसी प्रकार श्रावक सागार चारित्र-धर्म अगीकार करते समय श्रावक के अन्यान्य व्रतो मे आगार-प्रावधान अथवा परिमाण रखता है।

अणगार चारित्र धर्म--जिसमे कोई आगार नहीं

अणगार चारित्र धर्म को ग्रहण करने वाले साधु के लिये बिना किसी प्रकार के आगार के पूर्णरूपेण पच महाव्रतो का पालन करना अनिवार्य होता है। साधु के लिये इस प्रकार का कोई आगार नही है--"साधु के लिये कल्पनीय आहार न मिलने की दशा मे फल-फूल खा लू गा। जीवन भर पैदल चलू गा किन्तु रास्ता लम्बा होगा अथवा अत्यावश्यक काम होगा तो गाडी मे, मोटर मे बैठ जाऊगा आदि।" पच महाव्रतो मे किसी भी दशा मे किसी भी प्रकार के आगार की किसी प्रकार की छूट की कोई किञ्चित् मात्र भी गु जायश नही है, आज के जमाने मे जिस प्रकार की तर्क दी जाती है, उस प्रकार की तर्क के लिये श्रमणाचार मे कोई स्थान नही, क्योंकि इस का नाम ही अणगार चरित्र-धर्म अर्थात्--विना किसी प्रकार के आगार का चारित्र-धर्म है।

श्रमणधर्म मे शैथिल्य लाने वालो के कुतर्क

आज के जमाने की तर्क है—"मै नही बैठू तो कोई बस बन्द थोडे ही होगी, बस तो चालू ही रहेगी।" आज कई भक्तो की ओर से दलील दी जाती है, कहा जाता है—"बस तो चालू है ही। महाराज के बैठने न बैठने से कोई फरक नही पडने वाला है। महाराज के न बैठने से वह बन्द नही होने वाली है, वह तो चलेगी ही, इसलिये महाराज मोटर मे, बस मे बैठ जाय तो इससे उन्हें कोई दोप नही लगने वाला है। दो तीन वर्ष पूर्व आगरा-सघ के आग्रह पर हम आगरा गये। आगरा मे जगल दूर जाना पडता था, तो यह देखकर कुछ नौजवान हसने लगे और बोले—"महाराज! आज के जमाने मे बाबा आदम के जमाने की बात कर रहे है। यदि फ्लश-लेट्रिन मे शौचनिवृत्ति कर लें तो क्या हर्ज है, क्या दोप है? दो माइल आवेगे-जावेगे, तो कितना समय व्यथ जायगा, ज्ञान-ध्यान मे कितनी बाधा पडेगी? शौचनिवृत्यर्थ जगल जाने-आने मे लगने वाले समय को स्वाध्याय मे लगायें, दो घ टा अधिक स्वाध्याय करे, तो कितना लाभ होगा? बिजली का प्रकाश तो हमारे यहा होता ही है, आप पढें अथवा न पढे, हमारे यहा तो बिजली जलेगी ही, फिर आप उसका फायदा क्यो नही उठाते? जो विज्ञान जिस जमाने मे है, उस विज्ञान का फायदा नही उठाया तो यह कौनसी बुद्धिमानी होगी? विज्ञान ने आज के युग मे जो सहूलियतें उपलब्ध करवाई है, इस बहती गगा मे साधु भी हाथ क्यो नही धो लेते? यह विज्ञान द्वारा उत्पन्न की गई सहूलियतो की गगा तो बहती ही रहेगी। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना है, वह स्थान दूर है। उदाहरण के तौर पर महाराज को बालोतरा से बाडमेर जाना है। पैदल जाने मे कितना समय लगेगा?, बस मे बैठ जावे तो? स्वाध्यायी भाई रेल मे, बस मे बैठे और गन्तव्य अपने-अपने दूरस्थ स्थानो पर पहुच गये। इसी तरह महाराज! आप भी यदि बस मे बैठ जाय तो क्या हर्ज है? वर्षा बरस रही हो, उस समय बरसात मे भी आपको टट्टी तो जाना ही पडता है। इतना पाप लगता है तो यह बस आदि मे बैठना भी क्यो नही कर लेते?

आगार चारित्र धर्म की सहज-साध्यता

ऐसे सलाहकार भी मिले। तो मतलब कहने का यह है कि जब

तक ज्ञान नही होगा, तब तक आप आगार और अणगार चारित्र-धर्म मे क्या भेद है, क्या फरक है यह नही समझ सकेंगे। आप भी यदि आगार-चारित्र-धर्म और अणगार चारित्र-धर्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर ले तो आपके लिये आगार-चारित्र-धर्म अगीकार करना कोई कठिन कार्य नही होगा। यदि आप चाहें तो बडी आसानी से आगार-चारित्र धर्म ग्रहण कर सकते है। मैं आप सब को सम्बोधित कर रहा हूँ।

एक श्रावक थे, मेरी जानकारी मे मद्रास के भाई ताराचन्दजी गेलडा। उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली—"मुझे मद्रास के बाहर कही यात्रा मे नही जाना है, कोई आत्मीयजन, सन्निकट परिवार का कोई सदस्य बाल बच्चा बीमार हो, केवल उस प्रकार की विशिष्ट स्थिति मे ही मद्रास से बाहर जाने का आगार है।"

जो गृहस्थ जीवन मे बैठे हैं, वे इस प्रकार श्रावक के प्रत्येक व्रत मे अत्यावश्यक आगार रख सकते है। अब आप ही सोचिये आगार चारित्र धर्म कितना आसान, कितना सरल है? इस पर भी आपको आगार-चारित्रधर्म अगीकार करने के लिये हम लोग प्रेरणा करते है तो तत्काल आपकी गर्दन हिलती है, मन कापता है और कहते है "बावजी! काई करो हो, रोजीना बारह व्रत-बारह व्रत रो नारो लगाओ हो। घणो कठिन है, मारा सू कोनी सधे, कोनी निभे।" घीगडमल जी जैसे श्रावक से बारह व्रत ग्रहण करने की बात की, तो वे भी कहते हैं "बावजी! बारह व्रत कीकर धारण करा, निभणा मुश्किल है।"

सहज ही मिल रहे लाभ से वचित न रहो

यो तो साल, दो साल, चार साल से कोई काम-धधा नही करते हुए भी कई बूढे लोग बैठे होगे। पर उन्होने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण नही किये हैं, हिंसा का, धधे का त्याग नही किया है, तो क्या उनको आगार चारित्र धर्म का कोई लाभ मिलेगा? नही। जो दो चार साल से धधा नही कर रहे हैं, यो ही बैठे हैं, वे यदि आगार सहित धधा न करने का, हिंसा, झूठ, अदत्तादान, अब्रह्म और परिग्रह आदि का आवश्यक परिमाण के साथ त्याग कर देते, सागारी व्रत ग्रहण

कर लेते तो उनको कितना लाभ होता ? वधा तो यो भी नही किया, हिंसा, झूठ, अदत्तादान आदि का उनके समक्ष प्रसग नही आया, तो व्रत ग्रहण से वचित रह कर सहज ही होने वाले इस महान् लाभ को व्यर्थ ही क्यो खोया ? कारखाना आपने नही खोला पर कारखाना खोलने का त्याग नही किया तो मन का फिसलना सभव है। अवस्था ढल गई है, सफेदी आ गई है, फिर भी १२ व्रत ग्रहण नही करते, यह कितने वडे दुख और आश्चर्य की वात है ? ५ अणुव्रत अगीकार करना तो वडा ही आसान कार्य है। वडी हिंसा, वडा झूठ, वडी चोरी का त्याग करना, एक करण दो योग से कुशील का सेवन नही करना—अपनी पत्नी की मर्यादा रखना और परिमित परिग्रह रखना, इनमे से आपके लिये कौनसी वात कठिन है, जो आप व्रत ग्रहण करने मे इतने कतराते हो ?

कर्मभार हल्का करने का उपाय

भगवान् महावीर ने कहा है कि मोक्ष-मार्ग की साधना मे ज्ञान और दर्शन की आराधना के पश्चात् यदि सचित कर्मो का क्षय करने के लिये कोई तरीका अपनाना है, कोई कार्य करना है, प्रयास करना है तो सर्वप्रथम नये कर्मो के आने को रोको। नये कर्मो को रोकने का तरीका यह है कि आरम्भ-समारम्भ, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, काम, क्रोध, मोह, मान, माया, लोभ, मद, मात्सर्य को यथासभव अधिकाधिक कम करने का प्रयास करो। जिस प्रकार चारित्र धर्म के आगार-चरित्रधर्म और अणगार-चारित्रधर्म—ये दो भेद हैं, उसी प्रकार अगार चारित्रधर्म के भी दो भाग हैं। उनमे से पहला है जीवन भर का और दूसरा है अभ्यास के लिये एक मुद्दत का, एक अवधि तक का।

यदि कोई गृहस्थ साधक सम्पूर्ण व्यापार का त्याग न कर सके तो यह नियम कर सकता है कि नये व्यापार मे जो रकम आयेगी, उस रकम को वह घर खर्च मे, स्वय के अथवा अपने कुटुम्ब के उपयोग में न लाकर शुभ कार्यो मे लगायेगा। जिस प्रकार अपने कारोवार अथवा परिग्रह को मर्यादित करने वाला श्रावक अपने परिग्रह का परिमाण करते हुए प्रतिज्ञा करता है कि वह अमुक

सीमा, अमुक परिमाण से अधिक कारोबार नही करेगा, अमुक मात्रा से अधिक रकम नही रखेगा। उस सीमा से अधिक आय हुई तो, उसे वह शुभ कार्यो मे लगा देगा। उसी प्रकार नये व्यापार आदि के सम्बन्ध मे भी श्रावक के १२ व्रत ग्रहण करते समय प्रत्येक गृहस्थ व्यापार, धन आदि का परिमाण रखकर नियम अगीकार कर सकता है।

पर आप बुजुर्ग लोग भी मन को नही मारते, उस स्थिति मे यदि हम नौजवानो से कहें कि अपनी आय का एक नियत भाग धर्म कार्यो के लिये निकालो, कमाने के समय मे कमाओ, व्यर्थ ही सब दिन 'हाय-हाय' मत करो, व्यापार एव सम्पत्ति की मर्यादा करो, धर्म करो तो क्या नौजवान मानेंगे ? नही। वे कहेंगे—"महाराज ! हमारे दादाजी और पिताजी को भी परिमाण नही है तो, हम तो करें ही क्या ?"

भगवान् ने कहा है—"किरियाए वधो" आत्मा मे कम का सग्रह हुआ है, चय हुआ है, कर्जा वढा है। कर्जा कैसे वढता है ? कर्जा मोह से वढ जाता है। पुराने जमाने मे 'ओसर-मोसर' करते तो सोचते कि अच्छे ढग से करना है। पूर्वजो का, घर का परम्परा से नाम चला आ रहा है, अत घर के नाम के अनुरूप 'कारज-किरियावर' करना है। पास मे पैसा नही है तो वोहराजी से कर्ज ले लिया। यह है नाम का, घर के पोजीशन का मोह। कोई भी व्यक्ति हो, अपनी शक्ति के उपरान्त खर्च करेगा तो उसे कर्ज लेना पडेगा। जैसे कर्जा दो तरह से हुआ—बेसमझी से और मोह से, उसी तरह अज्ञान और मोह से कर्म का कर्जा वढता है।

लम्बी यात्रा, विकट घाटिया और अतुल कर्मभार

उस कर्म के कर्ज को अब कम करना है। क्योकि कर्म का कर्जा पाप का भार जितना अधिक होगा, आत्मा उतनी ही अधिक दु खी होगी। भारी सिर वाला सुखी रहेगा कि हल्के सिर वाला ? जिसके सिर पर कोई भार नही है, वह, हल्के सिर वाला ही सुखी होगा। आपको यहाँ की नदी की धारा के अन्दर होकर जसोल जाना हो और दो मन की गाँठ आपके सिर पर रख दी जाय तो कितना घोर

दु ख होगा ? दो मन की गाठ लिये नदी की धारा को पार कर सकेंगे ? नही । आषाडा ग्राम से वालोतरा आये तो नाकोडाजी की घाटी से आना पडता है । उस घाटी पर से होकर यदि कोई व्यक्ति आये और उसके सिर पर एक मण (मन) का वोझा हो तो ? उस घाटी को पार करते-करते छाती फट जायगी । घाटी पार करनी है तो वोझा हटा कर माथा हल्का करना होगा । वह तो एक ही घाटी है और विल्कुल छोटी घाटी है । पर इस ससार की तो आकाश-पाताल के अन्तराल से भी ऊची-ऊची और एक-एक से वढकर अति विकट चौरासी लाख घाटिया हैं। ससार की उन उत्तु ग विकट घाटियो को पार करना चाहते हो और सिर पर रख रहे हो पाप की पोट, पर्वताधिराज से भी असख्य गुना अथवा अनन्त गुना अधिक भार वाला पाप का गट्ठर । कैसे पार की जा सकेगी ससार की घाटी? एक कवि ने कहा है—

नादान भुगत करणी अपनी,
ओ पापी ! पाप मे चैन कहा ।
जव पाप की गठरी शीष धरी,
फिर शीप पकड क्यो रोवत है ?
उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अव रैन कहा जो सोवत है ।
जो जागत है सो पावत है,
जो सोवत है सो खोवत है ।

हाँ तो भगवान् ने कहा कि अन्तिम यात्रा मे वही व्यक्ति दु खी होता है, जो यात्रा तो लम्वी करने को तैयार हुआ है पर अपने सिर का भार हल्का नही करता । यात्रा और सिर पर भार—ये दोनो परस्पर एक दूसरे के सहायक है कि अवरोधक ? आपको भी यात्रा तो सुनिश्चित रूप से करनी ही है । अव आप ही अपने अन्तर्मन से सोच लीजिये कि आपको अपने सिर का भार वढाना है अथवा हल्का करना ।

गौतम का प्रश्न

भगवान् महावीर से एक वार गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—

"भगवन् ! यह जीव जो नीचे जाता है, इसका क्या कारण है ? जीव का स्वभाव तो ऊपर जाने का है, फिर नीचे क्यो जाता है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—"भारी होने के कारण जीव नीचे की ओर जाता है।"

गौतम स्वामी ने पुन भगवान् से प्रश्न किया—"प्रभो ! कृपा कर यह बताइये कि स्वभावत ऊपर की ओर उठने वाला जीव भारी क्यो हो जाता है और भारी हो जाने के पश्चात् पुन हल्का कैसे हो जाता है ?"

"पाणाइवाएण, मुसावाएण जाव मिच्छादसण सल्लेण एव खलु जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छति।"

अर्थात्—हे गौतम ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्या-दर्शन शल्य से जीव तत्काल भारी हो जाते है।

राजकुमारी जयन्ती के प्रश्न

इस सम्बन्ध मे भगवती सूत्र का ही एक और प्रसग है। एक राजघराने की राजकुमारी जयन्ती ने जो आज की बहनो की तरह गहनो से लदी नही थी, सद्ज्ञान के भूषणो से सुशोभित, अलकृत रहती थी—भगवान् से प्रश्न किया। जहा एक साधारण आदमी के सामने भी आपको प्रश्न करने की हिम्मत नही होती, वहा राजकुमारी जयन्ती ने सुरासुरेन्द्र, मानवेन्द्रो के वन्द्य त्रिलोकीनाथ प्रभु महावीर से प्रश्न किया—"भगवन् ! जीव भारी कैसे होता है?"

यहा आप सब भाई बहन हल्के होने आये है। सगे-सम्बन्धियो के यहा सगाई-विवाह मे जाते है तो भारी होने जाते है या हल्के होने ? भारी होने। खर्चे से भी भारी हो कर आते हैं, समय भी देना पडता है। सगे-सम्बन्धियो के यहा शादी-विवाह मे जाते है, यह भारी होना है और सत्सग मे हल्के होने के लिए जाते है। पर ऐसा प्रतीत होता है—आपको यहा सत्सग मे आना भारी लग रहा है। यदि हल्का होना लगता तो इतने विलम्ब से नही आते। खैर

हा तो मैं कह रहा था, जयन्ती ने भगवान् से पूछा—"प्रभो! आत्मा भारी क्यो होता है ?"

दुःख होगा ? दो मन की गाठ लिये नदी की धारा को पार कर सकोगे ? नही । आगोलाई गाम से बालोतरा आये तो नाकोडाजी की घाटी में आना पड़ता है । उस घाटी पर से होकर यदि कोई व्यक्ति आये और उसके सिर पर एक मण (मन) का बोझा हो तो ? उस घाटी को पार करते-करते छाती फट जायगी । घाटी पार करनी है तो बोझा हटा कर माथा हलका करना होगा । वह तो एक ही घाटी है और बिल्कुल छोटी घाटी है । पर इस ससार की तो आकाश-पाताल के अन्तराल से भी ऊची-ऊची और एक-एक से बढ़कर अति विकट चौरासी लाख घाटिया हैं । ससार की उन उत्तु ग विकट घाटिया को पार करना चाहते हो और सिर पर रख रहे हो पाप की पोट, पर्वताधिराज से भी असख्य गुना अथवा अनन्त गुना अधिक भार वाला पाप का गट्ठर । कैसे पार की जा सकेगी ससार की घाटी? एक कवि ने कहा है—

> नादान भुगत करणी अपनी,
> ओ पापी ! पाप मे चैन कहा ।
> जब पाप की गठरी शीष धरी,
> फिर शीष पकड क्यो रोवत है ?
> उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
> अब रैन कहा जो सोवत है ।
> जो जागत है सो पावत है,
> जो सोवत है सो खोवत है ।

हाँ तो भगवान् ने कहा कि अन्तिम यात्रा मे वही व्यक्ति दु खी होता है, जो यात्रा तो लम्बी करने को तैयार हुआ है पर अपने सिर का भार हल्का नही करता । यात्रा और सिर पर भार—ये दोनो परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं कि अवरोधक ? आपको भी यात्रा तो सुनिश्चित रूप से करनी ही है । अब आप ही अपने अन्तर्मन से सोच लीजिये कि आपको अपने सिर का भार बढाना है अथवा हल्का करना ।

गौतम का प्रश्न

भगवान् महावीर से एक वार गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—

"भगवन्! यह जीव जो नीचे जाता है, इसका क्या कारण है ? जीव का स्वभाव तो ऊपर जाने का है, फिर नीचे क्यो जाता है ?

भगवान् ने उत्तर दिया—"भारी होने के कारण जीव नीचे की ओर जाता है।"

गौतम स्वामी ने पुन भगवान् से प्रश्न किया—"प्रभो! कृपा कर यह बताइये कि स्वभावत ऊपर की ओर उठने वाला जीव भारी क्यो हो जाता है और भारी हो जाने के पश्चात् पुन हल्का कैसे हो जाता है ?"

"पाणाइवाएण, मुसावाएण जाव मिच्छादसण सल्लेण एव खलु जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छति।"

अर्थात्—हे गौतम! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्या-दर्शन शल्य से जीव तत्काल भारी हो जाते हैं।

राजकुमारी जयन्ती के प्रश्न

इस सम्बन्ध मे भगवती सूत्र का ही एक और प्रसग है। एक राजघराने की राजकुमारी जयन्ती ने जो आज की बहनो की तरह गहनो से लदी नही थी, सद्ज्ञान के भूषणो से सुशोभित, अलकृत रहती थी—भगवान् से प्रश्न किया। जहा एक साधारण आदमी के सामने भी आपको प्रश्न करने की हिम्मत नही होती, वहा राजकुमारी जयन्ती ने सुरासुरेन्द्र, मानवेन्द्रो के वन्द्य त्रिलोकीनाथ प्रभु महावीर से प्रश्न किया—"भगवन्! जीव भारी कैसे होता है?"

यहा आप सब भाई बहन हल्के होने आये है। सगे-सम्बन्धियो के यहा सगाई-विवाह मे जाते हैं तो भारी होने जाते है या हल्के होने ? भारी होने। खर्चे से भी भारी हो कर आते है, समय भी देना पडता है। सगे-सम्बन्धियो के यहा शादी-विवाह मे जाते है, यह भारी होना है और सत्सग मे हल्के होने के लिए जाते हैं। पर ऐसा प्रतीत होता है—आपको यहा सत्सग मे आना भारी लग रहा है। यदि हल्का होना लगता तो इतने विलम्ब से नही आते। खैर

हा तो मै कह रहा था, जयन्ती ने भगवान् से पूछा—"प्रभो! आत्मा भारी क्यो होता है ?"

भारी होने की बात समझ में नहीं आवे तब तक आत्मा को हल्का करने की तरकीब नही आती और आत्मा के हल्का हुए बिना लम्बी यात्रा बड़ी ही दुःखपूर्ण रहती है, प्राणी को प्रति पल पछताना पड़ता है तब वह लम्बी यात्रा संसार की ८४ लाख विकट घाटियो के दुर्गम मार्ग की गहरी खाइयो के गहरे तल भाग मे गिरते रहने के कारण पूरी नही हो पाती।

आप तो यह लम्बी यात्रा शीघ्र ही पूरी करना चाहते है। यात्रा को सुखपूर्वक पूरी करने के लिए आनन्द और कामदेव आदि श्रावको ने १४ वर्ष तक श्रावक के १२ व्रतो का भली भाँति पालन किया। पन्द्रहवे वर्ष मे घर-द्वार छोड पडिमाधारी बन वे पौषध शाला मे जा बैठे। आप लोग यहा इतने पुराने-पुराने श्रावक बैठे है, उनमे मे कितनो ने लम्बी यात्रा को सुखपूर्वक पूरी करने के लिए १२ व्रत धारण किये हैं ? कितनो ने घर छोड पडिमा अगीकार की है ? कितने, बिना उस यात्रा की चिन्ता किये जहा के तहा घर मे यो ही बैठे है ? यह स्वय आप लोगो के लिए अन्तर्मन से चिन्तन की, आत्मनिरीक्षण की बात है। बादर जी भाई ! बोलो ! घर मे ही बैठे रहोगे या सुखपूर्वक यात्रा पूरी करने के लिए सिर के भार को कुछ हल्का करने का भी थोडा प्रयास करना है ? एक कवि ने भी सचेत करते हुए कहा है—

नादान भुगत करणी अपनी, ओ पापी ! पाप मे चैन कहा।
जब पाप की गठरी शीप धरी, फिर शीप पकड क्यो रोवत है?

समय रहते जो अपने सिर के भार को हल्का करेगा वही लम्बी यात्रा को सुखपूर्वक सम्पन्न करने मे सफल हो सकेगा।

राजकुमारी जयन्ती के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर ने फरमाया—"अठारह प्रकार के पापो के सेवन से आत्मा भारी होता है।"

जयन्ती ने दूसरा प्रश्न पूछा—"भगवन् ! आत्मा हल्का कैसे होता है।

भगवान् ने फरमाया—"प्राणातिपात, मृषावाद, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरत हो कर आत्मा हल्का होता है।"

सागार चारित्र-धर्म से होने वाले महान् लाभ

आप कहेगे "महाराज! हम लोग अठारह पापो को पूरी तरह से नही छोड सकते।" तो इसके लिए भी भगवान् ने कहा—"सर्व सावद्य-त्याग रूप अनगार चारित्र-धर्म स्वीकार करने मे असमर्थ गृहस्थ साधको के लिए कर्मभार हल्का करने वाला सागर चारित्र-धर्म है।"

वस्तुत देखा जाय तो सागार चारित्र धर्म अगीकार करना सरल होने के साथ-साथ महान् लाभकारी है। यथाशक्ति सागार चारित्र धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् आस्रवद्वारो से महावेग के साथ आत्मनद मे गिरते रहने वाले कर्मो के बडे-बडे नालो का प्रवाह क्षीण एव मन्द हो कर उस अनुपात मे अवरुद्ध हो जाता है, जिस परिमाण मे कि गृहस्थ साधक ने १८ दोषो (पापो) का परित्याग किया है। आगार चारित्रधर्म के स्वीकार करने से दूसरा बहुत बडा लाभ यह है कि प्रतिकूल से प्रतिकूलतम परिस्थितियो मे भी साधक अपने व्रतो के प्रति सजग रहता है और जिस पथ पर वह आरूढ हुआ है, उस पथ से फिसलने का, स्खलना का साधारणत भय नही रहता।

यो तो जैन कुल मे जन्म लेने वाले लडको को कभी किसी चलते-फिरते जीव को मारने का काम नही पडता। जैन कुल मे उत्पन्न हुआ बालक मक्खी को भी नही मारता। यदि कोई नादान लडका मक्खी अथवा किसी छोटे से छोटे जीव को भी मारे, तो वह अज्ञानी कहा जायगा। यो बालोतरा के रहने वाले भाइयो को सोसायटी मिलेगी तो महाजनो की ही सोसायटी मिलेगी। मद्यपान करने वालो, हिंसा करने वालो एव शिकार खेलने वालो के बीच बैठने का उनको मौका नही मिलता। पर बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद आदि बडे-बडे शहरो मे जाने वाले अथवा वहा रहने वाले यहा के नवयुवको का छत्तीस ही कौम वाले लोगो के साथ, युवको के साथ रहने का काम पडेगा और अक्सर पडता ही रहता है। यहा वालो को सिनेमा मे जाने का ज्यादा काम नही पडता पर जब वे बम्बई जैसे नगरो मे जाते हैं, तो उन्हे अनेक बार सिनेमा

भारी होने की वात समझ मे नही आवे तव तक आत्मा को हल्का करने की तरकीव नही आती और आत्मा के हल्का हुए विना लम्वी यात्रा वडी ही दु खपूर्ण रहती है, प्राणी को प्रति पल पछताना पडता है एव वह लम्वी यात्रा ससार की ८४ लाख विकट घाटियो के दुर्गम मार्ग की गहरी खाइयो के गहरे तल भाग मे गिरते रहने के कारण पूरी नही हो पाती ।

आप तो यह लम्वी यात्रा शीघ्र ही पूरी करना चाहते है। यात्रा को सुखपूर्वक पूरी करने के लिए आनन्द और कामदेव आदि श्रावको ने १४ वर्ष तक श्रावक के १२ व्रतो का भली भाँति पालन किया। पन्द्रहवे वर्ष मे घर-द्वार छोड पडिमाधारी वन वे पौपध शाला मे जा बैठे। आप लोग यहा इतने पुराने-पुराने श्रावक बैठे है, उनमे से कितनो ने लम्वी यात्रा को सुखपूर्वक पूरी करने के लिए १२ व्रत धारण किये है ? कितनो ने घर छोड पडिमा अगीकार की है ? कितने, विना उस यात्रा की चिन्ता किये जहा के तहा घर मे यो ही वैठे हैं ? यह स्वय आप लोगो के लिए अन्तर्मन से चिन्तन की, आत्मनिरीक्षण की वात है। वादर जी भाई ! वोलो ! घर मे ही वैठे रहोगे या सुखपूर्वक यात्रा पूरी करने के लिए सिर के भार को कुछ हल्का करने का भी थोडा प्रयास करना है ? एक कवि ने भी सचेत करते हुए कहा है—

नादान भुगत करणी अपनी, ओ पापी ! पाप मे चैन कहा ।
जव पाप की गठरी शीप धरी, फिर शीप पकड क्यो रोवत है?

समय रहते जो अपने सिर के भार को हल्का करेगा वही लम्वी यात्रा को सुखपूर्वक सम्पन्न करने मे सफल हो सकेगा।

राजकुमारी जयन्ती के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर ने फरमाया—"अठारह प्रकार के पापो के सेवन मे आत्मा भारी होता है।"

जयन्ती ने दूसरा प्रश्न पूछा—"भगवन् ! आत्मा ह्ल्का कैसे होता है।

भगवान् ने फरमाया—"प्राणातिपात, मृषावाद, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य से विरत हो कर आत्मा हल्का होता है।"

सागार चारित्र-धर्म से होने वाले महान् लाभ

आप कहेगे "महाराज ! हम लोग अठारह पापो को पूरी तरह से नही छोड सकते ।" तो इसके लिए भी भगवान् ने कहा—"सर्व सावद्य-त्याग रूप अनगार चारित्र-धर्म स्वीकार करने मे असमर्थ गृहस्थ साधको के लिए कर्मभार हल्का करने वाला सागर चारित्र-धर्म है ।"

वस्तुत देखा जाय तो सागार चारित्र धर्म अगीकार करना सरल होने के साथ-साथ महान् लाभकारी है । यथाशक्ति सागार चारित्र धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् आस्रवद्वारो से महावेग के साथ आत्मनद मे गिरते रहने वाले कर्मों के वडे-वडे नालो का प्रवाह क्षीण एव मन्द हो कर उस अनुपात मे अवरुद्ध हो जाता है, जिस परिमाण मे कि गृहस्थ साधक ने १८ दोषो (पापो) का परित्याग किया है । आगार चारित्रधर्म के स्वीकार करने से दूसरा वहुत बडा लाभ यह है कि प्रतिकूल से प्रतिकूलतम परिस्थितियो मे भी साधक अपने व्रतो के प्रति सजग रहता है और जिस पथ पर वह आरूढ हुआ है, उस पथ से फिसलने का, स्खलना का साधारणत भय नही रहता ।

यो तो जैन कुल मे जन्म लेने वाले लडको को कभी किसी चलते-फिरते जीव को मारने का काम नही पडता । जैन कुल मे उत्पन्न हुआ वालक मक्खी को भी नही मारता । यदि कोई नादान लडका मक्खी अथवा किसी छोटे से छोटे जीव को भी मारे, तो वह अज्ञानी कहा जायगा । यो वालोतरा के रहने वाले भाइयो को सोसायटी मिलेगी तो महाजनो की ही सोसायटी मिलेगी । मद्यपान करने वालो, हिंसा करने वालो एव शिकार खेलने वालो के वीच बैठने का उनको मौका नही मिलता । पर वम्वई, कलकत्ता, अहमदावाद आदि वडे-वडे शहरो मे जाने वाले अथवा वहा रहने वाले यहा के नवयुवको का छत्तीस ही कौम वाले लोगो के साथ, युवको के साथ रहने का काम पडेगा और अक्सर पडता ही रहता है । यहा वालो को सिनेमा मे जाने का ज्यादा काम नही पडता पर जव वे वम्वई जैसे नगरो मे जाते है, तो उन्हे अनेक वार सिनेमा

देखने का अवसर मिलता है। सिनेमा मे कैसे-कैसे लोग आते है, यह आप किसी से छुपा नही। उस प्रकार के लोगो के ससर्ग मे आने से, उन लोगो की सगति मे रहने से कभी किसी षड्यन्त्रकारी केस मे घुसने का अथवा उलझने का मौका भी आ सकता है। अखबारो मे वहा के ऐसे केस भी पढने को मिले है कि हत्या के मामलो मे महाजनो के लडके को भी पकडा गया, बैंक मे गबन करने के मुकद्दमे मे पाच महाजनो के लडके भी पकडे गये।

आभूषण मौत के लिए निमन्त्रण

महावीर जी का दर्दनाक किस्सा है। वहा की धर्मशाला मे एक आदमी ठहरा हुआ था। उसने देखा कि एक माता के गले मे सोने का जेवर है। उसने उस बाई की हत्या कर दी और जेवर ले कर नौ दो ग्यारह हो गया। ये माताये दागीने पहन कर वस्तुत' खतरे से खेलती है। चाहे कोई इनको कितना ही कहे, ये किसी की नही सुनती। सारा गाव एक तरफ और ये बाइया एक तरफ।

नित्य-मण्डिता के दृष्टान्त से शिक्षा

एक गाव मे एक बहिन रहती थी। वह सदा ऐडी से चोटी तक स्वर्णाभूषणो से मण्डित रहती थी। इसलिए गाव के आबाल वृद्ध सभी लोग उसे 'नित्य-मण्डिता' नाम से सम्बोधित करते थे। वह नित्य–मण्डिता बहन अपने घर से बाहर जब भी निकलती तो सुन्दर वस्त्र पहन कर नख से शिख तक अभूषणो से अलकृत हो निकलती थी। यहा तक कि शौच निवृत्यर्थ भी जब वह बाहर जाती तो इसी प्रकार वस्त्राभूषणो से अलकृत हो निकलती थी। सिर पर शीश फूल, टिड्डी-झलका, नाक मे मोटी नथ, कानो मे कर्णफूल, गले मे कण्ठहार, हाथो मे हथफूल, गजरा, बगडी, गोखरू, दस्तबन्द, भुजबन्द, मूदडिया, कमर मे सोने का मोटा कन्दोरा, पैरो में आवला, नेवरी, टणका, साटें और मोटे-मोटे चाँदी के कडले। गाँव के बडे बूढो ने उसे अनेक बार मना किया और बडी बूढियो के माध्यम से बहुतेरा समझाया कि कम से कम वह शौचनिवृत्ति हेतु जगल में जाते समय तो गहने पहन कर न जाया करें। कभी चोर-डाकू मिल गये तो सम्पूर्ण गहने गँवा बैठेगी और जीवन भी सकट मे पड सकता

है। नित्य-मडिता ने उन बडे बूढो की बात पर भी कोई ध्यान नही दिया और उसका वही पुराना क्रम पूर्ववत् चलता रहा।

नित्यमण्डिता नित्य की ही भाति वस्त्रालकारो से सुसज्जित हो एक दिन सध्याकाल मे शौच निवृत्यर्थं गाँव के बाहर गई। चोरो ने उसे देखा तो सोचा कि दिवस का अवसान हो रहा है, कोई देखने सुनने वाला नही है। बडा अच्छा अवसर है, यह स्त्री गहनो से लदी है, एक साथ ही खूब धन हाथ लग जायेगा। यह विचार कर चोर उसके पीछे लग गये। एकान्त मे चोरो ने उसे घेर लिया और कहा—"धर दो सब गहने।"

प्राण-भय से नित्यमण्डिता थर-थर काँप उठी और उसने चुपचाप अपने सब गहने उतार कर चोरो के सुपुर्द कर दिये।

साधुजी यदि किसी बाई को हित-शिक्षा देते हुए कहे कि बहन ! गहने पहनने का समय नही रहा, अत इन्हे उतार कर घर मे धर दो, तो तत्काल तमक कर कहेगी—"क्यू महाराज ! थारी आण थोडी ही फिरे है।"

खादी वाले गणेशी लाल जी महाराज को तो गहनो से एक तरह की चिड थी। पूज्य-जवाहर लाल जी महाराज भी कई बार बहनो के आभूषणो के प्रति मोह के सम्बन्ध मे कुछ कडी हितप्रद बातें फरमाया करते थे।

हाँ, तो चोरो ने नित्यमण्डिता के सब गहने खुलवा लिये। चोरो को चम्पत होने की जल्दी थी। कानो के कर्णफूल आदि को खोलने मे विलम्ब होने लगा तो चोरो ने झटके के साथ उन्हे खीच लिया। दोनो कानो की लोले कट-फट गई और खून की धाराए बह चली। पैरो की मोटी-मोटी कडिया जब प्रयास करने पर भी नही खुली, तो चोर कुल्हाडी लेकर नित्यमण्डिता के पैर काटने को उद्यत हुए। नित्यमण्डिता के प्राण सूखने लगे, उसकी आखो के सम्मुख अन्धेरा छा गया। अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करती हुई वह गिडगिडाने लगी। उसने चोरो को हाथ जोडे, उनके पैर पकडे। चोरो को भी दया आ गई अन्यथा दोनो पैरो को काट दिया जाता तो नित्यमण्डिता सदा के लिये अपग हो जाती।

देखने का अवसर मिलता है। सिनेमा मे कैसे-कैसे लोग आते है, यह आप किसी से छुपा नही। उस प्रकार के लोगो के ससर्ग मे आने से, उन लोगो की सगति मे रहने से कभी किसी षड्यन्त्रकारी केस मे घुसने का अथवा उलझने का मौका भी आ सकता है। अखबारो मे वहा के ऐसे केस भी पढने को मिले है कि हत्या के मामलो मे महाजनो के लडके को भी पकडा गया, बैंक मे गबन करने के मुकद्दमे मे पाच महाजनो के लडके भी पकडे गये।

आभूषण मौत के लिए निमन्त्रण

महावीर जी का दर्दनाक किस्सा है। वहा की धर्मशाला मे एक आदमी ठहरा हुआ था। उसने देखा कि एक माता के गले मे सोने का जेवर है। उसने उस बाई की हत्या कर दी और जेवर ले कर नौ दो ग्यारह हो गया। ये मातायें दागीने पहन कर वस्तुत खतरे से खेलती है। चाहे कोई इनको कितना ही कहे, ये किसी की नही सुनती। सारा गाव एक तरफ और ये बाइया एक तरफ।

नित्य-मण्डिता के दृष्टान्त से शिक्षा

एक गाव मे एक बहिन रहती थी। वह सदा ऐडी से चोटी तक स्वर्णाभूषणो से मण्डित रहती थी। इसलिए गाव के आबाल वृद्ध सभी लोग उसे 'नित्य-मण्डिता' नाम से सम्बोधित करते थे। वह नित्य–मण्डिता बहन अपने घर से बाहर जब भी निकलती तो सुन्दर वस्त्र पहन कर नख से शिख तक अभूषणो से अलकृत हो निकलती थी। यहा तक कि शौच निवृत्यर्थ भी जब वह बाहर जाती तो इसी प्रकार वस्त्राभूषणो से अलकृत हो निकलती थी। सिर पर शीश फूल, टिड्डी-झलका, नाक मे मोटी नथ, कानो मे कर्णफूल, गले में कण्ठहार, हाथो मे हथफूल, गजरा, बगडी, गोखरू, दस्तबन्द, भुजबन्द, मूदडिया, कमर मे सोने का मोटा कन्दोरा, पैरो में आवला, नेवरी, टणका, साटें और मोटे-मोटे चाँदी के कडले। गाँव के बडे बूढो ने उसे अनेक बार मना किया और बडी बूढियो के माध्यम से बहुतेरा समझाया कि कम से कम वह शौचनिवृत्ति हेतु जगल में जाते समय तो गहने पहन कर न जाया करें। कभी चोर-डाकू मिल गये तो सम्पूर्ण गहने गँवा बैठेगी और जीवन भी सकट मे पड सकता

है । नित्य-मडिता ने उन वडे बूढो की वात पर भी कोई ध्यान नही दिया और उसका वही पुराना क्रम पूर्ववत् चलता रहा ।

नित्यमण्डिता नित्य की ही भाति वस्त्रालकारो से सुसज्जित हो एक दिन सध्याकाल मे शौच निवृत्यर्थ गाँव के वाहर गई । चोरो ने उसे देखा तो सोचा कि दिवस का अवसान हो रहा है, कोई देखने सुनने वाला नही है । बडा अच्छा अवसर है, यह स्त्री गहनो से लदी है, एक साथ ही खूब धन हाथ लग जायेगा । यह विचार कर चोर उसके पीछे लग गये । एकान्त मे चोरो ने उसे घेर लिया और कहा—"धर दो सब गहने ।"

प्राण-भय से नित्यमण्डिता थर-थर काँप उठी और उसने चुपचाप अपने सब गहने उतार कर चोरो के सुपुर्द कर दिये ।

साधुजी यदि किसी बाई को हित-शिक्षा देते हुए कहे कि बहन ! गहने पहनने का समय नही रहा, अत इन्हे उतार कर घर मे धर दो, तो तत्काल तमक कर कहेगी—"क्यू महाराज ! थारी आण थोडी ही फिरे है ।"

खादी वाले गणेशी लाल जी महाराज को तो गहनो से एक तरह की चिड थी । पूज्य-जवाहर लाल जी महाराज भी कई वार वहनो के आभूषणो के प्रति मोह के सम्वन्ध मे कुछ कडी हितप्रद वातें फरमाया करते थे ।

हाँ, तो चोरो ने नित्यमण्डिता के सब गहने खुलवा लिये । चोरो को चम्पत होने की जल्दी थी । कानो के कर्णफूल आदि को खोलने मे विलम्ब होने लगा तो चोरो ने झटके के साथ उन्हे खीच लिया । दोनो कानो की लोलें कट-फट गई और खून की धाराए बह चली । पैरो की मोटी-मोटी कडिया जब प्रयास करने पर भी नही खुली, तो चोर कुल्हाडी लेकर नित्यमण्डिता के पैर काटने को उद्यत हुए । नित्यमण्डिता के प्राण सूखने लगे, उसकी आखो के सम्मुख अन्धेरा छा गया । अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करती हुई वह गिडगिडाने लगी । उसने चोरो को हाथ जोडे, उनके पैर पकडे । चोरो को भी दया आ गई अन्यथा दोनो पैरो को काट दिया जाता तो नित्यमण्डिता सदा के लिये अपग हो जाती ।

घोडनदी की एक वाई का नमूना देखा। ६० वर्ष से ऊपर की आयु की हो चुकी थी पर आभूषणो से लदी रहती। उसको गहनो के लिये टोका जाता, तो वह कहती—"क्या करू, मेरे से तो ये गहने छूटते ही नही है।"

अन्त मे चोरो ने ही एक रात्रि मे उस वाई से गहनो का पहनना छुडवाया। चोर चुपके से उसके घर मे घुसे और उस वाई को आहत कर सव जेवर ले गये। उस वाई को हास्पिटल मे भी भर्ती होना पडा। ६० वर्ष की उम्र पार कर गई, फिर भी वह वहन गहनो से लदी रहे तो यह एक अतिरेक हो जाता है।

स्खलना से रक्षा करने वाला सागार-चारित्र धर्म

प्रसगवश ये वाते कही गई। जो मूल वात मैं कह रहा था, वह यह है कि जैन कुल के नवयुवको को वम्वई आदि वडे नगरो मे जाने पर सभी प्रकार के लोगो के ससर्ग मे आने का मौका आ सकता है और उनमे से कतिपय युवको पर वहा की अन्यान्य प्रकार की अवाछनीय सोसायटी के कुप्रभाव पडने की आशका रहती है। ऐसी स्थिति मे यदि प्रारम्भ मे ही जैन कुल के वालको एव युवको मे सागार-चारित्र धर्म के सस्कार डाले जाय, १८ प्रकार के दोपो से वचने, हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि के पाप-भार को यथासभव हल्का करने और व्यापार, परिग्रह आदि का परिमाण करने की शनै शनै प्रवृत्ति डाली जाय, तो वे सदा सजग रह कर इस प्रकार की अवाछनीय सोसायटियो, समाजविरोधी, धर्मविरोधी तत्वो के कुप्रभाव से अपने आपको वचाये रख सकेगे। उनके जीवन मे सन्मार्ग से स्खलना का, फिसलन का खतरा नही रहेगा। जैन कुल का, प्रत्येक आवाल वृद्ध आगार चारित्र धर्म के महत्त्व को समझ कर यथाशक्ति सावधिक अथवा जीवन पर्यन्त जीवनोपयोगी प्रत्येक वस्तु का, प्रत्येक कार्य का परिमाण करते हुए सागार चारित्र-धर्म स्वीकार करे तो स्वल्प समय मे ही समाज का नक्शा एक आदर्श समाज के रूप मे वदल सकता है।

भगवान् महावीर का सन्देश गृहस्थ साधको को यही कहता है—"श्रावको! यदि तुम आरम्भ—परिग्रह को पूरी तरह से नही

छोड सकते तो इसका मतलब यह नही कि तुम आरम्भ-परिग्रह को छोडने का अभ्यास भी न करो। अभ्यास करते रहो और अभ्यास को वढाते रहो। शनै शनै भोगोपभोगो को घटाओ, भोगोपभोग की सामग्री का परिमाण करो। इससे तुम्हारा कर्म का भार, पाप का भार हल्का होगा, तो यात्रा भी आराम से होगी। पाप के भार को हल्का नही करोगे तो यात्रा मे पग-पग पर असह्य घोर दु खो और सकटो का सामना करना पडेगा और यात्रा वडी मुश्किल से होगी। उस यात्रा मे दु ख भोगने का समय आयगा, उस समय रुदन करोगे तो वह रुदन नितान्त रूप से निष्फल ही होगा।

रोग-शोक-सताप की अमोघ औषधि—सयम

भगवान् महावीर, रोग होने से पहले ही रोग न होने देने की दवा देते हैं। यह जैन दर्शन की, वीतराग-मार्ग की सबसे वडी विशेषता है। डॉक्टर तो रोग उत्पन्न होने पर दवा देते है। पर भगवान् महावीर का रास्ता निराला है, वे कहते है—"हम तुम्हे रास्ता बताते हैं, उस रास्ते पर चलो, तुम्हे कभी रोग होगा ही नही।

एक तो मित्र वह, जो रुलावे और रोने की स्थिति उत्पन्न कर फिर आसू पोछे। रुला कर आसू पोछने वाला मित्र आपको अच्छा लगेगा कि विना रुलाये ही दु ख दर्द मिटा देने वाला मित्र अच्छा लगेगा?

आप लोग सगे-सम्वन्धियो के यहा हुई मृत्यु के प्रसग पर 'मोकाण' (शोक सान्त्वनार्थ) जाते है तो भाई दुपट्टी से अपना सिर ढक लेते है और वहनें गाँव मे घुसने से पहले ही रोना शुरु कर देती है। उन वहनो का रोना सुनकर उस घर की औरते भी रोना प्रारम्भ कर देती हैं। घर पहुँचने पर वे वहनें उस घर की औरतो को कहती है—"रोओ मत।" पहले तो उन्हे रुला दिया और पीछे कहे कि रोओ मत। अब कहती हैं "रोओ मत" तो पहले रुलाया ही क्यो?

भगवान् महावीर हमे वह रास्ता बताते है कि जिस रास्ते को पकडने के वाद कभी रोना ही नही पडे। वह रास्ता है चारित्र-धर्म का, सयम का-अर्थात् सयम से रहने का। सयम रखेगे तो कभी

कोई रोग उत्पन्न ही नही होगा। यह चारित्र-धर्म का सबसे बडा और सबसे पहला लाभ है।

ससार के मित्र तो खाना खिलाते समय पेट भर जाने के उपरान्त भी कहते है—"लो एक चक्की और खाओ, एक पूडी और खाओ।" पूरी चाहे डालडा की बनी है पर महमान को ज्यादा ही खिलायेगे। खाने वाला कहता है कि पेट खराब हो जायगा तो उत्तर मिलता है चूरण फाक लेना। पर प्राणिमात्र के मित्र भगवान् महावीर ने सयम रखने का उपदेश दिया है, जिससे कि कोई रोग उत्पन्न ही नही हो। वास्तव मे सयम चारित्र-धर्म होने के साथ-साथ एक छोटा सा तप भी है। जो कोई व्यक्ति जितना अधिक सयम से रहेगा वह उतना ही अधिक सुखी और सब भाति स्वस्थ रहेगा। सयम सब प्रकार के दु खो के मूल कारण पाप से बचाने वाला और अन्ततोगत्वा अक्षय सुख का दाता है। खाने मे सयम रख कर कम खाओगे तो रोग से बचोगे। वचन पर--वाणी पर सयम रखोगे, कम बोलोगे तो राग, द्वेष एव लडाई से बचोगे। 'कम खाओ, गम खाओ और सामने वाला बोले तो चुप हो जाओ।' कैसा सुखद सुन्दर रास्ता है ? अब आप ही सोचिये यह सयम, यह चारित्र-धर्म रोग उत्पन्न होने से पहले ही सर्वरोग विनाशक दवा देने का रास्ता है या रोग उत्पन्न हो जाने के पश्चात् दवा देने का ? जन्म-मरण के असाध्य कहे जाने वाले महा रोग को मिटा देने वाला, कर्म भार को, पाप भार को हल्का करने वाला यह चारित्र-धर्म का रास्ता कितना सहज और कितना सरल है।

असयम अश्रेय का द्वार

यदि चारित्र धर्म की आराधना नही करेगे, जीवन के प्रत्येक कार्य मे सयम नही रखेंगे तो कर्म बढेगे। कर्मभार के बढने से तुम्हारी आत्मा भारी होगी और उस लम्बी यात्रा मे सिर पर पाप की बडी गठरी कर्मो का गुरुतर भार होने के कारण तुम्हे उस यात्रा मे एक डग भी आगे बढने मे बडी कठिनाइयो का, दारुण दु खो का सामना करना पडेगा। कर्म-भार से लदी, पाप के बोझ से भारी हुई आत्मा ऊपर नही उठ सकती, उसका अध पतन ही होगा। कर्म का,

पाप का जितना अधिक भार होगा, उतनी ही अधिक आत्मा नीचे से नीचे की ओर गिरेगी। नरक मे पडेगी, निगोद मे पडेगी और कराल काल की जन्म-मरण रूपी विकराल चक्की मे पिसती हुई अनन्तकाल तक विकट भवाटवी मे भटकती रहेगी।

सयम सर्वदा सर्वत्र श्रेयस्कर

यदि चारित्र की आराधना करेंगे तो पाप का भार, कर्म का भार घटेगा, क्षीण होगा। पाप का भार घटने पर आत्मा हल्की होगी। हल्की होने के कारण आत्मा ऊपर की ओर उठेगी। उसे नरक निगोद मे नही गिरना पडेगा। अहिंसा, अस्तेय, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाच व्रत है। इन पाचो व्रतो का यथाशक्ति आगार के साथ पालन, भोगोपभोग का परिमाण, अनर्थ दण्ड से बचना आदि आदि—ये पाप को घटाने के साधन है। इनके द्वारा पाप को घटा कर, जीवन को माज कर चला जाय तो मानव भव का समुचित लाभ लिया जा सकता है।

सुख का सच्चा मार्ग

भगवान् महावीर का धर्म मिला, उसके उपरान्त भी यदि कोई दु खी रह जाय तो फिर सुखी कैसे होगा? वीतराग-मार्ग के अतिरिक्त सुख देने वाला क्या और कोई रास्ता है? नही। यह सुनिश्चित समझिये कि केवल वीतराग का मार्ग ही ऐसा मार्ग है, जो शान्ति देने वाला है। दुनिया भर के जो अनेक मत-मतान्तर मार्ग हैं, वे शान्ति देने वाले नही है। क्योकि वे रागियो के मार्ग है। जहा राग है, वहा मन की वृत्तियो का लगाव है। जहा लगाव है वहा बन्धन है और जहा बन्धन है वहा दु ख है। बन्धन से छूटने के लिये स्वय भगवान् ने यही रास्ता अपनाया। इस रास्ते पर चल कर पहले उन्होने अपने बन्धनो को काटा और घट-घट के अन्तर्यामी, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होने के पश्चात् अपने शिष्यो को, अपने भक्तो को तथा ससार के प्राणियो को बन्धनमुक्त होने के लिये कल्याण-मार्ग का दिग्दर्शन कराया, इसी मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया। बन्धन काटने के लिये भगवान् महावीर द्वारा बताये गये चारित्र-धर्म के मार्ग पर आरूढ होने वाले प्रत्येक साधक को सदा यह ध्यान रखना

चाहिये कि सयम वस्तुत चारित्र-धर्म का प्रवेश द्वार है। खाने, पीने और बोलने आदि मे सदा सयम का अभ्यास करते रहने की अनिवार्य आवश्यकता है।

भूखा रहने वाला साधक भी एक दिन तो खाने के रास्ते पर आता है। महीने भर की तपस्या करने वाले को भी इकतीसवें दिन तो खाना पडता है। उस समय सयम की वडी भारी आवश्यकता रहती है। साधारण तपस्या के पश्चात् पारणे के दिन और लम्बी तपस्या के पश्चात् कुछ दिन तक मन पर सयम रखते हुए पथ्य का पूरा ध्यान रखना चाहिए। उस समय यदि घर वाले अथवा हित-चिंतक कहते हैं कि अमुक-अमुक चीज खाना इस समय अहितकर है अत मत खाओ तो मन पर एव जिह्वा पर जिनका सयम नही है, ऐसे लोग तमक कर यह कहते हुए कि 'क्या सथारा कराना चाहते हो,' लडने लग जाते है। ऐसे समय मे सयम रखना परमावश्यक है, अन्यथा वडा अनिष्ट हो सकता है। स्वास्थ्य विगड सकता है। अत जीवन मे प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रत्येक कार्य मे सयम रखना चाहिए।

दया—साधुवृत्ति का अभ्यास

आज युवको ने, वच्चो ने दया की है, तो यह साधुवृत्ति का अभ्यास है। हमारी धर्मसाधना निर्वाध रूप से हो रही है। शासन-देव की, धर्म की महिमा है कि अधिक गर्मी भी नही है, अधिक वर्षा भी नही है और वडी शान्ति के साथ धर्म की आराधना चल रही है। अगर कडी धूप निकल जाय तो फिर दया मे नगे पाव जाने-आने मे साधु जीवन का भी थोडा पता चले। यह दया करना, एक प्रकार से साधु-वृत्ति का अभ्यास है।

चारित्र-धर्म का पहला चरण है तन पर सयम और वाणी पर सयम। अत दया करने वाले वच्चे इस वात का पूरा ध्यान रखें कि वे भोजन करते समय पूर्णत मौन धारण किये रहेंगे। भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व तीन नमस्कार मत्र का ध्यान करेंगे। यदि एक साथ सवका भोजन हो तो जिस तरह छात्रालयो मे, विद्यालयो मे सामूहिक प्रार्थना की जाती है, उसी प्रकार सामूहिक प्रार्थना करे।

परिमित भोजन करें और भोजन करने के पश्चात् थाली कटोरी आदि अपने हाथ से साफ करेंगे, दूसरो से न मजवायेगे ।

सागर मुनि के सथारे के समय की वात है, किशनगढ मे स्वयसेवक दर्शनार्थियो की सेवा के लिये तैयार खडे थे । चौक मे एक कुत्ते ने विष्टा कर दी । लोग झाडू देने वाले को बुलाने की वात करने लगे । स्वयसेवको के नायक भाई आनन्द राज जी सुराना थे । वे बोले स्वयसेवक किसे कहते है ? जो स्वय अपनी सेवा करे वही स्वयसेवक । यह कहते हुए सुराणाजी ने कुत्ते की टट्टी उठा कर बाहर फेक दी । मुझे यहा स्वयसेवक दिखते नही । आज आपने दया की है तो थाली वर्तन साफ करने का तथा अपनी आवश्यकता का अन्य सब कार्य दूसरे से न करवाए, स्वय अपने हाथ से ही अपना सब काम करें । अपना काम अपने हाथ से करोगे तो यह एक आदर्श होगा ।

धन धरा रह जात है, धर्म साथ मे जात

दया का दिन धर्माराधन का दिन होता है । तन, मन, वाणी तथा भोगोपभोगादि का सयम और विषय-कषायो का सयम यह धर्म का प्रमुख अग है । जीवन मे धन मिल सकता है । धन आता है और चला जाता है पर धर्म का मिलना वडा ही कठिन है । जीवन मे यदि धर्म नही है तो जीवन व्यर्थ ही चला जायेगा । जिस प्रकार विना नमक के भोजन अलूणा, स्वादरहित और फीका लगता है उसी प्रकार जीवन मे यदि धर्म नही है, चारित्र नही है, तो जीवन फीका है । आज आपका समाज धर्म से दूर होता चला जा रहा है, धन को छाती (सीने) से लगाता चला जा रहा है । पर याद रखिये यह धन एक दिन चला जाने वाला है । केवल धर्म ही साथ चलने वाला है ।

आत्मा को महात्मा बनाने वाला सयम

गाधीजी को दुनियाँ क्यो याद करती है ? कमर पर खादी की छोटी सी धोती लपेटे हुए, हाथ मे लाठी लिये, सीधे सादे गाधीजी सब के श्रद्धा-केन्द्र कैसे बन गये ? अहमदावाद मे एक विदेशी आया । वह यह देखने के लिये आया कि भारत का नेता, अहिसा का पुजारी

मोहनदास करमचन्द गाधी कैसा है। अहमदावाद स्टेशन पर उसने देखा कि एक दुवला-पतला व्यक्ति खादी की चादर ओढे, हाथ मे लाठी लिये आगे वढ रहा है और उसके पीछे विशाल जनसमूह 'महात्मा गाधी की जय' के जयघोष करता हुआ चला आ रहा है। उस विदेशी ने लोगो से पूछा "गाधी कहा हैं ?"

खादी की चादर ओढे, हाथ मे लाठी लिये आते हुए गाधीजी की ओर सकेत कर लोगो ने कहा—"ये ही हैं महात्मा गाधी।"

उस विदेशी ने आगे वढ कर गाँधीजी से पूछा—"करोडो-करोडो भारतीयो का लीडर और सिर पर कपडा नही। टोप क्यो नही, सूट क्यो नही और वूट क्यो नही ?"

इस पर गाँधीजी ने कहा—"मैं कोट, पेन्ट, वूट कैसे पहनू, मेरे देश के लाखो करोडो भाइयो के पास पहनने को कपडा नही है।"

वह विदेशी यह सव कुछ देख-सुन कर आश्चर्य से अवाक् हो गाँधीजी की ओर देखता ही रह गया।

गाँधीजी साधु नही वने पर हिंसा से सदा दूर रहना चाहते थे। आश्रम मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति यदि झूठ वोलता तो उसका प्रायश्चित्त लेते थे स्वय महात्मा गाधी। इस प्रकार का उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। उन्होने सयम और सादगी को अपने जीवन मे उतारा। सभी राष्ट्र उन्हे वडे आदर की दृष्टि से देखते थे।

चारित्र-दिवस के उपलक्ष मे, अन्त मे मैं यही कहूगा कि आप लोग चारित्र-धर्म को अपने जीवन मे उतार कर अपनी आत्मा को हल्की करोगे तो आपको जन्म-मरण की घाटियो मे भटकना नही पडेगा। भगवान् महावीर द्वारा वताये गये मार्ग पर चलेंगे तो आपका इह लोक और परलोक मे कल्याण होगा।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॐ

मुकन भवन, वालोतरा,
दि २४-८-७६

चतुर्थ दिवस—तप दिवस—का
प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र' दिश ।

अन्तकृत् दशा की गरिमा

बन्धुओ !

अभी पर्वाधिराज की मगल वाचना के प्रसग से आपको अन्तगडदशा सूत्र मे वर्णित साधक महापुरुषो की, चारित्र-आत्माओ की उत्कृष्ट साधना और उसके सुखद सुन्दर परिणाम श्रवण करने को मिले । ये प्रत्येक साधक के लिये प्रेरणा के सूत्र हैं, प्रत्येक मुमुक्षु को आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करने वाले अक्षय स्रोत है। साधना के इन मगलकारी दिनो मे और कोई सूत्र पढा जाता, तो वह कदाचित् ज्ञान के गहन-गम्भीर प्रश्नो को सुलझा सकता था लेकिन चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधनापूर्ण जीवन की प्रेरणा प्रदान करने मे वह अन्तकृत् दशा सूत्र के समान वल प्रदान करने वाला नही होता। प्रश्न होता है कि इन दिनो, नही आने वाले भाई-बहन भी ज्ञान प्राप्त करने को आते हैं अत पर्वाधिराज पर्यूषण मे भगवती सूत्र या पन्नवण सूत्र के प्रसगो का अथवा अन्य किसी सूत्र का वाचन रखा जाय तो अधिक लाभ हो सकता है। प्रति वर्ष अन्तगड दशा सूत्र का ही वाचन इन दिनो मे क्यो रखा जाता है ? तो आपको यह ध्यान मे ले लेना चाहिए कि जिस काम मे आदमी लगता है, उसको उस काम की सुसम्पन्नता के लिये उसी के अनुकूल वातावरण का

रखना परम आवश्यक होता है। उस कार्य को कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिये किस किसने, किस प्रकार, कौन-कौन से साधन जुटाये, कैसे-कैसे प्रयास किये, उन सब कार्यकलापो, प्रक्रियाओ और घटनाओ का चित्रण करना ही उपयोगी होता है, न कि उस कार्य से भिन्न प्रसगो का। हमारे पूर्वाचार्यो ने महापर्व के इन साधना के दिनो मे भी प्रसग के पूर्णत अनुकूल होने के कारण ही अतगड दशा का वाचन रखा।

मगल के रूप मे तो श्वेताम्बर परम्परा मे पच कल्याणक का वाचन उत्तम माना जाता है, जिसके लिये कल्पसूत्र की परिपाटी चालू की गई। पर साधना की भावना मे प्रेरक होने से अन्तगड दशा हमारे आचार्यो ने विशेष उपयोगी माना है।

कर्म-क्षय के साधन

अभी मोक्ष-मार्ग के साधनो की बात चल रही है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इन चार साधनो मे से ज्ञान की बात कही, दर्शन पर विचार किया। ज्ञान और दर्शन को सफल कैसे किया जाय, इसके लिये कल चारित्र की बात कही गई।

यह तो आपको मानकर चलना होगा कि एक ही दिन मे चारित्र की, चाहे वह अगार चारित्र की बात हो चाहे अणगार चारित्र धर्म की बात, पूरी नही कही जा सकती। अत मैं अति सक्षेप मे ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि के सम्बन्ध मे कह पा रहा हू।

सम्यग्दर्शन को पा लेने के पश्चात् क्रिया के लिये कदम उठाना आवश्यक है। यदि क्रिया अथवा चारित्र के लिये कदम नही उठायेंगे, तो आत्मा पर लदे हुए कर्म भार को, पाप-भार को हल्का नही कर सकेंगे और भार हल्का नही कर सकेंगे तो हम ऊचे नही उठेंगे, नीचे गिरेंगे। इसलिये आत्मा को ऊपर उठाने के लिये चारित्र की आवश्यकता है। चारित्र का काम है नये रूप मे आने वाले कर्मो को रोकना। आत्मा पर नये कर्म न लगने देना, यह चारित्र का काम है। आत्मा पर यह जो पुराने कर्मो के बन्धन लगे हुए हैं, उन बधनो को कैसे काटा जाय, इसके लिये चारित्र के पश्चात् तप की

आवश्यकता वताई गई है। इस सम्वन्ध मे शास्त्र का एक वचन है —

खवित्ता पुव्वकम्माइ, सजमेण तवेण य।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, ताइणो परिणिव्वुडा ॥

अर्थात्—जिन साधको ने सयम और तपस्या द्वारा पहले के सचित कर्मो को खपा दिया, नष्ट कर दिया, वे षट्‌काय के त्राता अर्थात् रक्षक सब प्रकार के वन्धनो से परिनिवृत्त हो निर्वाण को प्राप्त हो गये। जो महान् साधक सकल कर्म-वन्धनो को काट कर जन्म-मरण के भव-पाश से विमुक्त हो निर्वाण को प्राप्त हो गये, उनकी पुनीत गाथाए आपने सुनी। श्री कृष्ण जैसे तीन खण्डो के अधिपति के पुत्र-पौत्रो ने पाप को, कर्मवन्ध को आत्मा के लिये दु ख-दायी समझ कर सत्ता, समृद्धि और सपदा को ठुकरा सयम की आराधना की, भोग मार्ग को त्याग कर योग मार्ग को अपनाया।

तीन खण्डो के स्वामी श्री कृष्ण के भ्राताओ, पुत्रो, पौत्रो, पत्नियो, पुत्र वधुओ और अन्यान्य कुटुम्वी जनो ने जव भोग से योग की ओर बढना आवश्यक माना, तो आपको भी अपने लिये निर्णय कर लेना है कि यदि आप अणगार चारित्र धर्म नही स्वीकार कर सकते तो कम से कम आपको सागार चारित्र-धर्म तो स्वीकार करना ही चाहिए।

अभी आप विचार रहे हैं कि चारित्र-धर्म के पालन मे पग-पग पर बडी कठिनाइया आती है, चारित्र धर्म के अगीकार करने से आपके कारोबार पर, कमाई पर बडा कुप्रभाव पडेगा। आपका यह भय सकारण भी है क्योकि चारित्र-मार्ग पर चलने वालो को प्रारभ मे समय-समय पर कष्ट, परीषह, वाधाए, तकलीफे, परेशानिया भी आती है और यदि उन तकलीफो एव वाधाओ को साहस के साथ नही सह सके तो आप फेल हो जायेगे।

थोडी देर के लिये मान लो कि आपने असत्य भाषण न करने का व्रत ग्रहण किया और परिस्थिति ऐसी हो जाय कि उस व्रत के ग्रहण करने के कारण आपके कारोवार मे फरक पड गया। ग्राहको के साथ आपके पहले के तरीके अथवा वर्ताव के विपरीत जब ग्राहको

ने आपका एक ही वात, एक ही भाव वताने का और एक वार वताये हुए भाव से एक पैसा भी कम न करने का रवैया देखा, तो आपके पुराने जमे हुए ग्राहक टूटने लगे। इस जगह से, इस दुकान से दूसरी दुकानो पर ठीक मिलता है, यह कहकर वे दूसरी दुकानो पर, दूसरे व्यापारियो के यहा जाने लगे। कई ग्राहक ऐसे भी आते है जो कहते हैं—"सेठ साहव ! पहले तो आप अमुक-अमुक वस्तु का भाव २) दो रुपया कहकर डेढ रुपये मे दे देते थे और कहा करते थे कि भाव तो २) रु० ही है पर मेरे साथ तुम्हारा पुराना सनातन, लेन-देन का पुराना व्यवहार है इसलिये केवल तुम्हें डेढ रुपये के भाव से दे रहा हू। पर अव तो सेठ साहव ! आपके मन मे फर्क आ गया है।"

व्यापारियो की अस्थिर, पद्धति अथवा रवैये ने इस प्रकार की स्थिति वना डाली कि विना झूठ वोले ग्राहक को पतियारा-विश्वास ही नही होता। पहले से ही रवैया ठीक रखा जाय तो कितना अच्छा हो। झूठ वोलने की पद्धति को वन्द कर सत्य वोलने का व्रत लेने के पश्चात् कष्ट सहन की, कुछ आर्थिक हानि की स्थिति आ सकती है। एक पद्धति को छोडकर दूसरी प्रकार की पद्धति के अपनाने की दशा मे इस प्रकार की स्थिति का आना सहज भी है। पर प्रारम्भ मे होने वाली हानि एव कठिनाई का दृढतापूर्वक सामना करने और कष्टो को सहन करने पर व्रत का पालन अच्छी तरह हो सकता है। वे कष्ट की घडिया वस्तुत परीक्षा की घडिया होती हैं। उस परीक्षा मे पास हो जाने के पश्चात् साल दो साल के अन्दर-अन्दर ही आप अपनी पैठ जमा लेगे। सत्य-भाषण का व्रत ग्रहण करने के अनन्तर पहले तो ग्राहक नही आयेगे पर वाद मे देखेंगे कि यह तो वच्चो को, वूढो को और सरकारी कर्मचारियो, अधिकारियो को-सवको एक ही भाव वता रहे है। तो आपकी पैठ जम जायगी और न केवल वे पुराने ग्राहक ही, अपितु नये लोग भी आपके ग्राहक वन जायेगे। इसका मतलव यह हुआ कि थोडे दिन तो तपस्या करनी पडेगी। तपस्या करता है तव तप के कारण आदमी जप के लायक वनता है।

तप मोक्ष का चौथा सोपान

आज पर्वाधिराज का चौथा दिन है। मोक्ष मार्ग के साधनो

मे तप भी चौथा साधन है। बच्चे होड के साथ तप करते है। शहरो मे कभी वातावरण बन जाता है तो एक साथ दो सौ-तीन सौ तेले सहज ही मे हो जाते हैं। कभी सन्त-सतियो की प्रेरणा होती है कि १०८ तेले करने हैं तो बच्चियो मे उत्साह की लहर सी दौड जाती है, उनसे महिला वर्ग को भी बडी प्रेरणा मिलती है। जयपुर मे एक बार चातुर्मास मे इतनी अधिक तपश्चर्याए हुई कि उन्हे यदि हिन्दुस्तान भर मे सबसे अधिक कहा जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी। रायचूर मे, बेगलोर मे एक-दो मास खमरण सुन लेंगे। सतो ने किये हैं। ऐसा पाच-दस तक का नम्बर आ सकता है पर जयपुर मे अठाई (८) का सिलसिला २०० तक पहुच गया। अब अठाई का भाव तो मदा पड गया है। गत वर्ष हमने ब्यावर मे चातुर्मास किया तो एक साथ १८५ अठाइया हो गई। वह मण्डली अठाई का पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) करने आई तो देखने वाले लोग दग रह गये। लड्डू खाने वाले तो, १८५ को बुलाया जाय तो २८५ आ सकते हैं पर अठाई करने वाले इतने आ गये तो लोगो के मन पर बडा असर पडा।

आज तप दिवस के प्रसग पर विचार करना है कि तप क्या चीज है, तप कितने प्रकार का है, तप से क्या क्या लाभ है? गृहस्थ के जीवन मे तप के साथ क्या साधना होनी चाहिये? श्रमण जीवन मे क्या होनी चाहिये? इस पर आज हमे विचार-चर्चा करनी है। समय की सीमा के अनुसार ही चर्चा करेंगे।

बन्ध और मुक्ति के माध्यम—तन, मन, वाणी

"तप्यन्ते कर्माणि अनेन इति तप ।"

यह तप शब्द का अर्थ है—जिसके द्वारा कर्म तपाये जावे वह तप। यह छोटा सा शाब्दिक अर्थ कर दिया। कर्मो का सचय तन, मन और वाणी-इन तीन साधनो से किया जाता है। जिन साधनो के माध्यम से कर्म का सचय किया जाता है, कर्म को काटा भी उन्ही साधनो से जाता है। जिस प्रकार तन, मन और वाणी से कर्मो का वन्ध किया जाता है, उसी प्रकार कर्मो को काटने वाले तप का आराधन भी तन, मन और वाणी इन तीनो साधनो से किया जाता

है। तो इस प्रकार कर्म बाधने के भी तीन साधन—तन, मन और वाणी और कर्मो को काटने के भी तीन ही साधन—तन, मन और वाणी।

तप के भेद-प्रभेद

भगवान् ने तप के दो भेद बताये हैं-अन्तरग तप और बहिरग तप। इन दोनो प्रकार के तपो मे प्रत्येक के छ छ भेद हैं, अन्तरग तप के छ भेद और बहिरग तप के भी छ भेद। जैसे कहा है—

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भतरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भितरो तवो। ३०-७।

गीता मे कायिक तप, वाचिक तप और मानसिक तप-इस तरह तीन प्रकार का तप कहा है। पहला काया का तप, दूसरा वाणी का तप और तीसरा मन का तप। श्री कृष्ण ने गीता मे ही सात्विक, राजस और तामस—ये तीन भेद तप के और किये है।

तामस तप

कोई व्यक्ति अपने शत्रु को आर्थिक, शारीरिक अथवा मानसिक हानि पहुँचाने के लिये, उसका मारण, मोहन अथवा उच्चाटन करने के लिये तप करता है, वह तामस तप है। तपस्या की, तेला किया, आठ उपवास किये, चौदह दिन तक अनशन किया, श्मशान मे बैठकर यह तप किया लेकिन तपस्या करने वाले व्यक्ति का तप करने के पीछे उद्देश्य दुश्मन को नष्ट करना है, मारना है-तो यह तामस तप है।

एक राजस तप होता है। अपनी सपदा बढाने के लिये, ऐश्वर्य और राज्य की अभिवृद्धि के लिये, यश-कीर्ति अर्जित करने के लिये, कमाई बढाने के लिये अथवा अन्यान्य प्रकार की भौतिक उपलब्धियो की प्राप्ति के उद्देश्य से कोई तप करता है, वह तप राजस तप कहलाता है। सभी चक्रवर्ती तेरह-तेरह तेले करते है। दूसरो को पायमाल (बर्बाद) करने के लिये भी नही, श्रावकपन की तपस्या भी नही, उन्हे छ खण्डो के राज्य की साधना करनी है, इसलिये चक्रवर्तियो को भी तपस्या करनी पडती है। किसी बडे आदमी को देखते हैं तो

अक्सर लोग कहते हैं आपने बडी तपस्या की है—पर धूनी मे एक लकडी मेरी भी दी हुई है। राज्य-प्राप्ति, राज्य की अभिवृद्धि द्रव्य की प्राप्ति, भोगोपभोग की उपलब्धि अथवा कमाई आदि के लिये जो तप किया जाता है, वह राजस तप कहलाता है।

सात्त्विक तप

जिस तप के पीछे भौतिक लाभ की किञ्चित्‌मात्र भी आकाक्षा नही हो, केवल आत्मशुद्धि अथवा सहिष्णुता बढाने के लिये किया जाय, वह तप सात्विक तप कहलाता है।

यह तो गीता के विचार कहे। श्री कृष्ण ने गीता मे इस प्रकार तीन-तीन कर के तप का वर्णन किया है।

भगवान् महावीर ने वताया है कि तमोगुण स प्रेरित होकर तथा राज्य प्राप्ति हेतु अथवा भौतिक वैभव, ऐश्वर्य की प्राप्ति के उद्देश्य से जो तप किया जाता है, वह मोक्ष मार्ग का तप नही है। तामसी तप और राजसी तप—ये दोनो प्रकार के तप तो केवल शरीर को तपाने वाले और भवभ्रमण को वढाने वाले है। ये दोनो मोक्ष प्राप्त कराने वाले तप नही हैं।

भगवान् महावीर ने तप के प्रथमत मोटे तौर पर दो भेद कर दिये।

(श्रोताओ को ध्यानपूर्वक सुनने के लिए सावधान करते हुए)

देखिये मैं परोसगारी समान रूप से कर रहा हू। आप सभी भाई-वहिन ध्यान रखे। अन्यथा भूखे आप ही रहेगे।

हाँ, तो भगवान् महावीर ने मोटे रूप मे तप के दो भाग किये। एक तो ज्ञान-तप और दूसरा अज्ञान-तप अर्थात् वाल तप। ज्ञान-पूर्वक जो तप किया जाय, भगवान् ने उसी को मोक्ष-प्राप्ति का तप कहा है और अज्ञान के साथ किये गये तप को वाल-तप कहा है।

जिस तप करने वाले को यह पता नही, यह खयाल नही कि तप किसलिये और किस प्रकार किया जाता है, उसके तप से जीवो की हिंसा तो नही हो रही है। जो केवल शरीर को कष्ट देने मे ही,

शीत तप-भूख-प्यास आदि सहने मे ही तप मानता है और सोचता है कि मुझे अमुक-अमुक भौतिक लाभ होगे, महिमा पूजा होगी, दूसरे करते है, मुझे भी करना चाहिये, तो वह तप नही है।

लोग कहते है तप से कल्याण होता है, तो वह भी कहता है अन्न नही खाऊगा, कन्द-मूल-फल-फूल गाजर, मूली, सकरकन्द आदि खाऊगा। पहले जगलो मे ऋषि मुनि तप करते थे। वे कन्द मूल आदि खाकर तप करते थे। पर इस प्रकार तप करने वाला व्यक्ति यह नही सोचता कि फल-फूल, कन्द-मूल आदि मे कितने जीव है। तो शास्त्र वचन के अनुसार—"जो जीवे वि न जाणेई, अजीवे वि न जाणेई।" जो जीव को नही जानता, अजीव को नही जानता, जो बध को नही जानता, उस व्यक्ति का तप अज्ञान तप है।

सकाम तप भव–भ्रमणकारक

एक तप कामना पूर्ति के लिए किया जाता है। कुमारी कन्याए गणगोर का तप करती है, इस कामना को लिए कि उन्हे सुन्दर सुयोग्य पति मिले। सौभाग्यवती बहने भी इस लक्ष्य से एक प्रकार का तप करती है कि उनका सौभाग्य अमर रहे। आपने भी घर मे देवियो को इस प्रकार का तप करते देखा होगा। ऐसा जो तप है, वह काम तप है। जैसे चक्रवर्ती का तप बताया है, वह राज्य वृद्धि के लिए किया जाता है। इसी प्रकार अर्थ-प्राप्ति के लिए भी तप किया जाता है। तो इस प्रकार जो कामना पूर्ति के लिए, अर्थसिद्धि के लिए, दूसरो को हानि पहुचाने के लिए अथवा जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष का ज्ञान किये बिना अज्ञानपूर्ण तप किया जाता है, वह बाल-तप है। इस प्रकार का अज्ञान-तप वस्तुत मोक्ष-प्राप्ति का हेतु नही अपितु बन्ध का, भवभ्रमण का ही कारण होता है।

एक तो दीपावली के प्रसग पर आध्यात्मिक उद्देश्य को लेकर तप किया जाता है कि यह भगवान् महावीर के निर्वाण का दिन है—तो वह तप मोक्षमार्ग का साधन है, मोक्षमार्ग का साधक है। दूसरा व्यक्ति देखता है कि दीवाली के दिन तप करूगा, लक्ष्मी प्राप्त होगी, पौ-बारह-पच्चीस हो जायेंगे, तो वह भौतिक कामना पूर्ण तप है, अर्थ-तप है।

निष्काम तप ही मुक्ति प्रदाता

भगवान् महावीर ने कहा कि मोक्ष का साधन जो तप है, वह केवल मोक्ष-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर किया जाता है। इस प्रकार के तप के पीछे मुमुक्षु साधक की केवल यही एक भावना रहती है कि वह जन्म-जन्मान्तरो मे एकत्रित कर्म के कचरे को—कर्मों के भार को हटावे। कर्म का बोझा हटेगा तो दु ख हटेगा कि नही ? अवश्य हटेगा। तो इस प्रकार के निष्काम तप से सहज ही मे, बिना मागे, बिना कामना किये दु ख भी टल गया और तप का मूल्य भी मिल गया। तो यह निष्काम तप अच्छा रहा अथवा यह काम सिद्ध हो जाय इसलिए तेला करता हू'—इस प्रकार की भावना से छोटी सी वस्तु मागने के लिये तेला करना ठीक रहा ?

कष्टो का मूल कर्म-बन्ध

आत्मा पर कर्म का बध बहुत बढ गया, कर्म का कचरा अत्यधिक मात्रा मे एकत्रित हो गया। उसी के परिणामस्वरूप कौटुम्बिक कष्ट बना ही रहता है, पग-पग पर आर्थिक सकट आता है, शरीर व्याधियो से घिरा रहने के कारण शारीरिक पीडा बनी रहती है और मानसिक कष्ट से तन मन तिलतिला रहा है। इन सब प्रकार के दु खो से छुटकारा पाना है, तो निष्काम बुद्धि से तपश्चरण किया जाय। सभी प्रकार के दु खो का मूल कारण कर्मबन्ध है। अत यदि शाति चाहते है तो कर्मबध को काटने के लिए निष्काम बुद्धि से तप का आराधन किया जाय। आपने अनेक बार श्रीपाल का चरित्र सुना होगा, महिपाल का चरित्र सुना होगा। राज-पाट चला गया, कोढ हो गया पर घबराये नही। निष्काम भाव से तप किया तो अशुभ कर्म कट गये। अशुभ कर्मों के नष्ट हो जाने से महा भयकर कुष्ठ का रोग भी मिट गया, गया हुआ राज्य भी मिल गया और विरोधी भी सहयोगी बन गये।

कर्म कटे, सब कष्ट मिटे

प्रभु महावीर फरमाते हैं—"साधको ! जो भी साधना करो, वह कर्मों को काटने के लिए करो। इस कामना से मत करो कि मेरा अमुक रोग मिट जाय, अमुक दु ख मिट जाय। मुझे अमुक

वस्तु की प्राप्ति हो। इस प्रकार अलग-अलग पत्तो को मत पकडो। मूल को पकडो। सब रोगो का मूल है कर्म। वह कर्म का मूल कट जायगा, कर्म का मैल हट जायगा तो आत्मशुद्धि हो जायगी, अन्त -करण स्वत ही दिव्य ज्योति से जगमगा उठेगा। इस प्रकार ज्ञानपूर्वक किया गया तप व निष्काम तप होता है। निष्काम तप से कर्म नष्ट होते है।

तप के साथ सयम की अनिवार्यता

"भव कोडि सचिय कम्म, तवसा निज्जरिज्जइ।" उ ३०

अर्थात्—करोडो भवो के सचित कर्म तप के द्वारा नष्ट हो जाते है, काट दिये जाते है। कब काटे जा सकेंगे ? इसके लिए दो बाते चाहिये। पहली बात तो कल कह गया कि सयम सहित तप होना चाहिए। तप के साथ-साथ आस्रवो का निरोध नही किया जा रहा है, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदि दुष्प्रवृत्तियो का परित्याग नही किया गया, तो तपस्या जिस रूप मे फलवती होनी चाहिए, उस रूप मे फलवती नही होगी। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए आपने पाप को जलाने के लिए तपस्या की पर आस्रव भावो को नही रोका और तपस्या मे क्रोध आ गया, तो उस तपस्या के मोल को वह बीच मे ही खत्म कर देगा। पाप-पुज को जलाने के लिए तप जिस प्रकार एक चिनगारी है, उसी प्रकार तपस्या के फल को जलाने वाली, धर्म को जलाने वाली, पुण्य को जलाने वाली और धर्म के साधनो को जलाने वाली भी चिनगारी है, वह है क्रोध की चिनगारी। अत आस्रव द्वारो को अवरुद्ध कर निष्काम भाव से जो तप किया जाता है, वही वास्तविक तप है। वह तप दो प्रकार का है—बहिरग तप और अन्तरग तप।

बारह प्रकार का तप (छह बाह्य एव छह आभ्यन्तर)

तप के छ भेद बताये गये है अनशन, ऊणोदरी, वृत्तिसक्षेप अर्थात् भिक्षाचरी, रस-परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसलेख।

१ अनशन

अनशन—पहला तप अनशन अर्थात् आहार का त्याग करना।

यह बहिरंग तप है। खाना पूर्ण रूपेण नही छोड सके तो भगवान् ने दूसरा रास्ता बताया है।

२ ऊणोदर

ऊणोदर—दूसरा तप ऊणोदर है। एक व्यक्ति की जो खुराक है, जो आवश्यकता है, उससे कम खाना, कम पीना, कम कपडा पहनना—यह ऊणोदर तप है।

ऊणोदर तप के भी हमारे यहा दो भेद किये है। खाने सम्बन्धी ऊणोदर तप को तो करीव-करीव आप सभी जानते है पर इस दूसरी ऊणोदरी को आप नही जानते। ऊणोदरी के भगवान् ने दो भेद बताये हैं—द्रव्य ऊणोदरी और भाव ऊणोदरी। द्रव्य ऊणोदरी क्या है, इसकी आप जानकारी करे। जो भाई २५ बोल और नव तत्व-स्तोक जानते है, वे अर्थ की गहराई मे उतरें तो आनन्द भी आयेगा और आत्मा को ऊपर उठाने मे सहारा भी मिलेगा।

द्रव्य ऊणोदरी के दो भेद हैं। पहला भेद है आहार-ऊणोदरी। आहार ऊणोदरी का अर्थ यह है कि चाहे खाने की वस्तु हो, चाहे पीने की, उसे अपनी खुराक से कम खाना, कम पीना। मान लीजिये आपकी चार रोटी की खुराक है पर आपने २ रोटी ही खाई तो यह आहार-ऊणोदरी हो गई। चार रोटी की वजाय दो ही रोटी खाई तो इससे आपको कोई हानि भी नही होगी। पर आज आप के समाज मे ज्यादा खाने एव ज्यादा खिलाने की परिपाटी सी बन गई है। खाने वाला भी मनुहार से खाने का और खिलाने वाला भी मनुहार से खिलाने का आदी होता है। इस प्रकार की प्रवृत्ति को तप से विपरीत अधर्म की सज्ञा भी दी जाय तो अतिशयोक्ति नही होगी। क्योकि कम खाना धर्म है, तो आवश्यकता से अधिक खाना पाप ही कहा जायगा। एक ओर लाखो लोगो को भर पेट खाने को नही मिलता, वहा दूसरी ओर आप आवश्यकता से अधिक खा जावें अथवा मेहमानो को जबरदस्ती खिला दें और फिर पचे नही तो कहें-चूर्ण ले लीजिये—इसे पाप की सज्ञा नही दी जाय तो और क्या सज्ञा दी जाय ?

ऊणोदरी तप का दूसरा भेद है—उपकरण ऊणोदरी। इसे वहुत कम भाई जानते हैं। प्रत्येक भाई के लिये इसका जानना

लाभकारी है। उपकरण ऊणोदरी से आत्मा पर, मन पर मैल जमने का खतरा नही रहता। ज्यादा खाने से मैल जमता है पेट मे। खाना खाने पर सयम रखा जाय तो पेट मे मल नही जमेगा, उसी प्रकार उपकरण ऊणोदरी तप से मन पर, आत्मा पर परिग्रह रूपी मैल नही जमेगा। उपकरणो मे भगवान् ने श्रमण एव श्रमणियो के लिये ओघा, मु हपत्ती, पू जणी, पात्र एव चादर का विधान किया है। साधु ३ चद्दर तक रख सकता है। साध्वियो के लिये चार चद्दरो का विधान है। साध्विया दो हाथ विस्तार का कपडा स्थानक मे पहने रह सकती है, पर बाहर जाते समय उनके लिये ३ हाथ या ४ हाथ के चद्दर का विधान है।

हमारे लिये ३ चद्दरे बताई हैं, उनके स्थान पर यदि कोई साधु २ ही चद्दरे रखे, तो वह उसका उपकरण-उणोदरी तप होगा।

इसी प्रकार यदि गृहस्थ भी एक कपडा कम पहनेगा तो यह उसका उपकरण-ऊणोदरी तप होगा। एक कपडा कम पहनने का नियम करने से तपस्या का लाभ मिल गया, खर्चे मे भी कमी हो गई और मन भी हल्का रहेगा। दूसरो को देख कर मन मे तडपन नही होगी। एक भाई के पास कोट है, सूट-बूट है, बुशशर्ट है, शर्ट है, पजामा है, बनियान है पर वह यह सोच कर कि मुझे इनमे से एक दो कम कर देना है, यदि नियम लेकर कम कर दे, तो उसका मन पर कन्ट्रोल हो गया। मन पर कन्ट्रोल करना, मन को वश मे करना, तप है। यह उसका उपकरण ऊणोदरी तप हो गया।

सहज सुसाध्य तप—ऊणोदर—

तो इस प्रकार पहला तप है अनशन। अनशन का अर्थ है खाना-पीना छोडना। दूसरा तप है ऊणोदरी। अनशन करना हर एक के वश की बात नहीं, पर ऊणोदरी ऐसा तप है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कर सकता है। वृद्धो के लिये तो उणोदरी तप बहुत ही उपयोगी एव लाभप्रद है। यदि ज्यादा खा लिया तो बदहजमी होगी, ब्लड प्रेशर होगा। खून ने उछाला मारा तो, शरीर मे गर्मी बढी कि ब्लड-प्रेशर हुआ। चढे हुए पारे को और उबले हुए खून को ठीक करने के लिये डाक्टर की दवा की जरूरत नही। कम खावे,

हल्का खाना खावे, चिन्ता से सदा दूर रहे और भगवान् का ध्यान लगाकर, इधर-उधर की वात सोचना वन्द कर दे, तो ब्लड-प्रेशर होगा ही नही और यदि किसी को हो गया है तो ठीक हो जायगा। डाक्टर भी यही वताते है कि रेस्ट करो। डॉ की वात तो मान जाओगे। ब्लड-प्रेशर हो गया और डॉ को वताया, तो डाक्टर कहेगा "नमक मत खाओ। मेरी ये गोलियाँ लो।" तो डॉक्टर का कहा तो मान लोगे। पैसा भी दोगे, गोली भी खाओगे और नमक भी छोड दोगे, तो ऊणोदरी ही क्यो नही कर लेते? पैसा भी नही लगेगा, गोली भी नही खानी पडेगी, नमक भी नही छोडना पडेगा और तप भी हो जायगा। डॉ के कहने से छोडोगे तो तप नही होगा और पैसे भी लगेगे।

३ वृत्ति-सक्षेप

तीसरा तप है, वृत्ति-सक्षेप भिक्षाचरी। भिक्षाचरी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अभिग्रह पर चलती है। आप भी अभिग्रह कर सकते हैं कि १२ वजे के पश्चात् मिले तो नही खाऊगा, सुवह के समय मिलेगा तो खाऊगा, दोपहर मे नही खाऊगा, शाम को नही खाऊगा। इस तरह का समय वाध लिया, तो वह तप होगा। पर आजकल तो दिन भर खाने-पीने की प्रवृत्ति चलती रहती है। कई भाई तो दर्शन करने के लिये आते है, तो उस समय भी मु ह मे पान दवा कर आते हैं। उस समय मुझे तो कभी कभी खयाल हो जाता है कि कही इस भाई के मु ह मे गूमडा तो नही हो गया है। पूछते तो कहते हैं—"वावजी! मु ह मे और कुछ भी नही है, पान है।" पान खाया तो धर्म-स्थान मे तो मु ह साफ कर के आना चाहिये। आज कल लोग धर्म-सभा के नियमो की पर्वाह नही करते। उन्हें राज-सभा के नियमो की पर्वाह है, क्योकि वहा डण्डा है। इस तरह की वुरी आदत से एक तरफ तो धर्मसभा का अदव कायदा जाता और दूसरी ओर स्वास्थ्य खराव होता है। निरन्तर कुछ न कुछ खाते रहने से आतो को विश्राम न मिलने के कारण पायोरिया हो जाता है, वत्तीसी लगवानी होती है। आतें खराव हो जाती है। आतें खराव हो जाय तो स्वास्थ्य विगड जाता है और उसके वडे भयकर दुष्परिणाम भुगतने पडते है। यदि खान-पान समय पर एव परिमित

लाभकारी है। उपकरण ऊरणोदरी से आत्मा पर, मन पर मैल जमने का खतरा नही रहता। ज्यादा खाने से मैल जमता है पेट मे। खाना खाने पर सयम रखा जाय तो पेट मे मल नही जमेगा, उसी प्रकार उपकरण ऊणोदरी तप से मन पर, आत्मा पर परिग्रह रूपी मैल नही जमेगा। उपकरणो मे भगवान् ने श्रमण एव श्रमणियो के लिये ओघा, मु हपत्ती, पू जणी, पात्र एव चादर का विधान किया है। साधु ३ चद्दर तक रख सकता है। साध्वियो के लिये चार चद्दरो का विधान है। साध्विया दो हाथ विस्तार का कपडा स्थानक मे पहने रह सकती है, पर वाहर जाते समय उनके लिये ३ हाथ या ४ हाथ के चद्दर का विधान है।

हमारे लिये ३ चद्दरे बताई है, उनके स्थान पर यदि कोई साधु २ ही चद्दरे रखे, तो वह उसका उपकरण-उणोदरी तप होगा।

इसी प्रकार यदि गृहस्थ भी एक कपडा कम पहनेगा तो यह उसका उपकरण-ऊणोदरी तप होगा। एक कपडा कम पहनने का नियम करने से तपस्या का लाभ मिल गया, खर्चे मे भी कमी हो गई और मन भी हल्का रहेगा। दूसरो को देख कर मन मे तडपन नही होगी। एक भाई के पास कोट है, सूट-बूट है, बुशशर्ट है, शर्ट है, पजामा है, वनियान है पर वह यह सोच कर कि मुझे इनमे से एक दो कम कर देना है, यदि नियम लेकर कम कर दे, तो उसका मन पर कन्ट्रोल हो गया। मन पर कन्ट्रोल करना, मन को वश मे करना, तप है। यह उसका उपकरण ऊणोदरी तप हो गया।

सहज सुसाध्य तप—ऊणोदर—

तो इस प्रकार पहला तप है अनशन। अनशन का अर्थ है खाना-पीना छोडना। दूसरा तप है ऊणोदरी। अनशन करना हर एक के वश की वात नहीं, पर ऊणोदरी ऐसा तप है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कर सकता है। वृद्धो के लिये तो ऊणोदरी तप वहुत ही उपयोगी एव लाभप्रद है। यदि ज्यादा खा लिया तो वदहजमी होगी, ब्लड प्रेशर होगा। खून ने उछाला मारा तो, शरीर मे गर्मी वढी कि ब्लड-प्रेशर हुआ। चढे हुए पारे को और उबले हुए खून को ठीक करने के लिये डाक्टर की दवा की जरूरत नही। कम खावे,

हल्का खाना खावें, चिन्ता से सदा दूर रहे और भगवान् का ध्यान लगाकर, इधर-उधर की वात सोचना वन्द कर दे, तो व्लड-प्रेशर होगा ही नही और यदि किसी को हो गया है तो ठीक हो जायगा। डाक्टर भी यही वताते है कि रेस्ट करो। डॉ की वात तो मान जाओगे। व्लड-प्रेशर हो गया और डॉ को वताया, तो डाक्टर कहेगा "नमक मत खाओ। मेरी ये गोलियाँ लो।" तो डॉक्टर का कहा तो मान लोगे। पैसा भी दोगे, गोली भी खाओगे और नमक भी छोड दोगे, तो ऊणोदरी ही क्यो नही कर लेते? पैसा भी नही लगेगा, गोली भी नही खानी पडेगी, नमक भी नही छोडना पडेगा और तप भी हो जायगा। डॉ के कहने से छोडोगे तो तप नही होगा और पैसे भी लगेगे।

३ वृत्ति-सक्षेप

तीसरा तप है, वृत्ति-सक्षेप भिक्षाचरी। भिक्षाचरी द्रव्य, क्षत्र, काल, भाव के अभिग्रह पर चलती है। आप भी अभिग्रह कर सकते हैं कि १२ वजे के पश्चात् मिले तो नही खाऊगा, सुवह के समय मिलेगा तो खाऊगा, दोपहर मे नही खाऊगा, शाम को नही खाऊगा। इस तरह का समय वाध लिया, तो वह तप होगा। पर आजकल तो दिन भर खाने-पीने की प्रवृत्ति चलती रहती है। कई भाई तो दर्शन करने के लिये आते हैं, तो उस समय भी मु ह मे पान दवा कर आते हैं। उस समय मुझे तो कभी कभी खयाल हो जाता है कि कही इस भाई के मु ह मे गूमडा तो नहीं हो गया है। पूछते तो कहते है—"वावजी! मु ह मे और कुछ भी नही है, पान है।" पान खाया तो धर्म-स्थान मे तो मु ह साफ कर के आना चाहिये। आज कल लोग धर्म-सभा के नियमो की पर्वाह नही करते। उन्हें राज-सभा के नियमो की पर्वाह है, क्योकि वहा डण्डा है। इस तरह की वुरी आदत से एक तरफ तो धर्मसभा का अदव कायदा जाता और दूसरी ओर स्वास्थ्य खराव होता है। निरन्तर कुछ न कुछ खाते रहने से आतो को विश्राम न मिलने के कारण पायोरिया हो जाता है, वत्तीसी लगवानी होती है। आते खराव हो जाती हैं। आतें खराव हो जाय तो स्वास्थ्य विगड जाता है और उसके वडे भयकर दुष्परिणाम भुगतने पडते है। यदि खान-पान समय पर एव परिमित

मात्रा मे किया जाय तो कोई बीमारी ही नही होगी। क्या आप पर्वाधिराज पर्यूषण के प्रसग पर यह सकल्प करने के लिये तैयार है कि दिन मे अमुक समय से अधिक तथा अमुक-अमुक समय मे नही खायेंगे।

तो तीसरा तप हो गया भिक्षाचरी—वृत्ति सक्षेप। वृत्ति सक्षेप का मतलब यह है कि कही मेहमान बनकर गये, तो दस-बीस तरह की चीजे थाली मे आती है। घर मे नपी-तुली चीजे मिलती है, पर मेहमान बनकर जाते है, तो तरह-तरह के शाक, आचार, मुरब्बा, नमकीन, रोटी, मिठाइया, चावल आदि कई चीजे थाली मे आती है। आज के जमाने का आदमी इतना अधिक लिहाजू बन गया है कि अपने पेट का खयाल नही करता। वर्षा की ऋतु ऐसी है कि इसमे तो बहुत खयाल रखने की आवश्यकता है। हमारे ही तजुर्बे की बात कहू कि हम भी कभी थोडा सा ध्यान नही रखते है तो पेट मे खराबी हो जाती है। तो आपको सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए। दया की। मिठाई भी बनी है, इसलिये खूब हाथ साफ करें, ऐसा मत सोचिये। याद रखिये कि पुराने जमाने के आदमियो की पाचन-शक्ति बडी तेज होती थी और कई गाँवो मे 'मण के तेरिये' होते थे। 'मण के तेरिये' का मतलब है कि मण भर घी को तेरह साथी मिलकर पी जाते। आज के समय मे घी पीकर पचाना तो दूर रहा, यदि थोडा सा दूध भी ज्यादा ले लिया तो लोटा लेकर फिरते रहेगे। आज के लोगो की आतो मे वह शक्ति नही है। अत भोजन के समय मन को वश मे रखेंगे तो आराम पायेंगे और सामने वाला भी देखेगा कि भूखे घर का भुखमरा नही है। मेहमान बनकर गये और ५६ के दुष्काल के भूखे व्यक्ति की तरह मिठाई पर हाथ साफ करना शुरू कर दिया, तो वह सामने वाला सोचेगा कि—इसे घर मे खाने को नही मिलता है।

तो जो भाई दया कर रहे है, उन्हे मिष्टान्न आदि षड्रस सुस्वादु भोजन से नही, अपितु भगवद् भजन से, भगवद् भक्ति से प्यार करना चाहिये।

खिलाने वालो के मन मे तो प्यार है, चाव है कि स्वधर्मी-बन्धुओ ने दया की है। इस प्रकार का अवसर बार-बार नही आता

इसलिये इन्हे खूब स्वादिष्ट भोजन खिलावे। पर खाने वालो के प्यार का रूप इस तरह का होना चाहिये कि अन्य बन्धुओ ने उपवास किया है, अन्न छोडा है तो हम सावद्य-त्याग के साथ कम से कम ऊणोदरी व्रत तो करे और अपना पूरा का पूरा समय भगवद्भक्ति मे लगा दे।

रसपरित्याग

चौथा तप है 'रस-परित्याग'। प्रतिदिन घर मे अथवा बाहर बीस तरह की चीजे खाने-पीने को मिलती है। मन और जिह्वा के स्वाद पर अकुश रखकर प्रतिदिन उपभोग मे आने वाली उन बीस प्रकार की चीजो मे से पाच चीजो को छोड देना, कोई रस त्यागना, यह रस-परित्याग तप है। हमारे यहाँ जीवन-साधना मे प्रतिदिन उपभोग मे आने वाले द्रव्यो के त्याग की परिपाटी का बडा महत्व है। द्रव्य-त्याग रूपी रस-परित्याग तप महान् निर्जरा का साधन है। आजकल अक्सर यह देखने मे आता है कि द्रव्य-त्याग करने वाले भाई सचित्त-त्याग करेंगे, द्रव्यो का त्याग करेंगे, तो दिन भर मे यद्यपि कुल मिलाकर दश द्रव्य ही लगते हैं, तथापि २५ द्रव्य खुले रखेंगे। वस्तुत यह द्रव्यत्याग का सही स्वरुप नही है। दिन भर मे जितने द्रव्य उपभोग मे आते हैं, उनमे से कम से कम एक-दो द्रव्य कम करके त्याग करना सही अर्थ मे द्रव्य-त्याग कहा जायगा। जो भाई १४ नियमो को धारण करते है, वे इस बात का ध्यान रखें कि प्रतिदिन उपभोग मे आने वाले द्रव्यो मे से कम से कम एक दो द्रव्य का त्याग तो अवश्य करें। रस-परित्याग तप का लाभ तभी होगा, जब कि षड्रस मे से एक दो रस का परित्याग करेंगे। दूध भी पी लिया, मिठाई भी खा ली और नीबू आया तो अम्ल रस का भी सेवन कर लिया—यह तो रस-परित्याग तप का कोई तरीका नही। खटाई अच्छी लगती है और खटाई के साथ दो रोटी खाने वाला चार रोटी खा लेता है। पर वास्तव मे खटाई है तो हानिप्रद ही। मैं बचपन मे पढता था, उस समय समदडी की ओर के एक भाई आये। वे कहा करते थे —

"खाड राड ने तीजी कैरी, ए मर्दां का तीनों वैरी"

जिस नौजवान को सुखमय जीवन जीना हो, दिशावर जाकर

आराम से रहना और अर्थोपार्जन कर आना हो, उसे इन तीन बातो से बचना चाहिये, इन तीनो चीजो से किसी प्रकार की लाग-लपेट नही रखनी चाहिये। एक तो वह सदा मिठाई से बचा रहे। दूसरे इन परियो से बचा रहे। बम्बई मे घूम रहा है, तो जो तितलियाँ सी रग विरगी घूम रही हो, उनसे परहेज रखे। यदि वह युवतियो से नही बचेगा, तो गया है कमाने के लिये, पर गाठ का ही गवा कर आयेगा। अमेरिका गया और इनसे बचकर नही रहा तो अपना सर्वस्व खोकर आवेगा। जयपुर के कई भाई ऐसे हैं कि महीने मे उनके चार चक्कर विदेशो के, अमेरिका के हो जाते है। उन्हे इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

तीसरी चीज, जिससे बचे रहना चाहिये, वह है कैरी। स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह इन तीनो चीजो से बचता रहे। अपने मन पर इन तीनो बातो के विषय मे अकुश रखे।

बुढापे से बचने का उपाय

इस प्रकार की मर्म को छूने वाली बात कोई कहता, तो वह मुझे बचपन से ही बडी अच्छी लगती थी और मैं उसे अन्तर्मन से पकड लेता था। सम्वत् १९८८ मे (हमने) रामपुरा मे चातुर्मास किया। वहाँ श्रावक केसरीमलजी बत्तीस सूत्रो के जानकार थे। अच्छे-अच्छे सत उनके पास ज्ञान-चर्चा करने आया करते थे। वहा उन दिनो एक बुजुर्ग गुरा थे। वे कहावते कहा करते, जो बडी ही सारगर्भित और काम की होती थी। उनमे से एक कहावत थी कि अगर आदमी को बिना बुढापा आये ही जीना है, तो वह आहार, आसन और निद्रा के सम्बन्ध मे पूर्ण दृढता रखे। वह कहावत इस प्रकार है—

आहार दृढ आसन दृढ, दृढ निद्रा जो होय।
गुरु कहे रे बालका!, मरे पण बूढा न होय।

मेरे मन के ऊपर बडा प्रभाव हुआ इसका कि ये छोटी-छोटी कहावते कितनी हितकर है। जिसका आहार पर दृढ अकुश है, आसन सुदृढ है और निद्रा पर दृढ सयम है, वह व्यक्ति आयु पूर्ण होने

पर मरेगा तो निश्चय ही पर वह अन्तिम उच्छ्वास तक बुढापा नही भोगेगा, हाय-हाय नही करेगा और उसे ठसकते-ठसकते नही चलना पडेगा। अन्तिम क्षण तक स्वस्थ बने रहने के लिये आहार, आसन और निद्रा पर दृढ अकुश रखना परमावश्यक है। पर आज के नवयुवको का इन तीनो पर कोई अकुश नही, वे प्राय निरकुश ही चलते रहते हैं। आजकल के अधिकाश नवयुवक सोचते हैं कि उनके ये ही तो खाने-पीने के दिन हैं। कही दुनिया की कोई ऐसी चीज बची न रह जाय, जिसका जायका, जिसका स्वाद वे ले न सकें। ससार की सब चीजें चख लेनी चाहिये। कुछ नौजवानो ने इस प्रकार का गलत खयाल बना रखा है। इस प्रकार की विचारधारा के कुछ साथी आप लोगो को मिलते होगे। मैं जो यह कह रहा हू, यह मेरा अनुमान गलत तो नही है ?

इस प्रकार के वातावरण मे प्रत्येक जैन बन्धु अपने जीवन मे यदि प्रारम्भ से ही रस-परित्याग अथवा द्रव्य-त्याग की तपस्या को अपना ले, तो वह सर्वभक्षी विचार धारा के युवको के कुचक्र से बचा रहेगा, स्वस्थ भी रहेगा और उसे इस परित्याग-तपश्चर्या का भी लाभ प्राप्त होगा। इस तरह यह परित्याग तप सभी दृष्टियो से लाभप्रद है अत प्रत्येक भाई को चाहिये कि वह प्रतिदिन छह रसो मे से कम से कम एक रस का भी त्याग करे तो यह भी एक तपस्या होगी।

५ कायक्लेश तप–

पाचवा तप है कायक्लेश–यदि शरीर को किसी प्रकार का थोडा कष्ट हो तो उसे धैर्यपूर्वक सहन करे, कष्ट की परवाह न करे। अभ्यास के द्वारा अपने मन को वश मे रखे, भजन, स्मरण, ध्यान आदि के माध्यम से प्रभु-भक्ति मे मन को एकाग्र कर कष्ट को निर्विकार भाव से सहन किया जाय तो यह कायक्लेश तप हुआ। सामायिक करने वाले भाई सामायिक करते हैं पर आसन पर स्थिर नही रहते। कम से कम सामायिक के समय मे एक घडी तक तो एक आसन से बैठे रहना चाहिये। पचास-पचास वर्ष जिनको सामायिक करते हो गये, वे भी अभी तक इतना अभ्यास नही कर पाये कि एक घन्टे तक एक आसन से बैठें। सामायिक कोई साधारण वस्तु नही,

आराम से रहना और अर्थोपार्जन कर आना हो, उसे इन तीन वातो से वचना चाहिये, इन तीनो चीजो से किसी प्रकार की लाग-लपेट नही रखनी चाहिये। एक तो वह सदा मिठाई से वचा रहे। दूसरे इन परियो से वचा रहे। वम्वई मे घूम रहा है, तो जो तितलियाँ सी रग विरगी घूम रही हो, उनसे परहेज रखे। यदि वह युवतियो से नही वचेगा, तो गया है कमाने के लिये, पर गाठ का ही गवा कर आयेगा। अमेरिका गया और इनसे वचकर नही रहा तो अपना सर्वस्व खोकर आवेगा। जयपुर के कई भाई ऐसे है कि महीने मे उनके चार चक्कर विदेशो के, अमेरिका के हो जाते है। उन्हे इस वात का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

तीसरी चीज, जिससे वचे रहना चाहिये, वह है कैरी। स्वस्थ और सुखी जीवन के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह इन तीनो चीजो से वचता रहे। अपने मन पर इन तीनो वातो के विषय मे अकुश रखे।

बुढापे से बचने का उपाय

इस प्रकार की मर्म को छूने वाली वात कोई कहता, तो वह मुझे वचपन से ही वडी अच्छी लगती थी और मैं उसे अन्तर्मन से पकड लेता था। सम्वत् १९८८ मे (हमने) रामपुरा मे चातुर्मास किया। वहाँ श्रावक केसरीमलजी वत्तीस सूत्रो के जानकार थे। अच्छे-अच्छे सत उनके पास ज्ञान-चर्चा करने आया करते थे। वहा उन दिनो एक वुजुर्ग गुरा थे। वे कहावतें कहा करते, जो वडी ही सारगर्भित और काम की होती थी। उनमे से एक कहावत थी कि अगर आदमी को विना वुढापा आये ही जीना है, तो वह आहार, आसन और निद्रा के सम्वन्ध मे पूर्ण दृढता रखे। वह कहावत इस प्रकार है—

> आहार दृढ आसन दृढ, दृढ निद्रा जो होय।
> गुरु कहे रे वालका !, मरे पण वूढा न होय।

मेरे मन के ऊपर वडा प्रभाव हुआ इसका कि ये छोटी-छोटी कहावते कितनी हितकर है। जिसका आहार पर दृढ अकुश है, आसन सुदृढ है और निद्रा पर दृढ सयम है, वह व्यक्ति आयु पूर्ण होने

पर मरेगा तो निश्चय ही पर वह अन्तिम उच्छ्वास तक बुढापा नही भोगेगा, हाय-हाय नही करेगा और उसे ठसकते-ठसकते नही चलना पडेगा। अन्तिम क्षण तक स्वस्थ बने रहने के लिये आहार, आसन और निद्रा पर दृढ अकुश रखना परमावश्यक है। पर आज के नवयुवको का इन तीनो पर कोई अकुश नही, वे प्राय निरकुश ही चलते रहते हैं। आजकल के अधिकाश नवयुवक सोचते हैं कि उनके ये ही तो खाने-पीने के दिन हैं। कही दुनिया की कोई ऐसी चीज बची न रह जाय, जिसका जायका, जिसका स्वाद वे ले न सकें। ससार की सब चीजे चख लेनी चाहिये। कुछ नौजवानो ने इस प्रकार का गलत खयाल बना रखा है। इस प्रकार की विचारधारा के कुछ साथी आप लोगो को मिलते होगे। मैं जो यह कह रहा हू, यह मेरा अनुमान गलत तो नही है ?

इस प्रकार के वातावरण मे प्रत्येक जैन बन्धु अपने जीवन मे यदि प्रारम्भ से ही रस-परित्याग अथवा द्रव्य-त्याग की तपस्या को अपना ले, तो वह सर्वभक्षी विचार धारा के युवको के कुचक्र से बचा रहेगा, स्वस्थ भी रहेगा और उसे इस परित्याग-तपश्चर्या का भी लाभ प्राप्त होगा। इस तरह यह परित्याग तप सभी दृष्टियो से लाभप्रद है अत प्रत्येक भाई को चाहिये कि वह प्रतिदिन छह रसो मे से कम से कम एक रस का भी त्याग करे तो यह भी एक तपस्या होगी।

५ कायक्लेश तप–

पाचवा तप है कायक्लेश--यदि शरीर को किसी प्रकार का थोडा कष्ट हो तो उसे धैर्यपूर्वक सहन करे, कष्ट की परवाह न करे। अभ्यास के द्वारा अपने मन को वश मे रखे, भजन, स्मरण, ध्यान आदि के माध्यम से प्रभु-भक्ति मे मन को एकाग्र कर कष्ट को निर्विकार भाव से सहन किया जाय तो यह कायक्लेश तप हुआ। सामायिक करने वाले भाई सामायिक करते हैं पर आसन पर स्थिर नही रहते। कम से कम सामायिक के समय मे एक घडी तक तो एक आसन से बैठे रहना चाहिये। पचास-पचास वर्ष जिनको सामायिक करते हो गये, वे भी अभी तक इतना अभ्यास नही कर पाये कि एक घन्टे तक एक आसन से बैठें। सामायिक कोई साधारण वस्तु नही,

इसका बहुत बडा महत्व है । सामायिक वह महान् साधना है, जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तरो के सचित कर्म-मल को नष्ट किया जा सकता है । आसन विजय, दृष्टि विजय और मन विजय-ये तीनो प्रकार की साधनाए सामायिक मे परमावश्यक हैं । मन को एकाग्र करने के लिये एक घटे तक एक आसन से बैठकर अथवा खडे रह कर चिन्तन किया जाय । चिन्तन करते समय यदि खुजली चले तो उसे नही खुजाना भी तप है । 'इच्छानिरोधस्तप" अर्थात् इच्छा का निरोध करना तप है । तप के इस लक्षण के अनुसार खुजलाने की इच्छा पर अकुश रखना भी तप हो गया ।

दृष्टि-विजय भी आसन विजय के समान तप है । अधिकाश बच्चो को, कतिपय युवको और कुछ वृद्धो तक को बार-बार इधर-उधर ताकने की आदत होती है । तो इस प्रकार का सकल्प करना कि इधर-उधर नही ताकू गा, एक आसन से बैठा रहूगा, चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करू गा-यह भी तप की परिभाषा मे आता है । लु चन आदि जो साधु-साध्वियो का तप है, वह भी कायक्लेश तप है ।

६ *प्रतिसलेखना*

छठा तप है प्रतिसलेखना । मन को एकाग्र करना, इन्द्रियो को वश मे रखना, कषायो पर नियत्रण रखना और समय-समय पर जो वृत्तियाँ उच्छृखल-बेकाबू हो जाती है, उन पर अकुश रखना-यह प्रतिसलेखना तप है ।

बाह्य एव आभ्यन्तर तप के साहचर्य से ही सिद्धि

यह छह प्रकार की तपश्चर्याए शारीरिक तपस्याए हैं । जिस तप का शरीर पर असर पडे, वह शारीरिक तप है और जिस तप का आत्मा पर एव मन पर असर पडे, वह अभ्यन्तर तप है । शारीरिक और आभ्यन्तर---ये दोनो प्रकार के तप साथ-साथ होने चाहिये । केवल एक ही की साधना से वाञ्छित फल नही मिलने वाला है । उदाहरण के रूप मे ले लीजिये-एक भाई ने उपवास किया, तो यह उस भाई का शारीरिक तप हो गया । इस शारीरिक तप के साथ-साथ उसे स्वाध्याय, ध्यान, प्रभुस्मरण और बारह भावनाओ के चिन्तन-मनन से

रूप मे आन्तरिक तप—आभ्यन्तर तप भी अनिवार्य रूपेण करना चाहिये । पर व्याख्यान समाप्त होने पर यह देख कर कि महाराज चले गये, वह भाई बिस्तर फैला कर सो जाय, तो उसे इस प्रकार के एकागीन शारीरिक तप से वास्तविक लाभ नही होगा ।

शारीरिक तप से, जिस प्रकार का तप होगा, उस सीमा तक शरीर का मैल–शरीर का विकार गलेगा । जैसे गठिया की बीमारी है, और भी अनेक प्रकार की बीमारिया है, वे उपवास से ठीक होती हैं । तो शारीरिक तप से जिस प्रकार तन का रोग नष्ट होता है, उसी प्रकार आभ्यन्तर तप से आत्मा का कर्म-मैल, मन के विकार नष्ट होते हैं । आभ्यन्तर तप भी छ प्रकार का है ।

७ प्रायश्चित्त

पहला आभ्यन्तर तप है–प्रायश्चित्त । ज्ञात अथवा अज्ञात रूप मे किसी प्रकार की गलती हो गई हो तो अपनी उस गलती को बडो के सम्मुख, गुरु के समक्ष बिना कोई तथ्य छुपाये विशुद्ध मन से स्पष्ट रूप मे रखे और अपनी उस गलती के लिये–अपराध के लिये उनसे प्रायश्चित्त ले कर मन मे पश्चात्ताप करे एव यह दृढ सकल्प करे कि भविष्य मे वह इस प्रकार का अपराध अथवा इस प्रकार की गलती कभी नही करेगा । यह प्रायश्चित्त नामक आभ्यन्तर तप की दृष्टि से पहला और बाह्य एव आभ्यतर-इन दोनो प्रकार के तपो की दृष्टि से सातवा तप है ।

सही रूप मे प्रायश्चित्त तभी होगा जब कि गलती करने वाला व्यक्ति मन मे यह विचार करे कि वास्तव मे उसने गलती करके बुरा काम किया, उसे इस प्रकार की गलती नही करनी चाहिए थी । अपनी गलती को गुरुजनो के समक्ष रखते समय यदि कोई व्यक्ति अपनी गलती के किसी भी अश को छुपा कर रखता है, तो वह प्राय-श्चित्त न होकर एक और नई गलती करना हो जायगा । नीति भी कहती है कि माता, पिता, गुरु और भगवान्–इनके सामने अपने मन को खोल कर रख देना चाहिये । इन चारो के समक्ष मन मे किसी प्रकार का विकार, किसी प्रकार का दुराव अथवा छुपाव नही रखना चाहिये । दुनिया मे कहावत है–एक घर तो डाकिनी भी टालती है ।

अत किसी भी प्रकार का अपराध हो जाने पर गुरुजनो के समक्ष जा कर उस अपराध के लिए तत्काल सच्चे मन से प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये, मन को साफ कर लेना चाहिये। अन्य किसी स्थान पर किया गया पाप धर्मस्थान मे पहुच कर साफ कर लिया जाता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति धर्मस्थान मे आकर भी पाप करता है, तो उसका वह पाप कही कभी साफ नही होने वाला है, क्योकि धर्मस्थान मे किये गये पाप को साफ करने वाला कोई अन्य स्थान ससार मे है ही नही। एक नीतिकार ने भी कहा है —

> अन्यस्थाने कृत पाप, धर्मस्थाने विमुच्यते।
> धर्मस्थाने कृत पाप, वज्रलेपो भविष्यति।

तो यह सभी प्रकार के पापो को तत्काल नष्ट कर देने वाला प्रायश्चित्त नामक सातवा तप हुआ।

८ विनय

आठवा तप है—विनय। अपने से वडो का, वयोवृद्धो, ज्ञान-वृद्धो का सदा सम्मान करना, गुरुजनो का सर्वदा आदर करना, यह विनय नामक तप है। विनय तप के अहर्निश आराधन से, साधारण से साधारण साधक भी गुरुजनो का अनन्य प्रीतिपात्र–कृपापात्र वन कर अन्ततोगत्वा सर्वगुण सम्पन्न हो ज्ञान का भण्डार और महान् साधक वन जाता है।

९ वैयावृत्य

नौवा तप है—वैयावृत्य। गुरु, वृद्ध, ग्लान, तपस्वियो और ज्ञानियो की सदा जागरूक रहकर, समय पर अग्लान–अम्लान भाव से सेवा करना, यह वैयावृत्य नामक महान् तप है। वैयावृत्य के द्वारा होने वाली महती कर्मनिर्जरा और पुण्योपलब्धि के अनेक उदाहरण शास्त्रो मे पढने और सुनने को मिलते हैं। भगवान् ऋषभदेव के जीव ने जीवानन्द वैद्य के भव मे कुष्ठरोग-ग्रस्त महामुनि की वैयावृत्य कर तथा वसुदेव के जीव ने नन्दिषेण के भव मे वैयावृत्य का अप्रतिम व्रत ग्रहण कर कितना महान् पुण्य अर्जित किया, यह आपने अनेक बार सुना है। इसलिये वैयावृत्य के सम्बन्ध मे इस समय विशेष रूप मे

कहने की आवश्यकता नही। आप लोग भी उपयोग रख कर वैया-वृत्य के माध्यम से महान् पुण्य का सचय कर सकते हैं।

तपस्या के दिनो मे किसी भाई को वमन भी हो सकता है। इस प्रकार की परिस्थिति के सम्बन्ध मे स्वयसेवको को, सेवा की रुचि रखने वालो को और व्यवस्था करने वालो को भी खयाल रखना चाहिये। धर्माराधन अथवा तपश्चरण करने वाले किसी भाई का धर्मस्थान मे किसी भी समय जी मचलाये और वह इधर-उधर वमन कर दे, तो इससे धर्मस्थान मे गन्दगी भी बढेगी, आने जाने वाले भाइयो के पैर भी सनेंगे और जीव-जन्तु भी पैदा होगे। जो व्यवस्था करने वाले हैं, उन्हे इस प्रकार की परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए धर्मस्थान मे किसी छोटे-मोटे वर्तन मे राख का ध्यान चाहिये। इससे न किसी का पैर ही भरेगा, न गन्दगी ही बढेगी और न जीव-जन्तु ही पैदा होगे। यह काम सेवाभावी व्यक्ति कर सकते हैं। वे इस प्रकार की सेवावृत्ति से तपश्चर्या के तुल्य ही महान् लाभ अर्जित कर सकते हैं। स्थानाग सूत्र के दसवें स्थान मे दस प्रकार की सेवा—वैयावृत्य को महान् निर्जरा का साधन बताया गया है।

कोई भी व्यक्ति, कोई साधक सच्चे अर्थ मे तभी सही सेवा कर सकेगा जबकि उसे सेवा के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान होगा और उसे यह विश्वास होगा कि वैयावृत्य वस्तुत एक महान् कल्याणकारी एव पवित्र कर्त्तव्य है।

१० स्वाध्याय

दसवा तप है— स्वाध्याय। कोई भी व्यक्ति सेवा तभी करेगा जबकि सेवा का ज्ञान होगा। सेवा का ज्ञान कैसे होगा ? सेवा का ज्ञान स्वाध्याय से होगा। जिनको सेवा का ज्ञान नही है, उन्हे नियमित रूप से स्वाध्याय करने पर ही सेवा का ज्ञान होगा और सेवा का ज्ञान होने पर सेवा का लाभ प्राप्त हो सकेगा। स्वाध्याय से जीव, अजीव आदि तत्वो का, पुण्य-पाप का, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान होता है। कोई भी साधक ज्ञान होने पर ही, साधनापथ पर

अग्रसर हो सकता है। अत स्वाध्याय ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन और महान् तप माना गया है।

११ ध्यान

ग्यारहवा तप है—ध्यान। ध्यान से चित्त एकाग्र होता है। चित्त के एकाग्र होने पर इन्द्रिय-दमन, आस्रवनिरोध और निर्जरा आदि अचिन्त्य आध्यात्मिक लाभ होते हैं। ध्यान से आर्तध्यान, रौद्रध्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का उपशमन एव अन्ततोगत्वा क्षय होता है। इसलिये ध्यान को महा लाभकारी आभ्यन्तर तप माना गया है। प्रत्येक मुमुक्षु को प्रतिदिन नियमित रूप से ध्यान नामक ग्यारहवे तप का आराधन करना चाहिये।

१२ व्युत्सर्ग

बारहवा तप है—व्युत्सर्ग अथवा अतिथिसविभाग। गृहस्थ तप कर लेता है पर यदि वह तप के साथ-साथ दान नही करता, तो तप से जो तेजस्विता उसमे आनी चाहिये, वह पूरी नही आ पाती। तप के साधन हैं सयम और दान। गृहस्थ के तप के साथ यदि दान नही है तो वह उतना शोभास्पद नही होता, जितना कि होना चाहिये। इसी लिये आपके पूर्वजो ने तप के पीछे दान की भावना रखी थी। पर आज उस दान का स्वरूप विकृत होकर और का और हो गया है। बहन-बेटिया अठाई का तप करती हैं तो अडोस-पडोस के लोगो को और सगे-सम्बन्धियो आदि को बुलाया जाता है तथा उन्हें स्वादिष्ट षड्रस भोजन कराया जाता है। पारण के दिन तपस्विनी बहिन तो पीयेगी थोडा सा दूध और हलवा बनाया जायगा कडाही भर कर। वास्तव मे यह तपस्या का और अतिथिसविभाग का एक प्रकार का विकार है।

तपश्चरण से तीर्थंकर—

इस प्रकार भगवान् ने ६ प्रकार के बाह्य तप और ६ ही प्रकार के आभ्यन्तर तप—यो कुल मिलाकर तप के बारह भेद बताये हैं। बारह प्रकार के इस तप की जो साधक विशुद्ध भाव से आराधना करेगा, तो क्या होगा, इस सम्बन्ध मे कवि ने कहा है —

भविक जन कर लो कुछ अभ्यास ।
अजब शक्ति है तप मे भैया, कर लो कुछ अभ्यास ।। भविक,
तन, मन, वाणी के माध्यम से, तप का करो प्रकाश ।
भाव से कर लो कुछ अभ्यास,
भविक जन कर लो कुछ अभ्यास ।।

यदि भवाटवी की विकट घाटियो को सुगमतापूर्वक पार करने के लिये सिर पर लदे पाप के दुर्वह अतुल भार को हलका करना है, यदि भवसागर मे भवरजाल से छुटकारा पाना है, यदि जन्म-मरण के पाश से सदा सर्वदा के लिये मुक्त होना है, तो इस बारह प्रकार के तप की आराधना करो । यदि तप का अनवरत अभ्यास किया जाय तो साधक के अन्तर मे अचिन्त्य, अद्भुत एव अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति का अजस्र स्रोत प्रकट होगा और निश्चित रूप से वह साधक एक न एक दिन अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो सकेगा । तप की महत्ता और उपयोगिता के बारे मे जितना भी कहा जाय, वह थोडा है । वास्तव मे तप की महिमा का कोई पारावार नही । तप के प्रभाव से घोरातिघोर सकट के घने काले बादल क्षण भर मे ही विलीन हो जाते हैं । तपश्चरण के द्वारा ही सब तीर्थंकरो ने ज्ञानावरण आदि घातिक कर्मो का समूल नाश कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र की उपलब्धि की और ससार के अनन्त भव्य प्राणियो को ससार सागर से पार करने वाले धर्मतीर्थ की स्थापना की । सक्षेप मे कहा जाय तो कोई ऐसी भौतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धि नही, जिसे कि तप के द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता हो । और तो और तप के प्रताप से अनन्त, अक्षय, अव्याबाध सौख्यनिधान मोक्षपद भी सहज ही सद्य-सुलभ हो जाता है ।

परम पावन पर्वाधिराज के इन पवित्र मगलमय दिनो मे जो श्रद्धालु भक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार इन बारह प्रकार के बाह्य एव आभ्यन्तर तपो का विशुद्ध अन्त करण से आराधन करेंगे, वे निश्चय ही इहलोक एव परलोक मे सदा कल्याण और परमानन्द के भागी बनेंगे ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

बालोतरा, दिनाक २५-८-७६

अग्रसर हो सकता है। अत स्वाध्याय ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन और महान् तप माना गया है।

११ ध्यान

ग्यारहवा तप है—ध्यान। ध्यान से चित्त एकाग्र होता है। चित्त के एकाग्र होने पर इन्द्रिय-दमन, आस्रवनिरोध और निर्जरा आदि अचिन्त्य आध्यात्मिक लाभ होते हैं। ध्यान से आर्तध्यान, रौद्रध्यान, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का उपशमन एव अन्ततोगत्वा क्षय होता है। इसलिये ध्यान को महा लाभकारी आभ्यन्तर तप माना गया है। प्रत्येक मुमुक्षु को प्रतिदिन नियमित रूप से ध्यान नामक ग्यारहवे तप का आराधन करना चाहिये।

१२ व्युत्सर्ग

बारहवा तप है—व्युत्सर्ग अथवा अतिथिसविभाग। गृहस्थ तप कर लेता है पर यदि वह तप के साथ-साथ दान नही करता, तो तप से जो तेजस्विता उसमे आनी चाहिये, वह पूरी नही आ पाती। तप के साधन हैं सयम और दान। गृहस्थ के तप के साथ यदि दान नही है तो वह उतना शोभास्पद नही होता, जितना कि होना चाहिये। इसी लिये आपके पूर्वजो ने तप के पीछे दान की भावना रखी थी। पर आज उस दान का स्वरूप विकृत होकर और का और हो गया है। बहन-बेटिया अठाई का तप करती है तो अडोस-पडोस के लोगो को और सगे-सम्बन्धियो आदि को बुलाया जाता है तथा उन्हे स्वादिष्ट षड्रस भोजन कराया जाता है। पारण के दिन तपस्विनी बहिन तो पीयेगी थोडा सा दूध और हलवा बनाया जायगा कडाही भर कर। वास्तव मे यह तपस्या का और अतिथिसविभाग का एक प्रकार का विकार है।

तपश्चरण से तीर्थंकर—

इस प्रकार भगवान् ने ६ प्रकार के बाह्य तप और ६ ही प्रकार के आभ्यन्तर तप—यो कुल मिलाकर तप के बारह भेद बताये है। बारह प्रकार के इस तप की जो साधक विशुद्ध भाव से आराधना करेगा, तो क्या होगा, इस सम्बन्ध मे कवि ने कहा है —

भविक जन कर लो कुछ अभ्यास ।
अजब शक्ति है तप मे भैया, कर लो कुछ अभ्यास ।। भविक,
तन, मन, वाणी के माध्यम से, तप का करो प्रकाश ।
भाव से कर लो कुछ अभ्यास,
भविक जन कर लो कुछ अभ्यास ।।

यदि भवाटवी की विकट घाटियो को सुगमतापूर्वक पार करने के लिये सिर पर लदे पाप के दुर्वह अतुल भार को हल्का करना है, यदि भवसागर मे भवरजाल से छुटकारा पाना है, यदि जन्म-मरण के पाश से सदा सर्वदा के लिये मुक्त होना है, तो इस बारह प्रकार के तप की आराधना करो। यदि तप का अनवरत अभ्यास किया जाय तो साधक के अन्तर मे अचिन्त्य, अद्भुत एव अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति का अजस्र स्रोत प्रकट होगा और निश्चित रूप से वह साधक एक न एक दिन अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे सफल हो सकेगा। तप की महत्ता और उपयोगिता के बारे मे जितना भी कहा जाय, वह थोडा है। वास्तव मे तप की महिमा का कोई पारावार नही। तप के प्रभाव से घोरातिघोर सकट के घने काले बादल क्षण भर मे ही विलीन हो जाते हैं। तपश्चरण के द्वारा ही सब तीर्थंकरो ने ज्ञानावरण आदि घातिक कर्मो का समूल नाश कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त चारित्र की उपलब्धि की और ससार के अनन्त भव्य प्राणियो को ससार सागर से पार करने वाले धर्मतीर्थ की स्थापना की। सक्षेप मे कहा जाय तो कोई ऐसी भौतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धि नही, जिसे कि तप के द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता हो। और तो और तप के प्रताप से अनन्त, अक्षय, अव्याबाध सौख्यनिधान मोक्षपद भी सहज ही सद्य-सुलभ हो जाता है।

परम पावन पर्वाधिराज के इन पवित्र मगलमय दिनो मे जो श्रद्धालु भक्त अपनी सामर्थ्य के अनुसार इन बारह प्रकार के बाह्य एव आभ्यन्तर तपो का विशुद्ध अन्त करण से आराधन करेंगे, वे निश्चय ही इहलोक एव परलोक मे सदा कल्याण और परमानन्द के भागी बनेगे।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

बालोतरा, दिनाक २५-८-७६

चतुर्थ दिवस—तप दिवस—का
प्रवचन

प्रार्थना

वीर सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो, वीर बुधा सश्रिता,
वीरेणाभिहत स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्य नम ।
वीरात्तीर्थमिद प्रवृत्तमतुल, वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्रीधृति-कान्ति-कीर्तिरतुला श्री वीर ! भद्र दिश ।

अमृतपान

बन्धुओ !

जिनेश्वरदेव की भवभयहारिणी वाणी के प्रसाद का आप लोग रसास्वादन कर रहे हैं। वीतरागवाणी का यह आठवा अग अन्तगडदशा हमारे समक्ष सुनाया जा रहा है। इधर पर्वाधिराज के पावन दिन बडी तीव्र गति से चले जा रहे हैं। आज महापर्व का पाचवा दिन है और अन्तगडदशा सूत्र का भी पाचवा वर्ग आपके समक्ष है। कितने भाग्यशाली परिवार मे जन्म पाकर, उस समय की सभी प्रकार की सम्पदाओ का स्वामित्व और राजघराने का विपुल वैभव, सत्कार, सत्ता, सम्मान पाकर भी उन विभूतियो ने भोगमार्ग से मुख मोड कर कण्टकाकीर्ण साधनामार्ग पर अपने चरण वढा दिये। यह आपके, हमारे लिये, जन-जन के लिये कितनी प्रवल प्रेरणाप्रदायिनी वात है ?

श्री कृष्ण के पुत्र—पौत्रो की वात आपने सुनी। आज यह वर्ग चल रहा है श्री कृष्ण की रानियो का।

सम्यग्दृष्टि की उत्कट भावना

एक समय था जव प्रत्येक सम्यग्दर्शनी यह मानता था, यह भावना भाता था "मेरा घर, मेरा परिवार, मेरी पीढिया तभी

धन्य होगी जब कि मेरे घर, परिवार एव पीढी मे से कोई नररत्न, कोई महिलारत्न इस भवसागर को तिरने-तारने के लिये निकलेगा। जिन-शासन की सेवा के लिये मेरे घर मे से जब कोई व्यक्ति निकलेगा, तभी मेरा कुल धन्य होगा, सार्थक और कृतकृत्य होगा। इसके अतिरिक्त चाहे कोई सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न राजगद्दी पा ले, उससे मेरा वश कृतार्थ होने वाला नही है। मेरा घर, मेरा कुल, मेरा वश, मेरी पीढी, मेरा परिवार तो तभी सफल होगा, जबकि मेरे वश मे से कोई नर अथवा नारी रत्न निकल कर स्वय तिरने एव दूसरो को तारने वाला भवाब्धि जलपोत बने, जन्म, जरा, मृत्यु के दारुण दु खो से प्रपीडित प्राणिवर्ग को कर्मबन्धन काटने का, सच्चे सुख की प्राप्ति का रास्ता बताये।

एक समय था जब प्रत्येक सम्यग्दर्शनी प्रतिदिन अन्तर्मन से इस प्रकार की भावना भाया करता था। इस भावना का प्रेरणास्पद प्रतीक है त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्ण का जीवन-चरित्र। वे भगवान् के समक्ष कहते है—मैं अधन्य हू। धन्य हैं जाली मयालि आदि। यह केवल बोलने की ही बात नही थी। शास्त्र साक्षी है कि श्री कृष्ण शासनसेवा मे कितने आगे बढ गये थे।

दिव्य माला की दैदीप्यमान मणिया

क्या बात थी कि सभी प्रकार की भौतिक सम्पदाओ से समृद्ध एव सुसम्पन्न सारा का सारा परिवार भोगमार्ग से विमुख हो बडी उत्कण्ठा और उत्साह के साथ साधनापथ की ओर उमड पडा था ? बालक, वृद्ध, वनिताए, राजकुमार, राजकुमारिया सभी भव-सागर से पार उतरने की अमिट अभिलाषा लिये साधनामार्ग पर आरूढ हो गये। गाथापति भी, श्रेष्ठिपुत्र भी और मालाकारपुत्र भी श्रमण जीवन मे दीक्षित हो गये। अन्तगडदशा की माला के मणियो मे एक ओर अल्पवयस्क अतिमुक्तक कुमार जैसे सौम्य सुकुमार भी हैं तो दूसरी ओर नरसहारकारी अर्जुन मालाकार जैसा भी। अन्त-गडसूत्र की माला बडी ही अद्भुत है। इसमे मोक्षगामी महान् आत्माओ की माला बनाई गई है। इस अति कमनीय अलौकिक माला के मणियो मे राजकुमार भी हैं, राजकुमारिया भी है, राज-

रानिया भी हैं, इभ्य भी हैं, इभ्यपत्निया भी है, गजसुकुमाल, अति-मुक्तककुमार जैसे किसलयकोमल सुकुमार भी हैं और नरहत्यारा अर्जुनमाली भी है। अन्तगडसूत्र की यह अद्भुत् अलौकिक माला हमे डिंडिमघोष के साथ स्पष्ट शब्दो मे बता रही है कि मानव मे, प्राणिमात्र मे कोई छोटा नही, कोई बडा नही । प्राणियो मे छोटे बडे का कोई भेद नही। सबसे बडी है साधना। साधना मे वह अचिन्त्य शक्ति है, वह अद्भुत् सामर्थ्य है कि वह केवल एक जन्म के ही नही अपितु जन्म-जन्मातरो के घोरातिघोर दुष्कर्मो को, कर्मो की बेडियो को काट सकती है, यदि साधक सच्चे मन से, सही तरीके से साधना करे। इसीलिये हम कल तप की साधना के प्रसग मे कह गये —

"भवकोडिसचिय कम्म तवसा निज्जरिज्जइ ।"

अर्थात्—तप की यह महिमा है कि वह करोडो भवो के सचित कर्मो को नष्ट कर देता है।

तपस्या के सम्बन्ध मे कल कुछ विचार प्रकट किये गये थे। तप के कुछ प्रकार भी बताये। अन्तरग और बहिरग–ये तप के दो भेद कर पूरी तालिका, पूरे नाम आपके समक्ष कल प्रस्तुत किये गये।

आज यह देखना है कि तप का भूषण क्या है। कैसा तप किया जाय, जो हमे कर्मों को काटने मे सफल बना सके, जो हमारे कोटि-कोटि जन्मो के सचित कर्मो को काटकर हमे अक्षय–अव्या-बाघ शिवसौख्य प्रदान कर दे। तप के साथ क्या-क्या कार्य किये जायें।

साधक का ध्यान साधना के लक्ष्य पर केन्द्रित रहे

कल आपको तप के दो भेद—कायिक तप और मानसिक तप तथा ६ भेद कायिक तप के और ६ ही भेद मानसिक तप के बताये गये। कायिक तप शरीर पर असर करता है और मानसिक तप मन पर असर करता है। मन को मोडना, मन को भौतिक प्रवृत्तियो से हटा कर आध्यात्मिक प्रवृत्तियो की ओर मोडना अर्थात् मन और इन्द्रियो को सभी प्रकार की बहिर्मुखी वृत्तियो से मोड कर अन्तर्मुखी वृत्तियो मे जोडना ही हमारी साधना का प्रमुख काम है, प्रथम लक्ष्य है।

यही हमारी साधना का परम साध्य अथवा चरम लक्ष्य है। तप की साधना तो इसी लक्ष्य की, इसी परम साध्य की सिद्धि का एक साधन है। हमे सदा, प्रतिपल, प्रतिक्षण इस साधन के पीछे रहे हुए हमारी साधना के प्रमुख लक्ष्य को याद रखना है, उसे भूलना नही है। जो साधक अपनी साध्य साधना की सिद्धि के लिये साधन को काम मे लेते समय अपने साध्य लक्ष्य को नही भूलेगा वही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

महीने भर तप कर के, उपवास करके किया क्या जाता है? मन को, इन्द्रियो को खान-पान, भोगोपभोग आदि वहिर्मुखी प्रवृत्तियो, भौतिक प्रवृत्तियो से मोड कर चिन्तन-मनन-भजन-ज्ञानार्जन आदि आध्यात्मिक प्रवृत्तियो से जोडने का प्रयास अथवा अभ्यास ही तो किया जाता है।

बन्ध एव मोक्ष—दोनों मे तन की भूमिका

बात यह है कि पाप करने मे अगुवा रहा शरीर। चाहे तन—योग से रहा अथवा वाणी-योग से रहा। ये दो तो शरीर के साथ सम्वन्धित थे—तनयोग और वाणीयोग। वाणी भी किसके द्वारा प्रचालित हुई? जिह्वा हिली, कुछ दातो ने काम किया, कण्ठ, ओष्ठ और तालु—इन्होने कुछ हलचल पैदा की, तव आवाज निकली वाणी कभी काय—योग के बिना नही चल सकती। मन-योग तो बिना काययोग के चल सकता है। बिल्कुल शून्य-निश्चेष्ट आपको बैठा दिया जाय, तब भी आपके दिमाग की मानसिक शिराए चलती रहेंगी। मानसिक शिराओ के चलाने मे न दातो को हिलाने की आवश्यकता है, न जिह्वा को हिलाने की और न किसी अग—प्रत्यग को हिलाने की। पर वाणी मे तो जिह्वा, कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि अगप्रत्यगो को हिलाना ही पडेगा।

तो पाप किसके द्वारा किया गया? शरीर के द्वारा। इसलिये पाप को काटने के लिये भी शरीर को आगे किया जाता है।

तप के आलोचको के तथ्यहीन तर्क

सहज मे एक सवाल उठ सकता है। कभी-कभी कई लोग तपस्या नही कर पाते हैं। उनको आलोचना का समय मिलता है।

वे लोग क्या-क्या कह सकते है, यह तो उनकी स्थिति वे ही जानें। पर यह स्थिति तो सबके सामने है कि वे स्वय तो तप कर नही सकते और अन्य कोई तप कर रहा है तो वे कहते हैं–"अरे ! ये तो काया को मसोस रहे है, शोप रहे हैं और काया को मसोस कर ये तप नही हिसा करते है।" कभी-कभी तो वे लोग ऐसी भाषा तक मे वोल जाते हैं–"घर मे नौकर-चाकर हैं, पशु है, उनको भोजन नही दिया तो वह हिसा नही पर इस शरीर को भूखो मारना यह बहुत बडी हिसा है।" ऐसा भी एक तर्क इस प्रकार के लोगो के मन मे खडा होता है। इस तरह की दलीले प्राय उन्ही लोगो की ओर से दी जाती है, जो स्वय तप कर नही पाते। चाहे वे लोग किसी तरह के तर्क दे पर उनकी तर्क सुनना और थोडा सा उनका समाधान करना हमारा कर्त्तव्य हो जाता हे।

अनुभूति आत्मदेव का गुण, न कि जड तन का

हमे उनके इस तर्क से नाराज होने की आवश्यकता नही। उनका समाधान करना, उनकी गलत समझ को दूर करना हमारा फर्ज है। उनकी सबसे बडी गलती तो यह है कि वे हिंसा की परिभाषा समझने का प्रयास ही नही करते। वस्तुत ऐसा प्रतीत होता है कि हिंसा शब्द के अर्थ से ही वे लोग अपरिचित है। यदि साधारण से साधारण व्यक्ति से भी यह प्रश्न किया जाय कि हिंसा जड की होती है अथवा चेतन की ? तो शतप्रतिशत सर्वसम्मत उत्तर यही होगा कि हिंसा चेतन की होती है। साथ ही फिर दूसरा प्रश्न किया जाय कि शरीर चेतन है अथवा जड। तो इस प्रश्न का भी निर्विवाद उत्तर होगा कि शरीर जड है। जब यह एक सर्वसम्मत तथ्य है कि शरीर जड है, तो फिर तपस्या करने से हिंसा कैसे हुई ? जो शरीरस्थ आत्मदेव है, उसको दु ख होता है, शरीर के वियोग से कष्ट होता है तो वह हिंसा है। लेकिन तपश्चरण से शरीरस्थ आत्मदेव को कोई दु ख नही हो रहा है, उसे तो तपस्या से हर्ष हो रहा है। जब तपस्या से चेतन आत्मदेव को हर्ष हो रहा है, प्रमोद हो रहा है, तो फिर तप करने से हिंसा होने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। अगर वह अपने आप मे कष्टानुभव करे, दु खानुभव करे, तो उसे हिंसा कहा जा सकता है पर चेतनदेव तो स्वय चाह कर स्वेच्छा से

तप कर रहा है अत कष्टानुभव का, दु खानुभव का प्रश्न ही पैदा नही होता। एक घर के आश्रित पशु को एक दिन अथवा एक समय का दाना-पानी नही देने से हिंसा क्यो हुई ? इसीलिये कि पशु का मन खाना छोडने का नही है और आपने उसे चारा डाला नही। पर इधर तपश्चरण मे तो इस प्रकार की स्थिति नही। क्योकि तन का स्वामी, तन का मालिक कौन ? स्वय चेतन। और वह जड शरीर का स्वामी चेतन चाहे कि मुझे नही खाना है, तो वहा हिंसा कहा ? खाना नही खाने से शरीर मे दुर्बलता का आना स्वाभाविक है पर आत्मदेव को तो इससे आनन्द आ रहा है। तो इस प्रकार की स्थिति मे उसे दु ख माना जावे अथवा सुख ?

घोर कष्ट सहन मे भी किसान की सुखानुभूति

आपने देखा होगा कि पौष–माघ के महीने मे जब रात्रि मे कडकडाती ठड अग–प्रत्यग को ठिठुरा देती है, कोई भी व्यक्ति घर से वाहर निकलने का साहस नही करता, उस समय किसान को अपनी लहलहाती खेती मे पानी देना होता है। किसान सोचता है कि मिर्चो मे, गेहू मे, जीरे मे पानी देना है, यदि समय पर पानी नही दिया, तो फसल नष्ट हो जायगी। हड्डियो तक को ठिठुरा देने वाली ठड की परवाह किये बिना किसान रात-दिन पानी मे खडा रह कर अपनी फसल को पानी देता है। सिर पर ओढने को पूरा कपडा नही है, पैरो मे जूतिया नही पहने हुए है। सभी प्रकार के कष्ट सहता हुआ वह अपनी फसल को पानी देता है। वह पावू, हवूं, गोगा, तेजा आदि के गीत गाता जा रहा है और अपनी फसल की पिलाई मे मग्न है। उस समय उसके पास से यदि कोई मिनिस्टर निकल जाय अथवा कोई घुडसवार घोडे पर चढ कर निकल जाय, तो भी उसको उसकी पर्वाह नही। तो वह किसान उस समय दु ख का अनुभव कर रहा है अथवा सुख का ? सुख का। क्योकि वह ठिठुराती सर्दी मे मन से, स्वेच्छा से वह काम कर रहा है। दु ख की वात तो दूर, पानी से तृप्त हरी–भरी अपनी लहलहाती खेती को देख कर उसका मनमयूर हर्ष से नाच उठता है।

ममतामई माँ की कष्ट सहन मे भी सुखानुभूति

इन माताओ की, इन देवियो की दुनिया से तो सभी भली-

भाति परिचित है कि ये अपने बच्चो के सुख-दु ख को ही अपना सुख-दु ख मानती है। किसी माता को कडी भूख लगी हुई है, भोजन नही मिला है पर ज्यो ही खाने को जो कुछ मिला, पहले अपने बच्चे को खिला देती है। स्वय भूखी रह जाती है पर बच्चे को भूखा नही रखती। स्वय भूखी है पर बच्चे को खिला दिया तो उसे सुख होगा कि दु ख ? बच्चे को खिला देने पर स्वय भूखी है, तो भी उसे खुशी होगी, सुख होगा। उसे सुख इसलिये होगा कि वह किसी दूसरे के दवाव से, किसी के वलप्रयोग से, जोर-जव्र से भूखी नही रही, अपने बच्चे को आराम मिलेगा, इस सुख के लिये वह स्वेच्छा से भूखी रही। जिस तरह उस माता को कष्ट नही हुआ, उसी तरह हम भी अपने आत्मदेव के आनन्द के लिये, अपने चेतन के चिरप्रसुप्त सच्चिदानन्द स्वरूप को चमकाने के लिये शरीर के द्वारा कष्ट सहन करे तो दु ख क्यो होगा, सुख क्यो नही होगा ? शरीर का स्वामी कौन ? चेतन कष्ट सहन करे सुख के लिये, शान्ति के लिये तो कष्ट सहन करते हुए भी तपस्वी को असीम आनन्द, परम प्रसन्नता और सुखद सन्तोष का अनुभव होता है। इसलिये तपस्या आत्मा की हत्या नही, हिंसा नही अपितु आत्मा की दया है। अत तपस्वी तपस्या कर के अपनी हिंसा नही करता, अपनी दया करता है।

विषयलोलुपता आत्महत्या भी एव हिंसा भी

एक भोगी व्यक्ति भोग-विलास मे अपनी जिन्दगी गला देता है और विषयलोलुपता एव लम्पटपन के कारण उसे गर्मी-सुजाक की बीमारी हो गई। उस भोगी ने अपने शरीर के साथ-साथ आत्मा की भी हिंसा की अथवा दया ? हिंसा की। वह तो खाने-पीने वाला था, कभी भूखा नही रहा, कभी तपस्या नही की, खूब खाता, खूब पीता, शक्तिवर्द्धक औषध-भेषज से शरीर को पुष्ट करने का प्रयास करता रहा। फिर उसने खाते-पीते और शरीर को आराम देते हुए भी शरीर के साथ आत्मा की भी हत्या कर डाली। दूसरी ओर तपस्वी ने तपश्चरण द्वारा शारीरिक कष्ट सहन कर के भी शरीर को गर्मी-सुजाक जैसी घृणास्पद बीमारियो से बचाये रख कर शरीर पर, और आत्मा के कर्मजाल को तप की ज्वाला से जला कर आत्मा को निर्मल बनाते हुए, आत्मा पर दया की। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग प्रभु

द्वारा प्ररूपित जैन दर्शन के अनुसार भोग मे जाना आत्महत्या है और योग मे अथवा त्याग मे जाना आत्मा की दया। यह तो उस शका का समाधान हुआ जो कहते है कि तपस्या मे हिसा है, हत्या है।

जैन सस्कृति मे तप की विशेषता

जैनसमाज के अतिरिक्त तप पर इतना जोर देने वाले करीब-करीब अन्य नही मिलेंगे। अन्यान्य सम्प्रदायो का तप और तरह का होगा। उसमे शरीर के आराम की, सुख-सुविधा की स्थिति रहेगी पर यहा (जैनसमाज मे) यह नही है। इससे हमे भूल नही जाना है, फूल नही जाना है। हमारे तप मे बहुत सी कमिया हैं, उन कमियो को हमे पूरी करना है। जब तक तपस्या के पूरे अग तपश्चरण के साथ नही जोडे जायेंगे और कमिया पूरी नही की जायेंगी, तब तक तप अभीप्सित कल्याण मे आगे बढाने वाला नही हो सकता। आप कहेगे कि हम तपस्या कर रहे हैं। कोई ६ कर रहा है, कोई १० उपवास कर रहा है, कोई १२ कर रहा है तो कोई १३ उपवास की तपस्या कर रहा है। बहने भी खूब तपस्याए कर रही हैं। हम लोग निष्काम भावना के साथ तपस्या करने वाले हैं, तो फिर इसमें कमिया क्या हैं?

तप के आवश्यक अग

तप का अग है पहले-पहल तो कषायविजय, जिसको कल सीधे शब्दो मे कहा गया था सयम। तपस्या करने वाले को तप से पहले भी अभ्यास की भूमिका बनानी है और तप सम्पन्न होने के पश्चात् भी पूर्ण सावधानी रखते हुए अभ्यास की भूमिका बनाना नितान्त आवश्यक है। पर्वाधिराज पर्यूषण के दिन आये और परस्पर बढ-चढ कर तपस्या की होड लग गई। किसी ने आकर तेला किया तो दूसरे ने आकर पचौला पचख लिया। किसी ने अठाई की तो दूसरे ने १० की तपस्या कर ली। आजकल ओलम्पिक खेल चल रहे हैं। ओलम्पिक गेम्स मे दूर-दूर के देशो से बच्चे जाते है और पूरी तैयारी के साथ उन खेलो मे भाग लेते है। प्रत्येक खिलाडी विजय पाप्त करने के लिये पूरा प्रयास करता है। एक बार जो उन

खेलो मे पिछड जाता है, उसके मन मे ऐसी करारी चोट लगती है कि वह उसी दिन से पूरी तैयारी करने मे दृढ सकल्प के साथ जुट जाता हे। वह साल भर पूरी तैयारी करने के पश्चात् पुन अगले वर्ष के खेलो मे भाग लेता है। ओलम्पिक मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने तथा स्वर्णपदक प्राप्त करने के लिये पहले से ही तैयारी करनी पडती है या नही ? जिस समय भारतीय टीम का विदेशी टीम के साथ मुकावला होता है, उस समय भारतीय नौजवानो मे जय-पराजय के समाचार सुनने के लिये वडी तीव्र उत्कण्ठा जगी रहती है। प्राय प्रत्येक अखबार का एक-एक पन्ना तो ओलम्पिक के समाचारो से ही भरा होगा। ओलम्पिक खेलो मे भाग लेने वालो को उनके देशो की सरकारें अधिकाधिक तैयारी करने के लिये प्रोत्साहन देती है, पारितोषिक देती है। ओलम्पिक मे भाग लेने वाले ने यदि पहले अभ्यास नही किया तो उसे मैदान मे मु ह की खानी पडेगी, पराजित होना होगा।

पर्व-दिवस आध्यात्मिक प्रगति की परीक्षा के दिन

तो ये पर्वराज पर्यू षण के दिन भी तप की होड के दिन है। यह तप के मैदान मे नम्वर मिलाने का प्रसग है। कौन तप के मैदान मे आगे आता है, कौन साधना के मैदान मे और कौन शील के मैदान मे सवसे आगे आता है, इसकी परीक्षा का मैदान ये पर्यू षण के दिन है। आहूति तो सभी देते है इस महान् आध्यात्मिक यज्ञ मे, पर सवसे अधिक आहूति कौन देता है, सवसे अधिक अक कौन लाता है, इसकी यह परीक्षा की घडी है। इस परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिये सयम का अभ्यास करना परम आवश्यक है। जो सयम रखेगा और फिर तप करेगा, उस साधक को साधना मे कितना आनन्द आयेगा, यह तो उस अद्भुत् आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति करने वाले ही वता सकते हैं।

सफलता की कु जी दृढ निश्चय के साथ अभ्यास

सतारा के पास पचगनी मे वच्छराज नामक एक भाई रहते थे। उनकी पत्नी के मन मे तपस्या करने के भाव तो रहते थे पर वे एक-दो उपवास से ज्यादा नही कर सकती थी। ,पर भावो के साथ

उनके मन मे दृढ निश्चय था बडी तपस्या करने का। आप लोग तो मनसूबे करना जानते हो। १२ व्रत धारण करने का कहते हो और पीछे हट जाते हो। पर औरतो मे दृढ निश्चय होता है, चाहे बुराई मे हो चाहे भलाई मे हो। अगर किसी बुराई मे निश्चय कर लिया तो फिर आप लाख समझा कर मनाओ तो भी नही मानेगी। यदि घर मे कोई गमी हो गई हो, शोक हो तो पर्युषणो के दिनो मे धर्माराधन की दृष्टि से शोक तोड कर बाहर निकलना प्रारम्भ कर दिया जाता है। पर यदि औरतो ने निश्चय कर लिया कि पर्युषणो के दिनो मे भी शोक तोड कर बाहर नही निकलना है, तो वे बाहर नही निकलेंगी। कोने मे बैठे-बैठे दिन काटा करेगी। खायेगी-पीयेंगी पर धर्मस्थान मे नही आयेगी, यह अवश्य पकडा है। यदि मगज में अच्छी तरह से कोई बात बिठा दी जाय, तब तो उसे फौरन छोड देना चाहिये। दृढ निश्चय के साथ इस बात का होना परम आवश्यक है।

उस वछराज भाई की पत्नी ने अठाई करने का निश्चय किया। इसके लिये उस बाई ने अभ्यास करना प्रारम्भ किया। कभी एकाशन करके, कभी शाम को भोजन न करके उपवास करना प्रारम्भ किया। कभी पारणे के दिन भी एकाशन कर लेती। हमारा सतारा नगर मे चातुर्मास था। उस बाई ने अपना अभ्यास चालू रखा और अठाई करके अन्त में अपने दृढ निश्चय को पूरा कर ही लिया।

सच्चे सयम, तप एव दान का मापदण्ड

तो मेरे कहने का मतलब यह है कि तप के पीछे सयम की भूमिका होनी चाहिये। सयम की भूमिका मे आदमी ज्ञानपूर्वक तप करता है, यह सोचकर तप करता है कि तप से जितना अधिक से अधिक लाभ जिस तरह उठाया जा सकता है, वह उठाये। तप का सबसे बडा और पहला लाभ तो यह है कि तपश्चर्या करने से दूसरो के दु ख का सवेदन होगा। आप स्वय तो माल-मलीदे उडाता है और नौकर-चाकरो को एक समय का भोजन नही देता। तो वह खुद एक दिन तप कर के देखे कि भूखे रहने पर कितना कष्ट होता है। स्वय भूखे रहने से उसे नौकर-चाकरो की, गरीबो की भूख का सवेदन होगा और उसमें दान और सयम की प्रवृत्ति जागृत होगी।

दान तो ऊचा है गरीब का और त्याग, तप, सयम करना ऊचा है अमीर का। अमीर व्यक्ति चार दिन का भोग त्याग कर सयम मे बैठे तो ज्यादा लाभ का काम होगा। वह यदि १०० रुपया दान मे निकाले तो उतना कठिन नही है। जिसने हजारो, लाखो रुपये कमाये, वहा वह १०० या ५०० रुपये दान मे निकाल दे तो वह कोई वडाई की वात नही। दूसरी ओर एक असहाय बुढिया, जिसके पास कुछ भी नही है, वह दो रोटी का दान दे और एक अमीर १००० रुपये का दान दे तो अमीर द्वारा दिया गया वह १००० रु० का दान बुढिया द्वारा दिये गये दो रोटी के दान की वरावरी नही कर सकता। यह तो ऐसा ही हुआ कि ऐरण की चोरी करे और सुई दान मे निकाले —

ऐरण की चोरी करे, दे सूई को दान।
ऊची चढ चढ देखती, कद आवे विमाण॥

वात यह है कि द्रव्योपार्जन मे अनेक प्रकार के पापारम्भ होते है। उसमे से थोडा वहुत पैसा निकाल दिया तो कुछ नही हुआ। अत सयम की भूमिका मे ज्ञानपूर्वक तप करने वाला साधक सोचेगा कि अभी तक तो कुछ भी नही किया है, वहुत कुछ करना वाकी रह गया है। सयम नही रखू गा तव तक तप करने से कोई अभीष्ट लाभ नही मिलने वाला है।

संयम की सर्वोत्कृष्टता

नमी राजर्षि ने सौधर्मेन्द्र के प्रश्नो के उत्तर दिये, उनमे से एक प्रश्न का उत्तर सयम की श्रेष्ठता पर वडा सुन्दर प्रकाश डालता है —

जो सहस्स सहस्साण, मासे मासे गव दए।
तस्सावि सजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किंचण॥४०॥उत्त०

एक ऐसा दानी है, जो प्रतिमास १० लाख गायो का दान करता है। एक एक गाय साधारणतया आज की मूल्य दर से ५००) रु० की भी मान ली जाय तो १० लाख गायो का दान कितने मूल्य का होता है। तो एक दानी १० लाख गायो के जैसा अनुपम दान

प्रतिमास करे लेकिन वह सयमी नही है, हिसा, झूठ, चोरी आदि असयम का उसने त्याग नही किया है। दूसरी ओर एक व्यक्ति हिसा, झूठ चोरी आदि असयम का त्याग कर तन, मन और वाणी पर सयम करे, किसी प्रकार का दान न करे, तो भी वह सयमी व्यक्ति प्रतिमास १० लाख गौओ का दान करने वाले दानी से श्रेष्ठ है।

सयम सहित तप ही वास्तविक तप

तो बन्धुओ! आपको भली भाति सोच-विचार कर यह ध्यान मे धर लेना चाहिये कि पर्युषण पर्वाधिराज के इन पवित्र दिनो मे थोडे कागजिये (नोट्स) फेंके तो उनसे कोई कार्य हल होने वाला नही है। सयम के बिना कल्याण सभव नही है। इसलिये अपने दैनिक जीवन की प्रत्येक चर्या मे सयम को अपनाना चाहिये। तपश्चरण द्वारा यदि जीवन को सफल बनाना है, तपश्चर्या की कमियो की पूर्ति करना है, तो तप के प्रथम अग सयम को अपने जीवन मे ढालिये। उपवास करना तभी सही मायने मे तप की कोटि मे आयेगा जब कि उपवास के साथ-साथ सयम, तन का सयम, मन का सयम और वाणी का सयम धारण किया जायगा।

उपवास और लघन

उपवास किसे कहते है, इस सम्बन्ध मे एक श्लोक मे बताया गया है —

> विषयकषायाहाराण, त्याग यत्र विधीयते।
> उपवास स विज्ञेय, शेष लघनक विदु ॥

हकीम, वैद्य और डाक्टर कभी-कभी बीमारी का उपचार करते समय रोगी को उपवास करा देते हैं। गरम पानी देते हैं, नीबू का रस देते है, खून चढाते हैं और उपवास कराते हैं। इस प्रकार बीमरी के उपचार के रूप मे किसी भाई ने उपवास किये तो क्योकि केवल भोजन छोडा, विषय-कषायो को नही छोडा, इसलिये जैन दर्शन के अनुसार वह उपवास नही हो कर लघन ही हुआ। एक तो विषय कषाय नही छूटे, दूसरी बात यह कि व्याख्यान मे देर से आवें बिना तपस्या वाले भाई तो आवें जल्दी और तपस्या वाले भाई आवें दस

–साढे दस वजे के करीब। आजकल तपस्या करने वालो मे ऐसा सिलसिला मिलेगा कि सुवह देर से उठते है, उठते ही तेल लगाते हैं, गरम पानी से शरीर को साफ करते है। उसके पश्चात् साज-सज्जा करते है। यह राग बाइयो मे तो और भी ज्यादा है। घर मे धर्म-स्थान के रास्ते मे यदि सगे-सम्बन्धी रहते है, तो व्याख्यान सुनने के लिये आते-आते रास्ते मे बीच मे ही रुक कर वातो मे लग जाती हैं। यह नही सोचती कि समय पर पहुची तो शास्त्र का प्रवचन सुनने को मिलेगा, अन्यथा उससे वचित रह जायगी। पर्युपण के दिनो में वीत-राग वाणी, प्रवचन सुनना लाभप्रद है या सगे-सम्वन्धियो के यहा वातो मे समय पूरा करना ? इससे यह सिद्ध होता है कि वीतराग वाणी की अपेक्षा उनको सगे-सम्बन्धियो से अधिक प्यार है।

मैं यह कह रहा था विषयो के लिये कि शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श–ये सव विषय राग, रोष पैदा करने के निमित्त है। यदि तपस्वियो के मन मे भी राग-रोष उत्पन्न होते रहे, तो तपस्या की ताकत कम हो जायगी।

अति विकट सकडा पथ

इसीलिये कहा कि तपस्या करने वाले विपयो को छोडें, कषायो को छोडे। ससार मे चलना काजल की कोठरी मे चलने के समान है। कभी कभी हम लोगो की भी परीक्षा हो जाती है। आप लोग तो ससार-सागर मे पूरे पैठे हुए हैं। इसमे अगर साधक साव-धान नही है तो चारो ओर गहन कीचड के दलदल से भरे पाताल-कूप तुल्य गहरे गड्ढे भरे पडे है। रास्ता निकालने की चार अगुल जगह भी अगल-वगल मे खाली नही है। ऐसी गली में से गुजरना है, जहाँ गटर वह रहे है, कीचड ही कीचड भरा पडा है। थोडी सी असावधानी वरती, थोडा सा चूके कि गिरे कीचड से भरे अतल अघ कूप में। अपने आपको इन कीचड से भरे गहन गड्ढो से वचाते हुए वडी सावधानी के साथ साधना का कठिन रास्ता पार करना है। गलियो मे, राह मे जो कीचड भरा रहता है, उससे अपने आपको वचाना तो फिर भी सभव है पर ससार के दु ख-दोपो से भरे इन नालो में क्रोध, मान, मोह, माया, लोभ, ईर्ष्या-द्वेप के दलदल से

बच जाना, यह कोई सहजसाध्य सरल काम नही है। इनसे बचने के लिये तपस्या के माध्यम से अनवरत अभ्यास करने की आवश्यकता है, सयम की आवश्यकता है।

सयम के साथ स्वाध्याय

सयम के साथ चाहिये स्वाध्याय। सयम वाला, यदि उसका अपने तन पर सयम है तो तन से होने वाले पाप से बच जायेगा। वाणी पर सयम है और कम बोला तो वाणी के पाप से बच जायगा। शरीर की हलचल कम की, बाजार मे नही घूमे, इधर-उधर हथाई नही की तो शरीर के सयम से शरीर द्वारा होने वाले पाप से बच गये। मौन कर लिया, नही बोले तो वाणी के पाप से बच गय। अब आप ही बताइये अपनी दैनिक जीवनचर्या मे सयम को अपनाना सरल काम है कि कठिन ? वाणी के पाप से बचने के लिये सीधा सा तरीका है कि मौन से रहो। वाणी का सयम रखा तो झूठ, कपट, वाद-विवाद, चुगली, कलह, लडाई, दूसरो पर कलक लगाना, आलोचना-प्रत्यालोचना करना आदि पापो से बच गये। वस्तुत शरीर पर सयम रखना इतना सरल है कि आप यदि हर समय उपयोग रखें, ध्यान रखे तो इसमे आपको किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी। यह तो शरीर पर सयम की बात हुई।

मन अति चपल तुरग

शरीर पर सयम रखने के साथ-साथ मन पर सयम रखना भी साधक के लिये परमावश्यक है। मन बडा चचल है, हवा को मुट्ठी मे बन्द करने के समान मन को वश मे रखना भी बडा कठिन एव दुस्साध्य काम है। अत हमे सोचना है कि मन को किस प्रकार रोकना, किस प्रकार वश मे रखना। मन को दौडने से बचाने के लिये ज्ञान की लगाम चाहिये। द्रुतगति अथवा वेग मे प्रलयानिल को भी परास्त कर देने वाला यह महौजा-महाजवी मन रूपी घोडा ज्ञान की लगाम से ही वश मे हो सकता है। बिना ज्ञान की लगाम के मन को साधना के पवित्र मार्ग पर सरपट नही दौडाया जा सकता, स्थिर नही रखा जा सकता। इसीलिये मन के ज्ञान की लगाम लगाने के लिए सयम के साथ स्वाध्याय को परम आवश्यक

कर्त्तव्य वताया गया है । क्रम से यह सिलसिला यदि नियमित रूप से निरन्तर चलता रहे, तो साधक अभ्यास करते-करते अन्ततोगत्वा मन को वश मे करने मे सफलता प्राप्त कर सकता है ।

तप के चार चौकीदार

तपस्या के माध्यम से साधक को लक्ष्यप्राप्ति मे सफलता प्रदान करने मे जिस प्रकार सयम सवल सहायक है, उसी प्रकार प्रायश्चित्त विनय, वैयावृत्य और स्वाध्याय, ये चार वडे मर्म की वाते भी वडी सहायक हैं । जो साधक अपनी तपस्या को पूर्ण रूप से सार्थक और सफल वनाना चाहता है, उसके पास ये चार चौकीदार अवश्य होने चाहिये । जिस साधक के पास ये चार चौकीदार है, उसकी तपस्या को सफलता निस्सदिग्ध और सुनिश्चित है ।

हमारा पुराना इतिहास वताता है कि तेले की तपस्या से देवो के आसन हिल जाते थे । और आज ? भूखे रहते महीना भर हो जाय तो भी देव नही आते । सच्चे देव नही आवे तो चोज करने लगते हैं । रात को कही पीले छीटे पडे तो कहेंगे-वावजी ! केसर की वर्षा हो गई । वढिया चन्दन का तेल छिडक दिया और कहने लगते हैं-वावजी कैसो चमत्कार है के ओ कमरो तो महक रियो है । पतो नही, कोई देवता आया है के काई वात है । कहने को तो हम उन भाइयो से क्या कहे पर मन मे सोचते हैं कि यह भाई कैसी वातें कर रहा है, किधर वह रहा है ।

नागौर की वात है, वहा कई तपस्याये हुई । एक घर मे गरम पानी ठारने की परात थी, उसमे कुछ पैर के निशान लगे । घर वालो ने कहा—"शासनदेव तप से प्रभावित होकर आये और थाल मे शासन देवता के पैर मड गये । देवता ने केसर के छीटे वरसाये । नगर के हिन्दु, मुसलमान-सभी यह देखने के लिये उस घर की ओर उमड पडे । हमे भी कहा—"वावजी ! आप भी पधारो और देखो ।"

दूसरे दिन पारणा था । दर्शन के लिये आये और वात चली तो हमने कहा—"देवता के कसर किस वात की ? केवल छीटे ही क्यो वरसाये, वे चाहते तो नदी वहा देते । छोटे-छोटे टपके ही क्यों

डाले ? देवो को बरसाना था तो मन धाप (जी भर) कर केसर बरसाते, जिससे कि शासन की महती प्रभावना होती।" बात समझ मे नही आती पर इस तरह की बात हो जाती है तो तप करने वाले भाई बहन बडे प्रसन्न होते हैं। ससार मे ऐसे साधक थोडे ही हैं, जो महिमा नही चाहे। इसीलिये भगवान् ने कहा कि तपस्या को यदि सार्थक करना है, यदि एक जन्म मे ही समस्त अथवा अधिकाश कर्मसमूह को काटना है तो तपस्वी को चाहिये कि वह सयम के साथ प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य और स्वाध्याय का आराधन करता हुआ महिमा–पूजा की किंचित्मात्र भी आकाक्षा न करे।

आसक्ति को त्याग अनासक्त बनो

मैं आपसे पूछता हू कि राजरानियो की भोगसामग्री ज्यादा या सेठानियो की ? उन राजरानियो के आरम्भ–समारम्भ मे, भोगोपभोगो मे कितने कर्म बधे ? फिर उनके कर्म कैसे हल्के हो गये, उन्होने कर्मसमूह को कैसे काटा ? क्या बात है कि पद्मावती आदि राजरानियो ने और गौतमकुमार आदि राजघराने के पुरुषो ने उसी जन्म मे अपने-अपने कर्मजाल को काटकर अक्षय, अव्याबाध शिवसुख प्राप्त कर लिया ? राजघराने के शादी–विवाह, खान–पान, नहाने–धोने, साज–सज्जा आदि मे भी उन्होने साधारण गृहस्थो की अपेक्षा अधिक आरम्भ–समारम्भ किया। १०८ कलश तो एक समय के नहाने मे उन्हें चाहिये थे। जन्म भर मे भी कभी नहाये क्या आप लोग १०८ कलशो से ? इतने भोगी जीव, वे भी त्यागी बन गये और उसी जन्म मे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो गये। क्या कारण है ?

इसका यही कारण मेरी समझ मे आता है, मैं यह खुलासा कर रहा हू आपके सामने कि उन्होने भोग तो अधिकाधिक पदार्थों का किया पर उनका मन लूखा था रूखा था। भोगो के उपभोग मे उनका मन आसक्त नही था, गृद्ध नही था। आज आपके भोगोपभोग तो उनकी तुलना मे कुछ भी नही हैं, नितान्त नगण्य हैं पर उनमे आपकी आसक्ति ज्यादा है, आप उन भोगो मे रस ज्यादा लेते हैं। इसी कारण गाढे चिकने कर्मों का बन्ध होता है। एक बहन के पास रेशमी कीमती लूगडी ओढने को, रेशमी लहगा पहनने को, दोनो

हाथो के दो गोखरू सोने के हो और एडी सू चोटी तक सोना सू लदियोडी निकले, तो वह अपने आपको निहाल समझती है। ऊपर से फिर पन्ने का हार पहना दे तो फिर तो उस बाई की खुशी का कोई पारावार ही नही रह जाता।

दौलत की दो लतें

इस पैसे की खुराक को पचाना आसान नही है। पुराने जमाने मे पैसे की खुराक को भी पचाने वाले थे और अन्न की खुराक को भी पचाने वाले थे। आज के नौजवान को कोई कहे कि दो कवा ज्यादा खालो, तो खावे नही। पर पहले के जमाने मे मण के तेरिये अर्थात् १३ आदमी मिलकर मन भर घी खा जाने वाले होते थे। एक साधु गाव में पहुचा और लोगो से उसने पूछा कि तुम्हारे गाव मे मण के पेरिये कितने है ? वहा के लोगो ने कहा--बावजी ! अबे तो नान (नानप) पडगी, पहली तो मण रा तेरिया हा, पण अबे तो ६० जणाँ मिल ने मण खावा हा। वास्तव मे पहले के लोग सयम से रहते थे। अब सयम से नही रहते इसलिये अन्न नही पचा सकते। आज जब अन्न पचाना भी मुश्किल है तो पैसे के जोर को पचाना तो बहुत ही मुश्किल है। दुनिया मे कहावत है--"इण रो नाम है दो लत्" अर्थात पैसा जिसके पास आ जाता है, उसमे दो बुरी लतें अर्थात् आदते पड जाती है। एक तो यह कि कान सू सुणे नही और दूसरी लत यह कि आख सू देखे नही और पहिचाने नही।

नये दौलतमन्द बने किसी भाई के पास उसका पुराना परिचित कोई भाई आवे और पूछे "मुझे पहिचाना कि नही।" तो पहले दो तीन बार पूछने पर तो वह सुनेगा ही नही और जब चौथी बार जोर से पूछने पर सुनेगा तो यही उत्तर देगा "नहीं पहचाना।" कोई व्यक्ति हाकिम बन गया है और सामने वाला उसे दोनो हाथ जोडे तो वह माई का लाल एक हाथ भी ऊचा नही कर सके। लखपति हो गया, करोडपति हो गया, अफसर हो गया तो हो गया पर भाई तुम्हे हाथ जोडता है और तुम जवाब तक नही देते। इससे यह पता चलता है कि उस भाई मे इन्सानियत नही रही, मानवता उसमें मुह मोड

कर चली गई। पहले अहमदाबाद नही गया था, तब तक हर एक को हाथ जोडता था। अहमदाबाद जाकर हजारो, लाखो मिला लेता है और अहमदाबाद से बालोतरा आकर वालोतरा के बाजार से निकलता है तो लोगो को हाथ जोडना तो दूर, जो दूसरे लोग उसे हाथ जोडते हैं, उनको जवाब तक नही देता। इतने से दिनो मे ही यह क्या बात हो गई? यह दौलत की लत का प्रभाव पड गया। एक तो यह हुई दौलत की लत कि आखो से देखता नही। फिर कोई सत उससे कहे "भाई लखपति हो गया, करोडपति हो गया, अब ज्यादा लोभ मत कर, समय बहुत खराब है। तो कहेगा—"बाबजी! आप काम करियोडा नही हो। सीधा-सादा ने आटा रा कालजा हिले। म्हारे मन मे तो घणी उम्मेद है, घणी हिम्मत है, केई हाकमा ने हिलाय दिया, बिठाय दिया, देख लिया और पाणी पाय दियो।"

जो वृद्ध हो गये हैं, पूरी सफेदी आ गई है, उनसे हम कहते है-"सेठजी! अबे ज्यादा हाय हाय मत करो, पौषध करो, १२ व्रत धारण करो।" तो वे वृद्ध लोग भी कहते है—"बावजी! ठीक है, आप तो साधु बण गया हो। आपने तो आ ही आ सूझे, पण बावजी! म्हारे मन मे घणी हूस है। चालीस–पचास लाख मिलाय लू तो पाच दस लाख समाज रा काम मे भी लगाय दू।"

तो दौलत की दूसरी लत यह हुई कि बार-बार कहने पर भी कानो से सुनते ही नही। शास्त्र की वाणी सुनावे, शास्त्र का स्वाध्याय करें और परिग्रह की बात कहें तो सेठजी कहेगे—"बावजी! ओ पानो जल्दी-जल्दी पूरो कर दो। ओ काई रोज-रोज परिग्रह, परिग्रह।" धन्ना शालिभद्र की बात कही जावे कि ३३ पेटिया उतरी, तो चटपट कान खडे करेंगे और कहेंगे—"बावजी! सावल बाचो। वे ३३ पेटिया आसमान सू कीकर उतरती ही? आज भी कोई तरीको है के नही, जिणसू के घर मे आसमान सू दौलत री भरियोडी पेटिया उतरे?"

कई भाई मिले और उन्होने पूछा—"बावजी! दसवैकालिक सूत्र रा पहला अध्याय मे सोनो तैयार करण री विधि है। आप काई देखियो और आपरे काई जचे है? आप तो घणा शस्त्र देखिया

हो, आपने सब पतो है, बताओ किउ नही बावजी ! सोनो बणावण री विधि ।"

तप की अखण्ड ज्योति चमकाओ

यह सब, सयम को जीवन मे नही अपनाने का ही दुष्परिणाम है । इन पर्व के दिनो मे इन सब दुर्बलताओ को दूर करने का प्रयास करना है । कवि ने कहा है —

तप का भूषण सयम है, वेगो मे रखना दम है ।
स्वाध्याय ध्यान बल भरना रे, यो पर्व साधना करना ।
आतम गुण को विकसाना रे, यो पर्व साधना करना ।
पर दु ख को निज सम जानो, कर धर्म दान सुख मानो ।
सेवा के भाव बढाना रे, यो पर्व साधना करना ।
आतम गुण को विकसाना रे, यो पर्व साधना करना ।

तपस्या का पहला साधन, पहला अग तो रहा भव-भय-हरण करने वाला तथा सच्ची सफलता की कु जी सयम । और तप का दूसरा अग है प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य सहित स्वाध्याय । ये चारो चौकीदार तपस्या के साथ रहे तो तपस्या का तेज, तपस्या की दिव्य ज्योति कभी खत्म नही हो सकेगी ।

भगवान् महावीर ने श्रावक-श्राविकाओ के तप का समवसरण मे भी अनुमोदन किया है । तपस्वी मे तप के साथ विनय रहेगा तो विनय से तपस्या की ज्योति शतगुणित हो चमकेगी । वैयावृत्य के दो भेद हैं—एक तो द्रव्य-सेवा और दूसरा भेद भाव-सेवा । हमारे यहा सयम-जीवन की साधना मे आया है, परिहार विशुद्धि चारित्र मे बताया है कि एक ९ साधुओ का सघटिक है, उनमे से चार साधु तपस्या करते, चार साधु सेवा करते और एक साधु प्रवचन करता है । चार साधु जब तपस्या करते हैं, तो उनकी चार साधु सेवा करते हैं । पर जब एक साधु प्रवचन मे लगा होता है तो वह अकेला जीव ही वाचन का काम कर रहा है और तपस्या भी अकेला ही कर रहा है । वह महान् तपस्वी है । तो ज्ञान की साधना और स्वाध्याय के द्वारा की जाने वाली भाव-सेवा बहुत बडी सेवा है । कोई चाप दे, परिमार्जन कर दे, यह सभी द्रव्य-सेवा है । एक तपस्वी

है, अठाई की तपस्या है, १० की तपस्या है। बाजू का भाई आया और बोला—लीजिये मैं प्रतिलेखन कर देता हू। उस भाई के द्वारा, तपस्वी के वस्त्रोपकरणो का प्रतिलेखन किया जाना द्रव्य-सेवा है। आज सेवा और स्वाध्याय ये दोनो ही प्रवृत्तिया घट गई हैं। इसी-लिये कदम-कदम पर असमाधि के कारण उपस्थित हो जाते हैं।

शक्ति का अजस्र स्रोत-स्वाध्याय

यदि एक व्यक्ति कहे कि कोई व्यक्ति उसका अमुक-अमुक काम कर देगा, तो वह भी रास्ते चलते उसका कोई भी काम कर देगा। इसमे प्रतिफल पाने की भावना है इसलिये यह सेवा नही, सौदा है। भारतीय सस्कृति मे परम्परा से ही सेवा की भावना रही है। कोई भी व्यक्ति कही जा रहा है और रास्ते मे पनघट पर कोई बाई उससे कहे कि—भाई ! बेवडा उठा दे। तो वह भाई उसका काम कर देगा, बेवडा उठा देगा। धार्मिक सेवा वह है कि बगैर किसी के कहे, प्रत्येक आदमी अपना कर्त्तव्य समझ कर सेवा करे। यही सच्ची सेवा अथवा वैयावृत्य है। मन को इधर-उधर भटकने से रोका जाय, वह स्वाध्याय है। तप के समय मे मन को धर्माराधन मे, अध्यात्म-रमण मे, ज्ञान-ध्यान मे एव प्रभुस्मरण मे लगाये रखने के लिये स्वाध्याय वस्तुत तप का परमावश्यक अग है। प्रकृति ने भी अनुकूल अवसर दे दिया है। इसी के अनुरूप मन भी अनुकूल हो तो स्वाध्याय मे कितना आनन्द आये। स्वाध्याय एक ऐसी साधना है कि इसके द्वारा साधक अपने आपको, अपने घर को, समाज और सघ को, प्रान्त और अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण राष्ट्र को ताकतवर बना सकता है। साधु-साध्वियो का लाभ हर वर्ष प्रत्येक स्थान को नही मिल सकता। बालोतरा क्षेत्र सत-सतियो के सम्पर्क और चातुर्मास के कारण धर्मक्षेत्र बन गया। बालोतरा की जनसख्या ज्यादा कि बाडमेर की ? बाडमेर की। सन्त-सतियो के चातुर्मास बालोतरा मे होते है कि बाडमेर मे ? बालोतरा मे। बालोतरा का जिला केन्द्र बाडमेर है। बाडमेर मे जैनो के १००० घर है। इस जिले मे कम से कम दस-दस, बीस-बीस जैन घरो की बस्ती वाले लगभग ५०० गाव हो सकते हैं। इनमे से कितने गाव ऐसे होगे, जिनमे जिन-वाणी, वीतरागवाणी इन पर्युषणो के दिनो मे भी नही पढी जा रही है।

सोइन्तरा जैसे गाव मे भी चातुर्मास नही। इन सब गावो मे यदि समय-समय पर साधु-साध्वी पहुचते रहे और प्रतिवर्ष चातुर्मास करे तो कितना बडा लाभ मिल सकता है। पर साधु-साध्वियो की इतनी सख्या नही कि इन सब गावो मे चातुर्मास कर सके। पर यदि आप लोगो मे स्वाध्याय का प्रचार-प्रसार हो और प्रत्येक घर से कम से कम एक-एक स्वाध्यायी भी तैयार हो, तो इन गावो मे आप लोग धर्म और ज्ञान की ग ा ा बहा सकते है। सन्त-सतियो एव स्वाध्यायियो के अभाव मे उन गावो के लोगो के पर्युषण कैसे बीतते होगे? नजदीक के हैं तो कोई समदडी पहुच गये होगे, कई बालोतरा आये हैं, कई जालौर पहुच गये होगे। तो इन गावो मे वीतरागवाणी की गगा के अभाव को दूर करने का एक ही इलाज है, एक ही साधन है और वह है स्वाध्याय। अगर इस स्वाध्याय की साधना को समाज सुदृढ बना ले, इस सगठन को देशव्यापी बना दे, नवयुवक अपने पैरो को धर्मप्रचार के क्षेत्र मे दृढ सकल्प के साथ जमा लें, तो देश के कोने कोने, गाव-गाव और खेडे-खेडे मे जन-जन को जिनवाणी के अमृतपान से आप्यायित किया जा सकता है, लाभान्वित किया जा सकता है। आप ही अनुमान लगाइये कि स्वाध्याय सघ को देशव्यापी सुदृढ सगठन का स्वरूप प्रदान कर दिये जाने पर कितना व्यापक और कितना महान् कल्याण किया जा सकता है।

सोइन्तरा मे पारसमलजी है। वे भाई-बहनो को पर्युषण के दिनो में पर्वाराधन करा सकते है। ये भाई घीसूलालजी बाघमार कोसाणा ग्राम के निवासी है, आज तक तो मिर्च उडा रहे थे, अब भावना जगी है, ये दूसरे भाई भोपाल के हैं। ये दोनो स्वाध्याय कराने गये थे। ऐसे कम पढे भाई भी स्वाध्याय सघ के सदस्य बन कर स्वाध्याय का, भाई-बहनो को पर्वाराधन कराने का कार्य कर सकते है तो बालोतरा, बाडमेर, समदडी और अन्यान्य जगहो के पढे-लिखे बन्धु बडी ही आसानी से स्वाध्यायी बन कर स्व तथा पर के लिये महान् लाभ के कारण क्यो नही बन सकते?

यहाँ गृह-रक्षक दल (Home Guard) है। देशवासियो की जान-माल की रक्षा के लिये केवल फौज से काम नही चलता। जब सीमा पर अशान्ति होती है, तो गाव-गाव में रक्षा-दल तैयार होते

हैं। बाडमेर के पास आपने ऐसा मौका देखा कि नही ? दस-बारह वर्ष पहले जो बात हुई, वह भूले तो नही होगे। होमगार्ड के लोग ट्रेनिंग लेकर देश की रक्षा के लिये तैयार हो कर ग्राम-ग्राम की रक्षा करते थे।

जैन सस्कृति का सच्चा सरक्षक–स्वाध्याय सघ

सन्त–सती समाज भी जिनशासन की फौज है। जिनशासन की फौज तो है पर उसमे सिपाही कम हैं, बहुत थोडे है। उस फौज मे भर्ती तो होती है ओछी और सैनिक रिटायर होने वाले बहुत हो गये। बहुत से सिपाही पेशन माग रहे हैं। बडे लम्बे समय तक जिन-शासन की सिपाहीगिरी कर सत्तर वर्ष पार करके बैठे हैं। वे मोर्चे पर जाने का काम नही करते। कोई विशेष स्थिति हो तो काम पर लगाये जा सकते हैं। कुछ सैनिक रिटायर हो गये, कुछ पेन्शन पर है, कुछ रिक्रूट है, तो इस तरह हमारी भी फौज तो है पर है वह सख्या मे थोडी। दूसरी ओर हमारा घेराव, हमारा कर्मक्षेत्र, मैदान बडा लम्बा चौडा–सुविशाल है। अटक से कटक तक कोई इलाका बचा नही, जहा जैन भाई नही रहते हो। आज तो अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, बर्मा और अमेरिका जैसे देशो मे भी हमारे जैन भाई हैं। उन जैन भाइयो को, गाव गाव और खेडे-खेडे में बसे जैन भाइयो को भगवान् महावीर की वाणी सुनाने का साधन क्या ? एक ही साधन है, एक ही उपाय है कि होमगार्ड की तरह, गृह रक्षक दल की तरह स्वा-ध्यायियो के देशव्यापी ऐसे एक सुदृढ, सशक्त और सुसगठित सघ का गठन किया जाय, जिस स्वाध्याय सघ के, धर्म–सेना के, किंवा शान्ति-सेना के सेनानी और सैनिक देश-विदेश के कोने-कोने मे, नगर-नगर मे, डगर–डगर मे, गाँव-गाव मे भव ताप–सतापहारिणी जिनवाणी की पवित्र पीयूषमयी रसधारा प्रवाहित कर दें।

बालोतरा चातुर्मास को लक्ष्यपूर्ति

स्वाध्याय सघ का यही शखनाद पूरने के लिये, धर्माभ्युदय का यही बिगुल बजाने के लिये, जिनवाणी के प्रचार-प्रसार का यही सदेश सुनाने के लिये हमने बालोतरा मे चातुर्मास किया है। हम यहा का भोजन चखने के लिये, यहा की हवेलियाँ देखने के लिये

यहा नही आये हैं। बालोतरा मे चातुर्मास करने की घोषणा से पूर्व ही हमने अपना यह अभिप्राय बालोतरा सघ को सुना दिया था। विनती करने वाले सदस्यो ने और युवको ने उस समय सकल्प किया था स्वाध्यायी तैयार करने और स्वाध्याय सघ को सबल एव व्यापक बनाने का। अब इस पर्वाधिराज के केवल तीन दिन शेष रहे हैं। आपको अपना सकल्प पूरा करना है। इसमे यह नही हो कि मैं कहता जाऊ और आप सुनते रहे, मेरी आवाज इस कान सुने और उस कान निकाल दें। अब आपके जग जाने का समुचित समय है। समय रहते नही जगेंगे तो पीछे रह जायेंगे। एक छोटा सा जिला सवाई माधोपुर, वह पिछडा हुआ था, साधु-साध्वी भी वहा कम पहुँचते थे। कोटा से ठेट भरतपुर तक के क्षेत्र के जैन बन्धु प्रतिवर्ष पुकार करते कि हमारे क्षेत्र मे साधु-साध्वियो के चातुर्मास करवाइये पू नानालालजी म के पास, श्री पडितजी म के पास तथा औरो के पास भी उस क्षेत्र के बन्धुओ ने साधु-साध्वियो के चातुर्मास करवाने के लिये प्रार्थनाए की और वे कहते रहे—यह कैसी बात है कि हमारे क्षेत्र मे चातुर्मास नही करवाते। पर हम भी सैनिक लावें कहा से ? घट, भाण्डादि बनाने की प्रजापति की कला की तरह सैनिक निर्मित करने की लब्धि प्राप्त होती तो और बात थी, पर वह लब्धि है नही। सिद्धसेन दिवाकर के सम्बन्ध मे आपने सुना होगा। उन्हे चित्तौड मे ऐसी विद्या मिल गई थी कि सरसो के दाने अभिमन्त्रित करते और उनसे विशाल सेना का निर्माण कर देते। जितने सरसो के दाने अभिमन्त्रित करते, उतने ही सुसज्जित सैनिक प्रकट हो जाते थे। ऐसी तो कोई विद्या अथवा लब्धि हमे प्राप्त नही है। प्राप्त हो तो भी उसका प्रयोग करना हमे कल्पता नही, सहज मे हमे करना नही। तो कहा जावें ? आप लोग-भाई और बहनें ही सैनिक हैं। फिर आप लोग सैनिक बनने के लिये तैयार क्यो नही होते ? हम आपको महाव्रतधारी सैनिक बनने का नही कहते, अणुव्रतधारी सेवक ही बनो और हाथ मे झण्डा लेकर घर-घर मे अलख जगा दो। फिर देखिये आपकी शान्ति सेना कितनी सबल और सुविशाल बनती है।

सवाई माधोपुर ने तो अनेक स्वाध्यायी बनाकर भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे भेज दिये। क्या मैं आशा करु कि बाडमेर जिले

का भी ऐसा नम्बर आयेगा ? आप केवल सुन कर ही सतोष मत कर लीजिये। स्वय स्वाध्यायी बनिये और दूसरो को भी स्वाध्यायी बनाइये। पचपदरा मे इस वर्ष सन्त–सतियो का चातुर्मास नही हुआ। वहा के धर्मप्रेमियो ने स्वाध्यायी मागे और दो स्वाध्यायी वहा समय पर पहुँच गये। कहते हैं वहा १०० श्रद्धालु धर्माराधन–पर्वाराधन के लिये एकत्रित हो जाते हैं। वहा के भाई कहते हैं–"बावजी! बडा आनन्द आ रहा है।"

समय हो गया है। अन्त मे मैं यही कहना चाहता हू कि स्वाध्याय आदि सयम के चार चौकीदारो के साथ तप का आराधन करे, स्वय स्वाध्यायी बनकर तथा औरो को स्वाध्यायी बनाकर स्वाध्याय सघ को व्यापक एव सुदृढ बनायें। इस प्रकार जिनशासन की अभ्युन्नति मे सक्रिय सहयोग देते हुए आगे बढते जायेंगे तो आपकी आत्मा इहलोक मे भी और परलोक मे भी आनन्द और कल्याण की अधिकारी बनेगी।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

मुकन भवन, बालोतरा,
दिनाक २६-८-७६

षष्टम दिवस—दान दिवस—का
प्रवचन

प्रार्थना

अविनाशी अविकार, सहज रसधाम है।
समाधान सर्वज्ञ, सहज अभिराम है।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, अनादि अनन्त है।
जगत शिरोमणि सिद्ध, सदा जयवन्त है।

हा ! हम कोरे ही क्यो रह गये ?

वन्धुओ !

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व अपनी मगल प्रभावना को लिय तेजी से चला जा रहा है। आज पर्व का षष्टम दिवस है। वात की वात में ५ दिन निकल गये और आज छठा दिन भी जा रहा है। एक दिन बीच मे रहता है और रविवार को महापर्व है। अपन सोचते, वोलते और कुछ छोटे-मोटे नियम करते धीमी गति से चल रहे हैं पर यह पर्वराज वडी तेज गति से चला जा रहा है।

न मालूम, हमने, आपने ऐसे कितने महान् पर्व इस तन मे जाते देखे हैं ? किसी ने ५०, किसी ने ६० और किसी ने ७० ये महान् पावन पर्व जाते देख लिये। एक वार भी सच्चे मन से सही रूप मे इस महान् पर्व का आराधन कर लिया जाय तो वह जन्म-मरण के वन्धन को काटकर आत्मा को भवसागर से पार कर दे। ऐसे अजरामर स्थान पर पहुचा दे, जहा गया हुआ आत्मदेव जन्म, जरा, मृत्यु के दु खो से ओतप्रोत भवसागर मे पुन कभी नही लौटता। वही पतितपावन महान् पर्व, एक वार ही नही अनेक वार हमारे सामने आकर चला जाय और हम कोरे के कोरे ही रह जाय, तो यह हमारे लिये वडी ही गम्भीरतापूर्वक सोचने की वात

है, बडे ही दु ख और आश्चर्य की बात है। इसीलिये हमारे सामने यह सबसे बडा विचारणीय विषय है कि हम किस प्रकार सम्यक्तया पर्वाराधन कर अपनी आत्मा का अधिक से अधिक कल्याण करें। इस पर्व के जो दिन बीत गये, वे तो लौटकर नहीं आ सकते, पर्व का समय सीमित है अत हमे पर्व के रहे सहे दिनो का अधिकाधिक लाभ उठाना है। प्रत्येक आदमी के सामने विषय विचारो का अम्बार लगा पडा है। एक-एक विषय का विचार प्राय लम्बा चौडा है। हम लोग भी अपने एक-एक विषय की बात कहे तो उसके लिये पर्याप्त समय की आवश्यकता है। अन्तगड का विषय, कल्प का विषय, यह भी पर्व के दिनो मे आवश्यक है कि इनका वाचन हो। जो भाई रोज नही आते यह अलग विषय है।

दान-दिवस

इस महापर्व के पाच दिनो मे क्रमश ज्ञानदिवस, दर्शन दिवस, चारित्र दिवस, तप दिवस और सयम दिवस की बातें कही। कल सयम, स्वाध्याय की बात कही। अब दिन तो रहे हैं दो और विचारने की, कहने की बहुत बातें हैं। क्षमा का, आलोचना का दिन भी विचारणीय विषय है। आज सयम के बाद दान की बारी है, दान का नम्बर है। तप का एक अग तो बताया सयम और दूसरा अग है दान।

गृहस्थ के लिये दान का महत्व

दान का महत्व गृहस्थ के लिये अधिक है। साधु जीवन के दो अग बताये—सयम और तप। गृहस्थ जीवन के भी दो अग बताये-शील और दान। जो गृहस्थ शीलवान् नही है, सदाचारी नही है, द्रव्य का सदुपयोग सम्यक्रीति से नही करता तो उसकी तप आदि की क्रिया गौण है। और हमारे लिये द्रव्यदान गौण है। हम भी दान देते हैं और प्रतिदिन देते हैं। एक समय ही नही देते, कई बार देते हैं। ऐसा न सोचिये कि दान की बात हम केवल आपके लिये ही कह रहे हैं और हम केवल लेने की बात ही करते हैं, देने की बात नही करते। हम लोग सयम साधना के निर्वाह हेतु आवश्यक सामग्री लेते

है। हमने वणिक् कुल मे जन्म पाकर भी लेना कम सीखा है और देना ज्यादा सीखा है। आपने लेना ज्यादा सीखा है और देना कम सीखा है। आप दुधारू गाय को ही भरपेट चारा देंगे क्योकि वह आपको दूध देती है। जितने मूल्य का चारा आप उसे देते हैं, उससे अधिक मूल्य का दूध वह आपको देती है। जो गाय दूध नही देती, उसे आप दुधारू गाय जितना चारा नही देंगे। पर हम सतो का रवैया निराला है। जो हमे देता है, उसको भी हम देते हैं और जो हमे नही देता, उसको भी देते हैं। दोनो ही तरह के लोगो को उनके जीवन के लिये, उनकी आत्मा के लिये परमोपयोगी अमूल्य सम्पदा का दान हम समान रूप से देते है। आध्यात्मिक दान देते हैं, अन्तरग दान देते हैं।

लेकिन आपके पास अन्तरग दान की कमी है। वह साधन स्वय आपके पास ही कम है तो दूसरो को आप ज्ञान-दान क्या देंगे ? आप सयम-दान क्या देंगे, क्योकि स्वय आपके पास ही उसकी कमी है। बुद्धि का, आत्मबल का आप क्या दान देंगे ? क्योकि आपके पास उसका सग्रह नही है। आप उसका सचय नही कर पा रहे हैं। इस लिये आप ज्यादातर द्रव्यदान ही कर सकते हैं। मुख्यत आपके पास द्रव्यदान है और गौण रूप से आप शिक्षा-दान, ज्ञान-दान दे सकते हैं।

तो अब मैं सक्षेप मे, नपे-तुले शब्दो मे दान के सम्बन्ध मे आपके समक्ष कुछ विचार रखूगा कि वस्तुत दान क्या है और गृहस्थ के जीवन मे उसका क्या स्थान है, क्या महत्व है।

अणुव्रत आदि मे दान का स्थान

गृहस्थ के १२ व्रतो मे तो दान को स्थान मिला है बारहवा। पहले-पहल जो अणुव्रती होना चाहते है, वे इस बात का ध्यान रखे कि श्रावक के १२ व्रतो मे बारहवा व्रत है अतिथिसविभाग। इस व्रत मे १४ चीजें बताई हैं। जिनकी कि कोई तिथि नही, जिनके आने का कोई पता नही, ऐसे श्रमणो को उन वस्तुओ का दान देना श्रावक के बारहवें अतिथिसविभाग नामक व्रत मे दान बताया है।

दूसरे (पश्चाद्वर्ती) आचार्यों ने श्रावक के लिये प्रतिदिन आवश्यक कर्त्तव्यो में जो षट्कर्म बताये हैं, उनमे दान का छट्ठा स्थान है। षट्कर्म जो बताये गये हैं, वे इस प्रकार हैं।

१ देव-भक्ति, २ गुरू-सेवा, ३ स्वाध्याय
४ सयम, ५ तप और ६ दान

व्यवहार पक्ष मे जो मोक्ष-मार्ग बताया गया है, उसमें "दान, शियल, तप, भाव—ये चार नाम मोक्ष-मार्ग के लिये बताये गये हैं। तो इस प्रकार मोक्ष-मार्ग मे दान को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

इस प्रकार दान को व्रतो मे बारहवा स्थान, षट्कर्मो में छठा और मोक्षमार्ग में पहला स्थान दिया गया है। इससे आप समझ गये होगे कि दान भी एक बहुत बडे महत्व का स्थान रखता है। जैसा कि मैने कहा—गृहस्थ के लिये दान और शील का बडा स्थान है। तप करे, वह एक विशिष्ट कर्म है गृहस्थ का। यदि किसी गृहस्थ में शील और दान का गुण नही है, तो वह सद्गृहस्थ कहलाने का अधिकारी नही है। नीतिकार ने भी गृहस्थ के लिये कहा है—'शील पर भूषणम्।' अर्थात् शील सबसे बडा आभूषण है। प्रत्येक सद्गृहस्थ को शीलवान् रहना चाहिये, विषयवासना पर सयम रखना चाहिये। यदि वासना पर सयम नही है तो वह गृहस्थ लोक में सद्गृहस्थ कहलाने का अधिकारी नही है। आज शील पर कहने का प्रसग नही है। आज दान-दिवस है, इसलिये दान पर ही कहना है।

दान के भेद-प्रभेद

यो तो दान के अनेक भेद, प्रभेद हैं पर मुख्यत दो भेद हैं। दान का पहला भेद है द्रव्यदान और दूसरा भेद है भावदान। द्रव्य-दान के अनेक भेद हैं। हम पहले द्रव्यदान पर ही विचार करलें।

द्रव्य-दान का सीधा सा अर्थ है द्रव्य का दान। जल, अन्न, औषधि, वस्त्र, पात्र, पुस्तक, स्थान, धर्मोपकरण आदि—ये सब द्रव्य हैं, अत इनका दान द्रव्यदान कहलाता है। निर्ग्रन्थो की अपेक्षा कहा जाय तो गोचरी में अन्न देने वाले तो हर गाव के गृहपति मिल सकते हैं। पर अन्न की अपेक्षा जल का दान देने वाले कम मिलते हैं। जल

दाता की अपेक्षा औषधि का दान करने वाले कम मिलते है। औषधि का दान करने वाले भी मिल जाय पर वस्त्र, रजोहरण, पात्र के दान-दाता की योगवाई मिल पावे, वह तो बहुत ही कम है। क्योकि आप तो यह अच्छी तरह जानते हैं कि साधु-साध्वी को वही चीज लेनी है, जो उनके लिये बनाई नही गई है। उनके लिये खरीदी नही गई हो। यो तो प्रत्येक गृहस्थ पात्र आदि खरीद कर रख सकता है। शय्यादान देने वाले उनसे भी कम हैं। द्रव्यदानो में शय्यादान सबसे बडा माना गया है। तीर्थकरो के शय्यादाता और प्रथम पारणा-दाता के नाम मिलते है। आज तो योग से ही शय्यादान का मौका मिलता है। क्योकि आज हर जगह सामायिक भवन एव धर्म-स्थान बन गये हैं इसलिये सन्त-सतियो को ठहरने के लिये अपना स्थान देने का किसी गृहस्थ को प्राय अवसर ही नही आता। कोई शहर में दो मकान हो और भाडे किराये देने का मोह अथवा लोभ छोड रखा हो, तभी ऐसे लोगो को शय्यादान का लाभ मिल सकता है। इस तरह सभी प्रकार के द्रव्यदान में श्रमण निर्ग्रंथ के लिये शय्यादान सर्वश्रेष्ठ अथवा सबसे बडा माना गया है। शय्यादान की अपेक्षा भी लाख गुना अधिक ऊचा दान शिष्यदान है।

दान के १० भेद

इस तरह श्रमण, दान, द्रव्य और दानदाता के सम्बन्ध मे थोडी सी बातें सक्षेप मे आपके समक्ष रखी गई हैं। इसके अतिरिक्त स्थानाग सूत्र के १० वें स्थान मे दान के १० प्रकार बताये गये है। यथा —

"दसविहे दाणे पण्णत्ते त जहा—

बडी खूबी की बात है कि धर्मदान भी होते हैं और कई अधर्म-दान भी होते हैं अर्थात् धर्मजनक दान भी होते है और कई अधर्म-जनक दान भी होते हैं। धर्म को उत्पन्न करने वाला दान धर्मदान और अधर्म को उत्पन्न करने वाला दान अधर्मदान। हम यहा दान के ४ भेद कर देंगे। पहला धर्मजनक दान, दूसरा अधर्मजनक दान, तीसरा पुण्यजनक दान और चौथा आदान-प्रदान का परिपालन।

अब मैं शास्त्र का मूल पाठ आपको सुनाता हू।

दसविहे दाणे पण्णत्ते, त जहा ।
अणुकपा सगहे चेव, भये कालुणिएइ य ।
लज्जाए गारवेण च, अहम्मे पुण सत्तमे ।।
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते, काहीइ य कयति य ।।

अनुकम्पा-दान

ये दस बीजभूत दान के भेद कहे हैं । पहले-पहल कहा है--एक वह दान है, जिसमे किसी पशु, पक्षी अथवा मानव के दु ख को देख कर हृदय अनुकम्पा से द्रवित हुआ और अनुकम्पाभाव से उसका दु ख दूर करने का प्रयास किया जाय, दु ख दूर करने मे सहयोग दिया जाय । वह अनुकम्पादान कहलाता है ।

सग्रह-दान

दूसरा दान है–सग्रहदान । सेठ हनुमान जी के घर पुत्री की शादी हो रही है । इनकी जाति का नही, पाति का नही, फिर भी आगे के लिये व्यवहार-परम्परा चलाने के उद्द ेश्य से पडोसी सेठजी के पास आया और उसने बान मे अथवा कन्यादान मे २१)रु० चढा दिये । पडौसी ने इस प्रकार आगे के लिये सेठजी के घर से व्यवहार चालू कर दिया, परम्परा चालू कर दी । सेठ हनुमानजी को भी उस पडोसी के बालबच्चो की शादियो के अवसर पर अपने घर की प्रतिष्ठा के अनुरूप, अपनी पोजीशन का, अपने रुतबे का ध्यान रखते हुए कुछ न कुछ चढाना ही पडेगा । तो इस प्रकार उस पडोसी द्वारा दिया गया वह कन्यादान अथवा दान, सग्रहदान कहलायेगा ।

भय-दान

तीसरा दान है–भयदान । कोई हाकिम साहब आपके यहा आये, जिलाधीश आये अथवा उपजिलाधीश आये । उन्हे राष्ट्रीय-कोष एकत्रित करना है । कोष के लिये श्रीमन्तो से रुपया लेना है । वे बालोतरा के बाजार से निकले और श्रीमन्तो को सम्बोधित करने लगे--"बोलो बादरमल जी ! बोलो हनुमान जी! बोलो काकरियाजी ! अथवा अमुक-अमुक सेठजी! रक्षाकोष मे राशि जमा कराओ ।"

आप अपनी ही किसी सस्था से अथवा सस्था की ओर से, आपके यहा चन्दा करने के लिये आये हुए भाई से दस बातें पूछेंगे और कहेंगे-"बताजो देखा! थारो काई हिसाब किताब है।"

पर जब वे हाकिम आपसे कहेंगे-"सेठजी! हम रक्षाकोष इकट्ठा कर रहे हैं। बालोतरा नगर से इतनी धनराशि की पूर्ति करनी है।" तो क्या आप उनसे हिसाब-किताब पूछने की हिम्मत करेंगे? कोई प्रश्न पूछने का साहस करेंगे? नही। उन्हे तो आप तत्काल यही कहेगे, "जो हुक्म", "ठीक है साहब।" तो इस प्रकार के दान का नाम है भयदान।

कारुण्य-दान

चौथा दान है-कारुण्य-दान अथवा कारुणिक दान। यहा कारुणिक शब्द का प्रयोग करुणाभाव के अर्थ मे नही अपितु दैन्यभाव-दीनता के भाव के अर्थ मे हुआ है। घर मे किसी की मौत हो गई हो, गमी हो गई हो, उस समय भी दिया जाता है, गायो को चारा डाला जाता है, कबूतरो को अनाज डाला जाता है, ब्राह्मण भोजन आदि भी किया जाता है। जैन भाई भी इस तरह का दान करते हैं। इस प्रकार की शोक की स्थिति मे, अपने इष्ट जनो के वियोग मे, कुछ अपनी भावना से प्रेरित होकर और कुछ लोक-व्यवहार के कारण कि आपके पूर्वपुरुष भी ऐसा करते आये है, दान करते है।

अगर कोई विवेक वाला हो तो इन प्रसगो पर भी कुछ पुण्य का लाभ मिला सकता है और पाप के आरम्भ-समारम्भ से कुछ बचा सकता है। अगर विवेक नही है, तो लोक-प्रवाह मे बह सकता है। यह तो साधारण बात है। लोक-प्रवाह मे प्राय सभी बहते आये है और बह जाते है। तो इस प्रकार के शोक के प्रसगो पर किया गया उपर्युक्त प्रकार का दान कारुण्यदान है।

एक दान, मोहदान भी होता है, जिसका समावेश इसमे किया जा सकता है। मोहवश अपनी लडकी के प्रसव के समय मे भी खर्च किया जाता है। प्रसव के पश्चात् जब लडकी पीहर से ससुराल जाती है तो खाली हाथ विदा थोडे ही कर दिया जाता है। उस समय भी घर की, अपनी हैसियत के अनुसार कपडा, गहना आदि

दिया जाता है। दोहित्री की बजाय दोहित्र हो गया तो खर्चा और भी ज्यादा बढ जायगा। यह एक लोक की धारणा बन गई है, स्वार्थ-भावना हो गई है महाजनो की कि लडकी की अपेक्षा लडके के जन्म पर ज्यादा खुशी मनाई जायगी। दूसरे कई लोगो मे तो ऐसे भी सस्कार हैं कि उनके घर मे लडकी उत्पन्न ही नही हो तो अच्छा। आखिर इस प्रकार की स्थिति कब तक धकाते (चलाते) रहेगे, पता नही। क्योकि व्यावहारिक जगत् मे तो पिता की सम्पत्ति पर पुत्र के समान ही पुत्री का भी अधिकार मान्य हो गया है। पहले हिन्दू लॉ मे नही माना गया था पर जैन लॉ मे तो पिता की सम्पत्ति पर लडके के समान ही लडकी का भी बराबर अधिकार मान्य था। अब हिन्दू लॉ मे भी वही कर दिया गया है। तो लडकी के जन्म पर लडके के जन्म की अपेक्षा कम खुशी का होना अनुचित है, बडी बुरी बात है। लडकी के सम्बन्ध मे यह धारणा रहती है कि अमुक अमुक अवसर पर इतनी इतनी रकम खर्च करनी पडेगी। लडकी के विवाह के लिये बडी रकम इकट्ठी करनी होगी। १५-२० हजार का तिलक ले जाना पडेगा, विवाह के समय बारात को, सगे-सम्बन्धियो, इष्ट मित्रो और गाव वालो को खिलाना पडेगा, उनकी आवभगत करनी होगी। इस प्रकार लडकी के विवाह के लिये पर्याप्त पैसा एकत्रित करना होगा इस के विपरीत लडके की शादी होगी तो घर मे १५-२०हजार का तिलक आवेगा, गहना आवेगा, वस्त्र, बर्तन आदि बीसियो प्रकार की वस्तुए आवेंगी। लडकी के लिये समझते हैं कि वह थैली ले जावेगी और लडके के लिये समझते है कि वह थैली लावेगा। समझदार और सभ्य कहे जाने वाले समाज मे ऐसी भावना नही होनी चाहिये। घर मे लडका भी है और लडकी भी है, तो बराबर का सौदा हो जायगा। इसके साथ ही समाज मे जो कुरीतिया हैं, उनको दूर करने का प्रत्येक व्यक्ति को दृढ सकल्प करना चाहिये।

इस प्रकार स्थानाग सूत्र मे वर्णित दस प्रकार के दान मे से मैंने अनुकम्पादान, सग्रहदान, भयदान और दो प्रकार के कारुण्यदान के सम्बन्ध में सक्षेप में कुछ बाते रखी।

लज्जा दान

पाचवा दान है—लज्जादान। सभा मे बैठे हैं और चन्दे की

पानडी सामाजिक कार्यकर्त्ताओ ने चालू कर दी। अपना पडोसी मध्यम स्थिति का, मध्यम दर्जे का है पर उसने अच्छी ओली लिखा दी। सेठजी के सामने चन्दे का चिट्ठा गया तो बोले अच्छा भाई! मेरा भी इतना ही लिख लो। सामने वाले ने कहा–वाह सेठ साहब! इतना तो उस साधारण स्थिति वाले भाई ने भी लिखा दिया है। कहा आप, कहा वह। आपको इतना ही लिखाना शोभा नही देता। आपकी ओर से तो आपकी हैसियत के मुताबिक ही रकम होनी चाहिये। सेठजी को सभा मे अपनी लज्जा रखने के लिये कहना पडेगा—"अच्छा साहब! आपकी मर्जी है तो लो, इतना ज्यादा लिख लो।" तो यह लज्जादान है। मन मे दान देने की भावना नही है। धार्मिक क्षेत्र मे लज्जावश दान देते है, तो पुण्यलाभ कम हो गया। क्योकि इसमे भावो की विशुद्धि नही रही कि यह एक श्रेष्ठ काम है, इसमे मुझे इतनी धनराशि देनी चाहिये। इसमे दान देने की भावना स्वेच्छा से, दान देने की उमग से भरी नही रही, लज्जा के दवाव द्वारा, देने की भावना उत्पन्न की गई।

गर्व-दान

छठा दान है—गर्वपूर्ण दान अर्थात् अपने वडप्पन का खयाल करते हुए दान देना। कभी धर्मस्थान का काम हो, समाज का कोई काम हो, उसमे खडे होने का प्रसग आया तो देखेंगे कि मेरा दर्जा सवसे ऊचा होना चाहिये, तो चारो ओर देख कर, सिर ऊचा कर के सवसे अधिक राशि वोलेंगे–"५५११) रु० हमारे भी लिख लो।" तो इस प्रकार का वडप्पन वताने के लिये गर्व के साथ जो दान दिया जाता है, उसे गर्वदान कहा है।

लज्जा, भय और गर्व, इन तीनो के वशीभूत होकर यदि कोई दान देता है, तो उसके इस प्रकार के दान का लाभ कम हो जाता है। आज तो अधिकाशत यही देखा जाता है कि लोग वडप्पन वताने के लिये, अपने नाम के लिये दान देते हैं। एक आध जगह ऐसा काम पडा कि सामाजिक सस्था के कार्यकर्त्ता एक विशिष्ट सामाजिक कार्य के लिये एक करोडपति श्रीमन्त के पास गये। उस श्रीमन्त ने कहा—"हॉल पर मेरे पिताजी का नाम यदि लिखा जाय तो हॉल वनाने का

पूरा, खर्चा मैं दूगा, ५० हजार रुपया दूगा।" समाज के पदाधिकारियो ने कहा—"आपके पिताजी का नाम तो नही लिखा जा सकता।" इस पर उस श्रीमन्त ने कहा—"अच्छा तो फिर आप हमारे ५०००) रु० (पाच हजार रुपये) लिख लो।"

आज तो अमूमन इस प्रकार का सिलसिला चल पडा है कि दान के साथ लोग नाम, विज्ञापनबाजी और प्रसिद्धि चाहते हैं। ऐसे लोग प्रसिद्धि प्राप्त करने की लालसा मे धनराशि एकत्रित करने वाले कार्यकर्त्ताओ से, व्यवस्था करने वालो से लडने-झगडने भी लग जाते हैं। वास्तव मे यह दान का सही स्वरूप नही है।

अधर्म-दान

सातवा दान है—अधर्म-दान (अहम्मे)। दान के साथ जो यह अधर्म शब्द जोडा गया है, वह बडा चौंकाने वाला है। इससे प्रत्येक के मस्तिष्क मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है कि—"दान है तो अधर्म कैसे और अधर्म है तो दान कैसे ?" दान का अर्थ है—किसी वस्तु पर स्व स्वत्व के वर्जनपूर्वक पर स्वत्व स्वीकार करना अर्थात्—अपनी किसी वस्तु पर अपनी सत्ता छोड कर उस पर पराई सत्ता कर देना। दान का शाब्दिक अर्थ है—

"दीयते यत्तद्दानम्"

अर्थात् जो दिया जावे, उसका नाम दान है। श्री कृष्ण ने दान की परिभाषा की है, उसमे दान के तीन भेद किये हैं-तमोगुणी दान, रजोगुणी दान और सतोगुणी दान। इनमे से पहले दो तो वर्जनीय कहे हैं।

शादिया होती है, विवाह होते हैं, उनमे नाच-रग वाले आते है। उस वक्त अच्छे-अच्छे श्रीमन्त खुले हाथो से जो रुपया फैंकते हैं, यह आपकी देखी हुई अथवा अनुभव की बात है। किसी जमाने मे रडियो के नाच होते थे, तो उस समय उन पर लोग वार वार कर रुपये फैंकते थे। आज कल भागडा नाच होता है। बच्चे जानते हैं, शायद इनमे से कई नाचे भी होगे। कही गैर हो रही है, खेल हो रहा है, उसमे मुहल्ले की ओर से व्यवस्था है। फाग के रास का खेल हो

रहा है। उसकी व्यवस्था के लिये विचार करते समय अनुमान लगाया गया कि कुल मिला कर इतनी धनराशि खर्च होगी, इतने रुपयो की मिठाइया आयेगी, इतने-इतने की अमुक वस्तुए। तो उस समय गर्व के साथ एक व्यक्ति कहेगा कि लिख लो १०००) हमारे तो दूसरा कहेगा-लिख लो ५००)रु० हमारे। यह क्या हुआ? यह हुआ अधर्मदान। हिंसा जैसी गन्दी एव दूषित प्रवृत्तियो की जिस दान से प्रेरणा हो, वह दान अधर्मदान है। इस प्रकार के अधर्मदान मे आदमी गाठ का पैसा भी गँवाता है और पैसे की हानि के साथ-साथ अधर्म और पाप मिलाता है। इसीलिये महापुरुषो ने कहा है- "ओ गृहस्थो! यदि धर्म का उपार्जन करना चाहते हो, तो सदा अधर्म से बचते रहो। अधर्म से पैसा कमाया और अधर्म मे ही खर्च कर दिया, तो इस प्रकार की तुम्हारी क्रिया खून से भरे कपडे को खून से धोने के समान होगी। महा आरम्भ-समारम्भ कर उद्योग आदि द्वारा पाप कर के, हिंसा करके लाखो रुपया उपार्जित किया। हिंसा, झूठ, कपट, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि १८ पापो मे लिप्त होते हुए पैसा कमाया और वह पैसा लगावे भी पाप के कामो मे। खून से भरा कपडा फिर से खून में धोते हैं, तो यह कोई समझदारी का काम नही, कपडे की सफाई की बात नही। अधर्म एव अनीति से कमाया गया पैसा शादी-विवाह में खच कर दिया। बैंड बुलाकर दिखावे मे पैसा खर्च कर दिया। बैंड वालो मे प्राय सभी अपेय पीने वाले, मास खाने वाले होते है। इस प्रकार का दान अधर्मदान है।

धर्म दान

आठवा दान-"धम्मे य अट्ठमे वुत्ते"-धर्मदान है। अभयदान, सुपात्रदान, ज्ञानदान आदि-ये सब धर्मदान हैं। विभिन्न प्रकार के दानो में भी भगवान् ने अभयदान को सर्वश्रेष्ठ बताया है। शास्त्र म कहा है —

प्रथम श्रेणी का धर्मदान अभयदान

"दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण।"

अर्थात् सब प्रकार के दानो में अभयदान सर्वश्रेष्ठ है। अभय-दान का अर्थ है निर्भयता का दान, भयभीत को अभय बनाना।

अभयदान की सर्वोत्कृष्टता का उदाहरण

एक राजा के राज्य मे कुछ अपराधियो को, जो हत्या के अपराध के अपराधी थे, डाकाजनी करते थे, बडे प्रयत्न-प्रयास के पश्चात् पकडा गया। न्यायालय मे उन अपराधियो के विरुद्ध, हत्या, लूटमार आदि अपराध सिद्ध हो जाने पर राजा ने उन्हे फासी की सजा सुनाई। फासी के तख्ते पर चढाने से पहले उन हत्यारो के मु ह काले रग से, हाथ-पैर और शेष अग हरे रग से रगे गये। उन्हें जूतो की मालाए पहनाई गई। तदनन्तर उनको गधो पर उल्टे मु ह बैठा कर उनकी सारे शहर मे सवारी निकाली गई। उनके आगे और पीछे फूटे ढोल बजाये जा रहे थे। चारो ओर से लोग उन पर थूक रहे थे, उन्हे दुत्कार रहे थे। उन अपराधियो की सवारी जिस समय राज-महलो के पास से निकलने लगी, उस समय रानियो ने उन्हे देखा। राजरानियो को उनकी दयनीय दशा पर बडी करुणा आई। दया से द्रवीभूत हो रानियो ने दासियो से पूछा कि उन्हे इस प्रकार कहा ले जाया जा रहा है? दासियो ने कहा—"अन्नदाता! इन अपराधियो ने अनेक प्रजाजनो का खून किया है, इसलिये इन्हे फासी के तख्ते पर लटकाने के लिये फासी-घर ले जाया जा रहा है।" रानियो ने कहा— "जो मर गये, वे तो लौटने वाले नही हैं, फिर इन्हे मार कर मरने वालो की सख्या क्यो बढाई जा रही है?" दासियो ने उत्तर मे कहा—"राजराजेश्वरी जी! राजनीति का यही विधान है कि जो निरीहो, निरपराधो का खून करे, तो उस खून करने वाले का खून किया जाय।"

रानियो ने दासियो को आज्ञा देते हुए कहा—"महाराज के पास जाओ और हमारी ओर से प्रार्थना करो कि राजरानिया फर्याद कर रही हैं, माग कर रही हैं।" महारानियो की फर्याद तत्काल राजा के पास पहुचाई गई।

राजा ने देखा कि रानियो की माग की पूर्ति तो करनी ही होगी। आपके यहा भी घरो मे रानिया हैं। आपके घरो की रानिया छोटी-मोटी कोई माग रख दें, फर्माइश कर दें—"मेरी बाई पहली बार अठाई कर रही है, जोधपुर से बैंड मगवाओ।" आप अगर कहोगे "म्हारे तो पोषो है।" तो कहेगी—"पोषो धरियो रेवेला।" एक भाई

रहा है। उसकी व्यवस्था के लिये विचार करते समय अनुमान लगाया गया कि कुल मिला कर इतनी धनराशि खर्च होगी, इतने रुपयो की मिठाइया आयेगी, इतने-इतने की अमुक वस्तुए। तो उस समय गर्व के साथ एक व्यक्ति कहेगा कि लिख लो १०००) हमारे तो दूसरा कहेगा–लिख लो ५००)रु० हमारे। यह क्या हुआ? यह हुआ अधर्मदान। हिंसा जैसी गन्दी एव दूपित प्रतियो की जिस दान से प्रेरणा हो, वह दान अधर्मदान है। इस प्रकार के अधर्मदान मे आदमी गाठ का पैसा भी गँवाता है और पैसे की हानि के साथ-साथ अधर्म और पाप मिलाता है। इसीलिये महापुरुषो ने कहा है-"ओ गृहस्थो! यदि धर्म का उपार्जन करना चाहते हो, तो सदा अधर्म से बचते रहो। अधर्म से पैसा कमाया और अधर्म मे ही खर्च कर दिया, तो इस प्रकार की तुम्हारी क्रिया खून से भरे कपडे को खून से धोने के समान होगी। महा आरम्भ–समारम्भ कर उद्योग आदि द्वारा पाप कर के, हिंसा करके लाखो रुपया उपार्जित किया। हिंसा, झूठ, कपट, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि १८ पापो मे लिप्त होते हुए पैसा कमाया और वह पैसा लगावे भी पाप के कामो में। खून से भरा कपडा फिर से खून में धोते है, तो यह कोई समझदारी का काम नही, कपडे की सफाई की बात नही। अधर्म एव अनीति मे कमाया गया पैसा शादी-विवाह में खच कर दिया। बैंड बुलाकर दिखावे मे पैसा खर्च कर दिया। बैंड वालो में प्राय सभी अपेय पीने वाले, मास खाने वाले होते है। इस प्रकार का दान अधर्मदान है।

धर्म दान

आठवा दान–"धम्मे य अट्ठमे वुत्ते"–धर्मदान है। अभयदान, सुपात्रदान, ज्ञानदान आदि–ये सब धर्मदान हैं। विभिन्न प्रकार के दानो में भी भगवान् ने अभयदान को सर्वश्रेष्ठ बताया है। शास्त्र म कहा है —

प्रथम श्रेणी का धर्मदान अभयदान

"दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण।"

अर्थात् सब प्रकार के दानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ है। अभय-दान का अर्थ है निर्भयता का दान, भयभीत को अभय बनाना।

अभयदान की सर्वोत्कृष्टता का उदाहरण

एक राजा के राज्य मे कुछ अपराधियो को, जो हत्या के अपराध के अपराधी थे, डाकाजनी करते थे, बडे प्रयत्न-प्रयास के पश्चात् पकडा गया। न्यायालय मे उन अपराधियो के विरुद्ध, हत्या, लूटमार आदि अपराध सिद्ध हो जाने पर राजा ने उन्हे फासी की सजा सुनाई। फासी के तख्ते पर चढाने से पहले उन हत्यारो के मु ह काले रग से, हाथ-पैर और शेष अग हरे रग से रगे गये। उन्हें जूतो की मालाए पहनाई गई। तदनन्तर उनको गधो पर उल्टे मु ह बैठा कर उनकी सारे शहर मे सवारी निकाली गई। उनके आगे और पीछे फूटे ढोल बजाये जा रहे थे। चारो ओर से लोग उन पर थूक रहे थे, उन्हे दुत्कार रहे थे। उन अपराधियो की सवारी जिस समय राज-महलो के पास से निकलने लगी, उस समय रानियो ने उन्हे देखा। राजरानियो को उनकी दयनीय दशा पर बडी करुणा आई। दया से द्रवीभूत हो रानियो ने दासियो से पूछा कि उन्हें इस प्रकार कहा ले जाया जा रहा है? दासियो ने कहा—"अन्नदाता! इन अपराधियो ने अनेक प्रजाजनो का खून किया है, इसलिये इन्हें फासी के तख्ते पर लटकाने के लिये फासी-घर ले जाया जा रहा है।" रानियो ने कहा—"जो मर गये, वे तो लौटने वाले नही हैं, फिर इन्हें मार कर मरने वालो की सख्या क्यो बढाई जा रही है?" दासियो ने उत्तर मे कहा—"राजराजेश्वरी जी! राजनीति का यही विधान है कि जो निरीहो, निरपराधो का खून करे, तो उस खून करने वाले का खून किया जाय।"

रानियो ने दासियो को आज्ञा देते हुए कहा—"महाराज के पास जाओ और हमारी ओर से प्रार्थना करो कि राजरानिया फर्याद कर रही हैं, माग कर रही है।" महारानियो की फर्याद तत्काल राजा के पास पहुचाई गई।

राजा ने देखा कि रानियो की माग की पूर्ति तो करनी ही होगी। आपके यहा भी घरो मे रानिया हैं। आपके घरो की रानिया छोटी-मोटी कोई माग रख दें, फर्माइश कर दें—"मेरी बाई पहली वार अठाई कर रही है, जोधपुर से बैंड मगवाओ।" आप अगर कहोगे "म्हारे तो पोषो है।" तो कहेगी—"पोषो धरियो रेवेला।" एक भाई

जोधपुर से यहा आये । ८ दिन यहा रहने का विचार था । पर आकर कहा—"वावजी ! म्हारी वेटी अठाई कर रही है । कैवे है के जोधपुर जाणो पडी ।" राणीजी का हुक्म मानकर विस्तर गोल किये और जोधपुर चले गये ।

राजा अपनी रानियो की फर्माइश सुनने रणवास मे गया तो पहली रानी ने कहा—"महाराज ! मेरी ओर से इन अपराधियो को एक दिन की छुट्टी मिले । आज का इनका भोजन मेरे यहा ही होगा ।"

प्रेम से मन को वदला भी जा सकता है । अहिंसा मे वस्तुत अचिन्त्य शक्ति है । महावीर की अहिंसा को गाधी ने पकडा और तोप तलवार की वहुत वडी ताकत अहिंसा के अमोघ शस्त्र के समक्ष झुक गई । हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो गया और ससार पर अहिंसा की सदा के लिये छाप जम गई । विनोवा भावे ने उस अहिंसा को थोडा और जोर से पकडा है । काग्रेस का तो यह अभिमत है कि वहुजन-हिताय, वहुजन-सुखाय—अर्थात् वहुत से आदमियो के हित एव सुख के लिये वडे-वडे पू जीपतियो की इमारतो को गिरा दिया जाय तो कोई हानि नही । नीचे वालो को उठाया जाय । पर भगवान् महावीर ने कहा—सर्वजनहिताय-सवके हित के लिये काम किया जाय, वही अहिंसा है । अहिंसा की इस छाप को गहरा जमाने के लिये विनोवा जी प्रयास कर रहे हैं । उनका कुछ वर्षो से यह प्रयास चल रहा है कि डाकुओ के मन को वदला जाय । आपको सुनकर ताज्जुव होगा, आप जैन है पर आपको पता नही है, आप लोग तो भाई-भाई मे परस्पर झगडा हो जायगा तो मार-पीट करेंगे । कोर्ट मे जावेंगे । पर देश मे ऐसे लोग भी विद्यमान हैं, जो डाकुओ को सुधार रहे है, सुधारने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं । अभी-अभी आपने पत्रो म पढा होगा कि ५० डाकू आत्मसमर्पण कर रहे है और सरकार की ओर मे भी उनके लिये मान्यता प्रदान कर दी गई है । अहिंसक दल भी काम कर रहे हैं, वे गोली, वन्दूक, रिवाल्वर और सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र छोड कर काम कर रहे है । यह ताकत अहिंसा मे है ।

राजा की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर पहली रानी ने उन खूंख्वार डाकुओ को अपने यहा वुलाया और उन्हें खिलाने-पिलाने मे

पश्चात् एक-एक सौ मोहरे देकर विदा किया। दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उन अपराधियो को बुलाया। उन्हे खिला-पिला देने के पश्चात् तीन-तीन सौ मोहरे देकर विदा किया। तीसरे दिन तीसरी रानी ने भी उन्हें बुला कर खिलाने-पिलाने के पश्चात् छ-छ सौ मोहरे देकर विदा किया। मैं कथा का सक्षेप कर कह रहा हू। चौथे दिन सबसे छोटी रानी की बारी आई। उसने मन ही मन सोचा—"मुझसे बडी तीनो रानियो ने इन अपराधियो को कुल मिलाकर एक-एक हजार मोहरे दे दी हैं। मैं इन्हें कोई ऐसी अमूल्य वस्तु दू जिससे इनको बहुत बडा लाभ हो और इनका मानव-जीवन सफल हो जाय। सोच-विचार के पश्चात् उसने अभयदान को सबसे बडा दान समझ कर उन अपराधियो को अपने यहा बुलाया। उन्हे बडे प्रेम से खिलाने-पिलाने के पश्चात् छोटी रानी ने महाराज से निवेदन किया—"स्वामिन्! मैं इन अपराधियो को देने के लिये धन-दौलत कुछ भी नही मागती। मैं तो एक ही वस्तु मागती हू। क्या आप प्रसन्न हो वह वस्तु देंगे?"

राजा ने कहा—"बोलो देवी! मैं तुम्हे तुम्हारी अभीप्सित वस्तु अवश्य दूगा।"

छोटी रानी ने कहा—"महाराज! इन सभी अपराधियो को प्राणदण्ड न देकर अभयदान—जीवन-दान प्रदान करने की कृपा करे।"'

राजा ने छोटी रानी की दयालुता और बुद्धिमत्ता की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए उन सभी अपराधियो का प्राणदण्ड निरस्त कर उन्हे अभय-प्रदान के साथ-साथ कारागार से मुक्त कर दिया। अपने जीवनदान की राजाज्ञा को सुनते ही उन अपराधियो के अन्तर मे आनन्दसागर हिलोरे लेने लगा। उन्होने छोटी रानी के प्रति निस्सीम कृतज्ञता प्रकट करते हुए समवेत स्वरो मे जयघोष के साथ कहा—"छोटी रानी साहिबा करोड दीवाली तक राज करे, फले-फूलें, आनन्द करे।"

यह सुनकर पास ही खडे राजपुरुषो ने उन अपराधियो से पूछा—"जिन तीन महारानियो ने तुम मे से प्रत्येक को एक-एक

हजार स्वर्णमुद्राए प्रदान की, उनकी जय न बोलकर उस छोटी महारानी की जय बोल रहे हो, जिसने तुम्हे पाव रत्ती सोना भी नही दिया, इसका क्या कारण है ?"

अपराधियो ने कहा—"छोटी महारानी साहबा ने हमे ससार मे सबसे बडा दान—'अभयदान' दिया है, जो अनमोल है। सम्पूर्ण ससार का समग्र स्वर्ण तो क्या समस्त त्रिलोकी के एक-छत्र राज्य का दान भी अभयदान की तुलना मे तुच्छ है। सास है तो सब कुछ है, सास नही तो कुछ भी नही। यदि छोटी महारानीजी हमे जीवन-दान–अभयदान नही देती तो ये हजार-हजार मोहरे हमारे किस काम आती? प्राण पखेरू उड जाने के पश्चात् तो सब धन धूलि समान ही है। मौत के मु ह मे से निकाल कर इन्होने हम पर महान् उपकार किया है, इसलिये हम इनकी जय बोल रहे हैं।"

द्वितीय श्रेणी का धर्म-दान

इस आठवे दान—धर्मदान मे ही अभयदान के पश्चात् दूसरा स्थान आता है सुपात्रदान का। साधु-साध्वियो को दिया गया दान, सुपात्रदान की पहली श्रेणी मे आता है। कवि ने अपने शब्दो मे कहा है—

सुपात्रदान के तीन भेद कर लेना,
साधु श्रावक समदृष्टि को देना।
ज्ञानदान और अभयदान रस लीजे,
पात्रदान के भूषण ध्यान धर
चित्त वित्त है पात्र की महिमा भाई,
षट्कर्माराधन की करो कमाई ॥
कहे मुनीश्वर सुनो बहन और भाई,
षट्कर्माराधन की करो कमाई ॥

सुपात्रदान के–जघन्य, मध्यम और उत्तम– ये तीन भेद किये गये है। सुपात्र का मतलब है—जो आत्मा रत्नत्रय की आराधना करने वाली हो। रत्नत्रय कहा उत्पन्न होते हैं ? रत्नत्रय की उपजाऊ भूमि है आत्मा। तो पहले पात्र तो रहे साधु। वे निरारम्भी और अपरिग्रही होने चाहिये, जिन्होने अनन्त जीवो को अभयदान दे

दिया है और अनन्त जीवो को अभयदान दिलाने वाले हैं इसीलिये सत्पात्रो मे सर्वप्रथम श्रेणी मे साधु-साध्वियो को, पच महाव्रत-धारियो को गिना गया है ।

सत्पात्र की दूसरी श्रेणी मे आते हैं अणुव्रतधारी । जो भाई-बहन बारह व्रतधारी बने हैं, यथाशक्ति कुछ आगारो के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह आदि की आराधना करते हैं, गुरु और धर्म की आराधना करते हैं, वे मध्यम दर्जे के सत्पात्र अथवा सुपात्र है । वे गृहस्थ जीवन मे रह कर भी आपके सहधर्मी हैं । उनके साथ आपका खून का रिश्ता नही, खून की वात्सल्यता नही, सहधर्मी की वात्सल्यता है । आपके घर पर जवाई आया, अथवा आपके परि-वार का परमप्रिय परिजन आया, तो आप कहेंगे—'आज तो मैं व्याख्यान मे नही आऊगा, मेरे जवाई आये हैं, प्रिय परिजन आये हैं ।" दूसरी ओर उसी समय यदि आपके यहा आपका सहधर्मी बन्धु आ जाय तो आप ही अपने हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि क्या आपके मानस मे सच्चे प्रेम की रसधारा प्रवाहित होगी ? पर धर्मा-चार्य कहते हैं कि सहधर्मी के मिलने पर स्वजन-मिलन की अपेक्षा भी अधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिये । मानव के लिये तो यह परम आवश्यक है कि वह धर्म के सम्बन्ध को सर्वाधिक महत्व दे । खून का सम्बन्ध तो पशु-पक्षी भी रखते हैं । आपके यहा कोई आवे तो सबसे पहले आप उसकी जाति पूछते हैं कि वह ओसवाल है कि खण्डेलवाल अथवा अग्रवाल आदि जाति का । आगन्तुक का धर्म भी जैन है, इस बात को आप कितना भूल गये है, यह आपके सोचने की बात है ।

श्रावक सुदर्शन के जीवन से प्रेरणा लें

अभी आपने अन्तगडदशा सूत्र के वाचन के समय सुना कि इधर से सुदर्शन श्रेष्ठी भगवान् महावीर के दर्शन एव उपदेश-श्रवण के लिये प्रभु के समवसरण की ओर जा रहा है । उधर से भारी-भरकम मुद्गर हाथ मे लिये, क्रोध से दातो को पीसता हुआ, कराल काल के समान अर्जुन माली उसे मारने के उद्देश्य से सम्मुख आता है । मुद्गर का प्रहार करने के लिये आते हुए अर्जुन माली को देख कर श्रेष्ठी सुदर्शन शान्त मुद्रा मे, निर्वैर भाव से स्थिर हो प्रभुस्मरण

हजार स्वर्णमुद्राए प्रदान की, उनकी जय न वोलकर उस छोटी महारानी की जय वोल रहे हो, जिसने तुम्हे पाव रत्ती सोना भी नही दिया, इसका क्या कारण है ?"

अपराधियो ने कहा—"छोटी महारानी साहवा ने हमे ससार मे सवसे वडा दान—'अभयदान' दिया है, जो अनमोल है। सम्पूर्ण ससार का समग्र स्वर्ण तो क्या समस्त त्रिलोकी के एक-छत्र राज्य का दान भी अभयदान की तुलना मे तुच्छ है। सास है तो सव कुछ है, सास नही तो कुछ भी नही। यदि छोटी महारानीजी हमे जीवन-दान—अभयदान नही देती तो ये हजार-हजार मोहरें हमारे किस काम आती? प्राण पखेरू उड जाने के पश्चात् तो सव धन धूलि समान ही है। मौत के मु ह मे से निकाल कर इन्होने हम पर महान् उपकार किया है, इसलिये हम इनकी जय वोल रहे हैं।"

द्वितीय श्रेणी का धर्म-दान

इस आठवें दान—धर्मदान मे ही अभयदान के पश्चात् दूसरा स्थान आता है सुपात्रदान का। साधु-साध्वियो को दिया गया दान, सुपात्रदान की पहली श्रेणी मे आता है। कवि ने अपने शब्दो मे कहा है—

सुपात्रदान के तीन भेद कर लेना,
साधु श्रावक समदृष्टि को देना।
ज्ञानदान और अभयदान रस लीजे,
पात्रदान के भूषण ध्यान धर
चित्त वित्त है पात्र की महिमा भाई,
षट्कर्माराधन की करो कमाई ॥
कहे मुनीश्वर सुनो वहन और भाई,
षट्कर्माराधन की करो कमाई ॥

सुपात्रदान के—जघन्य, मध्यम और उत्तम—ये तीन भेद किये गये है। सुपात्र का मतलव है—जो आत्मा रत्नत्रय की आराधना करने वाली हो। रत्नत्रय कहा उत्पन्न होते हैं ? रत्नत्रय की उपजाऊ भूमि है आत्मा। तो पहले पात्र तो रहे साधु। वे निरारम्भी और अपरिग्रही होने चाहिये, जिन्होने अनन्त जीवो को अभयदान दे

दिया है और अनन्त जीवो को अभयदान दिलाने वाले है इसीलिये सत्पात्रो मे सर्वप्रथम श्रेणी मे साधु-साध्वियो को, पच महाव्रत-धारियो को गिना गया है।

सत्पात्र की दूसरी श्रेणी मे आते हैं अणुव्रतधारी। जो भाई-बहन बारह व्रतधारी बने है, यथाशक्ति कुछ आगारो के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एव अपरिग्रह आदि की आराधना करते हैं, गुरु और धर्म की आराधना करते हैं, वे मध्यम दर्जे के सत्पात्र अथवा सुपात्र है। वे गृहस्थ जीवन मे रह कर भी आपके सहधर्मी हैं। उनके साथ आपका खून का रिश्ता नही, खून की वात्सल्यता नही, सहधर्मी की वात्सल्यता है। आपके घर पर जवाई आया, अथवा आपके परिवार का परमप्रिय परिजन आया, तो आप कहेंगे—"आज तो मैं व्याख्यान मे नही आऊगा, मेरे जवाई आये है, प्रिय परिजन आये हैं।" दूसरी ओर उसी समय यदि आपके यहा आपका सहधर्मी बन्धु आ जाय तो आप ही अपने हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि क्या आपके मानस मे सच्चे प्रेम की रसधारा प्रवाहित होगी ? पर धर्माचार्य कहते हैं कि सहधर्मी के मिलने पर स्वजन-मिलन की अपेक्षा भी अधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिये। मानव के लिये तो यह परम आवश्यक है कि वह धर्म के सम्बन्ध को सर्वाधिक महत्व दे। खून का सम्बन्ध तो पशु-पक्षी भी रखते हैं। आपके यहा कोई आवे तो सबसे पहले आप उसकी जाति पूछते हैं कि वह ओसवाल है कि खण्डेलवाल अथवा अग्रवाल आदि जाति का। आगन्तुक का धर्म भी जैन है, इस बात को आप कितना भूल गये हैं, यह आपके सोचने की बात है।

श्रावक सुदर्शन के जीवन से प्रेरणा लें

अभी आपने अन्तगडदशा सूत्र के वाचन के समय सुना कि इधर से सुदर्शन श्रेष्ठी भगवान् महावीर के दर्शन एव उपदेश-श्रवण के लिये प्रभु के समवसरण की ओर जा रहा है। उधर से भारी-भरकम मुद्गर हाथ मे लिये, क्रोध से दातो को पीसता हुआ, कराल काल के समान अर्जुन माली उसे मारने के उद्देश्य से सम्मुख आता है। मुद्गर का प्रहार करने के लिये आते हुए अर्जुन माली को देख कर श्रेष्ठी सुदर्शन शान्त मुद्रा मे, निर्वैर भाव से स्थिर हो प्रभुस्मरण

मे लीन हो जाता है। श्रेष्ठी सुदर्शन को अदृष्टपूर्व धैर्य, निर्भयता और शान्ति के साथ निश्चल भाव से खडे देख कर मुद्गर प्रहार के लिये उठा अर्जुन माली का हाथ उठा का उठा ही रह जाता है। अर्जुन माली के शरीर मे प्रविष्ट हुआ मुद्गरपाणि यक्ष भी सुदर्शन के अनुपम आत्मवल के समक्ष अपनी हार मान, हतप्रभ हो, मुद्गर को एक ओर पटक अर्जुन के शरीर को सदा के लिये छोड पलायन कर जाता है। यक्ष के प्रभाव से निर्मुक्त अर्जुन सुदर्शन श्रेष्ठी से पूछता है—"श्रेष्ठिवर ? आप कहा जा रहे है ?"

सुदर्शन ने उत्तर दिया—"भद्र ! मैं विश्ववन्धु श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन एव उपदेशामृत का पान करने प्रभु के समवसरण मे जा रहा हू। अर्जुनमाली अव तक प्रकृतिस्थ हो गया था। उसने कहा—"मै भी आपके साथ चलना चाहता हू।"

हत्यारे का साथ करना, उसके साथ चलना कोई नही चाहेगा। अर्जुन ने अनेक नागरिको के पिता, पुत्र, पौत्र, माता, भगिनी, पुत्री, पुत्रवधु आदि सम्वन्धियो को मारा था। प्रत्येक नागरिक उसके आतक से आतकित था। सभी नागरिक उससे घृणा करते थे। पर सुदर्शन ने सोचा—"यह मेरे साथ भगवान् की सेवा मे चलना चाहता है, बडा शुभ लक्षण है। प्रभु के अज्ञानतिमिरनाशक, भव-ताप-सतापहारी उपदेशामृत का पान कर यह धर्ममार्ग पर आरूढ होगा और मेरा धर्म-भाई वनेगा, धर्मवन्धु वनेगा।" सुदर्शन ने अर्जुन से कहा—" वडी प्रसन्नता की वात है। जगदेकशरण्य प्रभु की शरण मे मेरे साथ अवश्य चलो। यह कह कर सुदर्शन अर्जुन माली को साथ ले भगवान् के समवसरण की ओर वढा। उसके मन मे हर्ष है कि वह एक दिग्भ्रान्त मानव को अपना धर्मवन्धु वनाने ले जा रहा है। अर्जुन अभी उसका भाई वना नही है, सुदर्शन उसे भाई वनाने ले जा रहा है, फिर भी उसके मन मे कितनी प्रसन्नता है ?

क्या आप भी कभी किसी को धर्म भाई, धर्म वन्धु वनाने के लिये धर्म सभा मे लाये है ? आपकी दुकान पर, आपकी पेढी पर कौन-कौन नही आते ? ब्राह्मण भी आते हैं, राजपूत भी आते हैं, अन्यान्य प्राय सभी जातियो के लोग आते हैं। हिंसक भी आते हैं, अहिंसक भी आते है, मद्यपी भी आते हैं, मासभोजी भी आते है।

क्या आपने कभी उन लोगो के सामने धर्म की बात की है, सुधारने का कभी प्रयास किया है ? भेड-ऊन वाला ने पइसा देवरण रो काम पडियो के नही ? मेरे तो मन मे विचार आया कि ओसवालो के यहा जितने लोग बकरिया रखते हैं, उनके यहा जो बकरे होते हैं, उनका क्या करते हैं ?

(अनेक श्रोताओ ने उत्तर दिया-"अमरिया करते हैं !")

महान् लाभ

अगर किसी को बेचते नही तो यह ठीक है। अच्छा हुआ स्पष्ट कर लिया। तो जिस प्रकार अपने यहा के पालतू बकरी के बच्चो के लिये आपका खयाल है, उसी तरह अन्य बकरो के लिये भी होना चाहिये। भेड, ऊन वालो को पैसे देने का आपमे से बहुतो का धन्धा है। क्या आपने उनको कभी यह सलाह दी है कि वे कसाइयो को बकरे न बेचें। उचित मूल्य पर जीवदया के क्षेत्र मे काम करने वाली सस्थाओ को दे दिया करे, जिससे कि वे सस्थाए उन बकरो को अमरिये बनाकर पशु सरक्षकशालाओ मे रखकर उनके चारा पानी की समुचित व्यवस्था कर दे। भेड-बकरी रखने वाले लोगो से सपर्क बनाये रख कर आप इस प्रकार का सिलसिला चलाये। यदि वे लोग समझाने पर भी न माने तो ऐसे लोगो को बिणजना ही बन्द कर देना चाहिये। ऐसे लोगो को बिणजणा ही है तो उन्हे इस प्रकार जीवदया की ओर आकर्षित एव प्रोत्साहित करना चाहिये कि वे कसाइयो के हाथो बकरो और मेढो को न बेचें। यदि आपको द्रव्यार्जन के साथ-साथ धर्म का उपार्जन करना है तो इस प्रकार का जीवदया का सिलसिला प्रारम्भ कीजिये। यदि आपने ऐसा नही किया और इन लोगो को विणजते रहे तो ऐसी परिस्थिति भी हो सकती है कि आठ आना सैकडा की ब्याज की दर से अथवा रुपया सैकडा की दर से आपकी ५००)रु० अथवा इससे ज्यादा रकम चढ गई और आप अपनी रकम की वसूली का तकाजा करेंगे तो भेड बकरी वाले, ऊन वाले, आपको यही कहेंगे कि बाजार मे छोटे छोटे-जन्मते ही (सद्यप्रसूत) वकरे और हुडिये विकने वाले हैं। अमुक कसाई ऐसे नवजात उरणियो और घेटो से एक ट्रक भर कर बम्बई ले जा रहा है, उसे वेच कर आपकी रकम अदा कर दूगा। आप ही सोचिये, क्या

आप इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जीवहिंसा के पाप से वचे रह सकेगे ? समाज के प्रत्येक व्यापारी की यदि इस प्रकार की नीति होगी कि कसाइयो के हाथ वकरे न वेच कर जीव दया के क्षेत्र मे काम करने वाली सस्थाओ को वेचने वाले लोगो को ही विणजेगे तो सैकडो ही नही हजारो निरीह मासूम पशुओ को अभयदान दे कर आप महान् पुण्य के भागी वन सकेगे।

यह अभयदान की वात हुई। यदि इस क्षेत्र मे काम करने वाला एक एक भाई विचारवान् हो, विवेक से काम ले, तो कम खर्च मे अहिंसा की अभिवृद्धि कर महान् पुण्य अर्जित कर सकता है।

इस प्रकार सुपात्रदान की दो श्रेणियो के सम्वन्ध मे मैंने कुछ विचार आपके समक्ष रखे कि सुपात्रदान की पहली श्रेणी मे आता है साधु-साध्वियो को दिया जाने वाला दान और दूसरी श्रेणी मे आता है वारह व्रतधारी को दिया जाने वाला दान। इसकी तीसरी श्रेणी मे उस दान की गणना की जाती है, जो किसी भी समदृष्टि को दान किया जाय।

दान के सम्वन्ध मे मैं श्री कृष्ण को वात, गीता की वात आप को कह रहा था, वह सम्भवत आपके मस्तिष्क से निकली तो नही होगी। श्री कृष्ण ने दान के सभी भेद-प्रभेदो अथवा वर्गो की श्रेष्ठता का समुच्चय रूप से मापदण्ड वताते हुए किस प्रकार का द्रव्यदान सात्विक और हितकर है, इस सम्वन्ध मे गीता मे कहा है —

दातव्यमिति यद्दान, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दान सात्विक स्मृतम् ॥

उपकार अथवा प्रत्युपकार की भावना से रहित, विना किसी सम्वन्ध अथवा रिश्ते का खयाल किये, उचित देश एव काल मे, दान देना है, केवल इस भावना से योग्यपात्र को विना प्रतिफल की आकाक्षा किये जो दान दिया जाय, वही सात्विक दान है।

दान देते समय प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक दानदाता यही सोचे कि उसने आरम्भ-समारम्भ कर के पैसा कमाया है, तो उसे उस पैसे से धर्म भी करना चाहिये, उपकार भी करना चाहिये। कोई आदमी यह सोचे "मैंने खाना खाया है, पर मल-विर्सजन नही करू गा।" तो

मल-विसर्जन न करने की दशा मे कितना बुरा परिणाम होगा ? उसके पेट मे खराबी पैदा होगी और अनेक रोगो से ग्रस्त हो अन्ततोगत्वा मृत्यु को प्राप्त होगा। जिस प्रकार खाये हुए अन्न का विसर्जन अनिवार्य रूप से करना पडता है, उसी प्रकार कमाये हुए धन का भी दानादि मे विसर्जन करना परम आवश्यक है। पैसा तो वर्ष भर के ३६५ दिनो मे खूब कमाया पर दिया नही एक पैसा भी तो क्या दशा होगी? प्रतिदिन खाते रहकर भी मल-विसर्जन न करने वाले की जो गति होगी, वही प्रतिदिन कमाते रह कर भी दान नही करने वाले व्यक्ति की भी होगी। यह प्रकृति का अटल नियम है कि जो खाया है उसका विसर्जन करना होगा। कोई व्यक्ति केवल खाता ही रहे और मल-विसर्जन न करे, तो खाया हुआ अन्न पेट मे सडेगा। पेट मे अन्दर ही अन्दर सडाध पैदा होने से मृत्यु अवश्यभावी है। जिस तरह खाने के बाद मल-विसर्जन आवश्यक है, उसी तरह कमाये हुए धन में से दान देना भी परमावश्यक है। कमाया है तो दान भी अवश्य देना चाहिये। इस प्रकार आठवा दान हुआ धर्मदान।

'काहीइ'–प्रतिफल आकाक्षा–दान

नौवा दान स्थानागसूत्र के शब्दो में है "काहीइ"–अर्थात् यह मेरा काम करेगा, इसलिये मैं इसे दान दू। इस प्रकार का दान "काहीड" अर्थात् प्रतिफल आकाक्षा नामक नौवा दान है।

'कयति'–प्रत्युपकार–दान

दशवा दान स्थानाग सूत्र मे बताया गया है 'कयति" अर्थात् यह मेरा काम करता है, इसलिये मैं इसे दान दू। इस प्रकार वदला चुकाने की भावना से दिया गया दान प्रत्युपकार दान नामक दशवा दान है। इस प्रकार दान के ये कुल दश भेद हो गये।

दरिद्रान् भर

पहले जमाने मे लोग कहते थे–"हाथ पोला तो जगत गोला" आजकल महाजनी वृत्ति के लोगो ने सोच लिया है–"हाथ पोलो कठा ताई राखा। हाथ पोलो राखियो तो पोलो उतर जावेला।" इस तरह के विचार वालो ने समाज का जो पहले रुतबा था, उसे खत्म कर दिया है। आपके पूर्वज शादी–विवाह, जीमरण–सामूहिक भोज

आदि के समय अपने गाव अथवा नगर के सभी वर्गों के और खास तौर से ऐसे लोगो को, जिनका कोई सहारा नही, याद रखते थे, उन्हें बुलाते और प्रेम से, वात्सल्यभाव से खिलाते-पिलाते थे। उनकी इस प्रकार की उदार वृत्ति के कारण जैन समाज के प्रति सर्वत्र बडा सम्मान था। वे असहायो, विपन्नो एव अभावग्रस्तो का सदा पूरा ध्यान रखते थे। जरूरतमन्दो की सहायता करने मे वे प्रमोद अनुभव करते थे। आज दया की गोठ होती है तो जो लोग सम्पन्न हैं, उन्ही को जीमने की मनुहार की जाती है, उन्ही को खिलाया जाता है। जिनके पास सब कुछ है, उन्हें खिलाने मे वे कौनसा पुण्य अर्जित कर रहे हैं? सहधर्मी-वत्सलता बहुत अच्छा काम है, यह भी एक प्रकार का धर्म है, पर इसमे सदा यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि किसी को उसकी खुराक से ज्यादा खिलाने का हठाग्रह न किया जाय और जो साधारण वर्ग के बन्धु हैं, उनका विशेष खयाल रखा जाय। वाणी मे भी पूरी-पूरी उदारता हो और हाथ मे भी पूरी-पूरी उदारता हो।

बिना किसी उपकार, प्रत्युपकार एव फल की आकाक्षा करते हुए, इसी निस्वार्थ उदार भाव से कि मुझे देना है, जो दान उचित देश, काल मे योग्य पात्र को दिया जाता है, उसी दान को भगवान् महावीर ने सात्विक दान कहा है।

समाज के भाई-बहन भी निस्वार्थ भाव से द्रव्यदान एव भावदान द्वारा यथाशक्ति अपनी सम्पदा का सदुपयोग करते हुए अपने जीवन को ऊपर उठायेंगे तो वे इहलोक और परलोक मे कल्याण के भागी होगे।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

मुकन भवन, बालोतरा,
दिनाक २७-८-७६

सप्तम दिवस—का
प्रवचन

प्रार्थना

सावधान ! कही अध्यात्म-परीक्षा मे अनुत्तीर्ण न हो जाय

बन्धुओ !

पर्वाधिराज पर्युषण का आज सप्तम दिवस चल रहा है। इस सावत्सरिक महापर्व की भूमिका के रूप मे, तैयारी के रूप के पूर्वाचार्यो ने सात दिन रखे हैं। वह भूमिका आज समाप्त हो जायगी। कल हमारी आध्यात्मिक परीक्षा का वह महापर्व का दिन है। जिस दिन की भूमिका के इन सात दिनो मे, परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की पूरी तैयारी करने के पश्चात् आत्मकल्याण की साधना मे सफलता का श्रेय प्राप्त करना है, आगे के लिये आत्मशुद्धि के श्रेयस्कर मार्ग पर अपने आपको लगाना है, वह परीक्षा का दिन, वह हमारा मगलमय महापर्व सवत्सरी का दिवस अब बहुत नजदीक आ गया है। जिस दिन की प्रतीक्षा देव-देविया-देवपति इन्द्र और प्रत्येक सम्यग्दृष्टि जीव करता है। जिस दिन के लिये प्रत्येक सम्यग्दृष्टि जीव का यह लक्ष्य रहता है कि वह इस आध्यात्मिक परीक्षा मे सफलता का श्रेय प्राप्त करे, जिस दिन के लिये प्रत्येक सम्यग्दृष्टि जीव के अन्तर मे यह उत्कण्ठापूर्ण कसक रहती है-"कही ऐसा न हो कि मैं अपने जीवन की आध्यात्मिक साधना मे, सम्यग्दर्शन के पाये को, नीव को मजबूत करने मे और उपशमभाव को पाने मे कही पीछे न रह जाऊ।"

अन्तर मे कोई शल्य न रहने पावे

सम्यग्दर्शन का पाया मजबूत करने की एक सरल विधि है। वह यह है कि इस महापर्व की भूमिका के सात दिनो मे साधना द्वारा पूरी तैयारी कर इस पर्वाधिराज सावत्सरिक महापर्व की सम्यक्

प्रकार से आराधना की जाय। सवत्सरी के दिन वर्ष भर के अपने कार्यो का, अपनी जीवनचर्या का लेखा-जोखा कर, वर्ष भर मे किये गये पापो का प्रायश्चित्त अन्तर्मन से करते हुए सम्यग्दर्शन एव कषाय-विजय को जीवन का चरम एव परम लक्ष्य मान कर साधना के मार्ग मे निरन्तर बढते रहने का सकल्प करना। इसमे एक बात का पूरा पूरा ध्यान रखना होगा कि प्रतिपल, प्रतिक्षण कषायो से सावधान रहा जाय। क्योकि जब तक साधक छद्मभाव मे है, सकपायदशा मे है, तब तक चाहते, न चाहते हुए भी वह कपायो का शिकार हो जाता है, कषाय आ कर उस पर हावी हो जाते हैं, साधक के खुले दिमाग को, साधक की आत्मा को दबा देते हैं। और इसके परिणाम स्वरुप ज्ञानात्मा कषायो से अभिभूत हो कषायात्मा बन जाता है।

भगवान् महावीर ने कहा है—"ओ मानव ? तू अपने कर्मो पर स्वयमेव विजय भी प्राप्त कर सकता है।" वस्तुत कर्मो पर विजय प्राप्त करने के लिये, कषायो पर विजय प्राप्त करने के लिये ही यह साधना का क्रम, साधना की पद्धति बताई गई है।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की पहिचान

किसके अनन्तानुबन्धी कपाय नही हैं और किसके अन्त करण मे जमा कषायो का मैल खत्म नही हुआ है—इसकी एक छोटी सी परीक्षा, छोटी सी पहिचान दी गई है। वह परीक्षा अथवा पहिचान यह है कि जो वर्ष भर अपने मन मे रहे वैर भाव को, कपायो को निकालकर दूर न करे तो समझना चाहिये कि वहा सम्यक्त्व की विराधना हो रही है, वह साधक सम्यग्दर्शन से अभी बहुत दूर है। और जो साधक अपने मन मे रहे वैरभाव को, कपाओ को, सब प्रकार के शल्यो को तत्काल अथवा वर्ष भर के अन्दर-अन्दर हृदय से निकाल फेंके, प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण अथवा आलोचना द्वारा अन्तर के उस मैल को धोकर साफ कर दे, आत्मशुद्धि कर ले, तो समझना चाहिये कि उस साधक ने भव-भ्रमणान्तकारी महारत्न सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लिया है।

आत्मशुद्धिकारक औषधि-प्रायश्चित्त

केवल श्रमण-श्रमणी वर्ग ही नही अपितु जैन सघ का श्रावक-

वर्ग और श्राविकावर्ग भी इस पर्वराज के महान् मगलमय प्रसग पर अपनी आत्मशुद्धि का लक्ष्य लेकर चलता है। वह अगर इस महापर्व के अवसर पर भी सच्चे अर्थ मे आत्मशुद्धि नही कर पायेगा, मन के शल्यो को नही मिटा पायेगा, तो वस्तुत उस साधक के लिये यह बडा ही चिन्ता का विषय होगा। जो चिन्तनशील है, जिसके अन्त करण मे भवभ्रमण का भय है कि कही उसे जन्म-मरण के चक्कर मे फसे ही न रहना पडे, चौरासी लाख जीवयोनियो की उसकी फेरी कही बढे नही—इस बात की जिसे चिन्ता होगी, फिक्र होगी, वही आत्मा, वही साधक आत्मशुद्धि कर सकेगा, साधनापथ पर निरन्तर आगे बढते हुए अन्ततोगत्वा अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे सफलकाम होगा। इस महान् पर्व के प्रसग पर मन, वचन और कर्म से पापो का प्रायश्चित्त कर कषायो को दूर करने एव अन्तर के सभी प्रकार के शल्यो को विनष्ट करने से ही आत्मशुद्धि हो सकती है। अत भगवान् ने अनेक विध तप में एक तप प्रायश्चित्त भी कहा है।

प्रायश्चित शब्द का यदि शाब्दिक अथ किया जाय तो, प्राय का मतलब है पाप और चित्त का मतलब है शोधन। जिस क्रिया से, जिस साधना से, जिस तप से पापो का शोधन किया जाय, उस क्रिया का नाम है प्रायश्चित्त। चित्त को इसमे इसलिये भी जोडा है कि पापो के सस्कार चित्त मे ही जमा रहते हैं। प्राय अथवा पाप की विशुद्धि के, पाप के शोधन के, आलोचना एव प्रतिक्रमण—ये दोनो और तीसरा तप—ये तीन साधन हैं।

आत्म गुणो की आराधना ही पर्व का लक्ष्य

प्रायश्चित्त १० प्रकार का है। मोटे तौर पर आत्मशुद्धि के लिये पहला प्रायश्चित्त रखा है आलोचना। साधक आलोचनापूर्वक अपने अन्त करण मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करे। आराधना भी तीन प्रकार की है। वह है ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना। जिस प्रकार आराधना तीन प्रकार की है, उसी प्रकार आत्मा के गुण भी तीन है—ज्ञान, दर्शन और चारित्र। यहा आत्मा के ये तीन गुण बताते समय तप को चारित्र मे समाविष्ट कर लिया गया है। पहले जो तप की व्यवस्था की गई, उसमे यह अच्छी तरह

बता दिया गया है कि जो चारित्रवान् है, जो तप के साथ-साथ चारित्र की–सयम की आराधना करता है, उसी का तप वास्तविक तप है। यह चारित्र भी–सयम भी दो प्रकार का है—देश सयम और सर्व-सयम। जो साधक सर्व–सयम अर्थात् सर्वविरति–सयम की आराधना नही कर रहा है, केवल देश-विरति सयम का ही पालन कर रहा है, तो जिस प्रकार सर्व-सयम की आराधना करने वाले के लिये तप आराधन की आवश्यकता है, उसी प्रकार देश-सयम की आराधना करने वाले के लिये भी तप की आवश्यकता है। यह प्रत्येक साधक के लिये अनिवार्यरूपेण आचरणीय है कि वह तप कर रहा है तो तप के साथ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पापो के परित्याग रूपी सयम का आचरण करे। कोई भी साधक, चाहे वह देश सयम की आराधना करने वाला हो अथवा सर्व-सयम की आराधना करने वाला, जब तक वह पापो का निरोध नही करेगा, तब तक केवल एकाँगीन तप के आचरण से पाप नही काटे जा सकेंगे। जिस प्रकार सयम मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र–ये तीन आराधनाए सम्मिलित हैं, उसी प्रकार तप मे भी ज्ञान, दर्शन और चारित्र–इन तीनो आत्मगुणो की आराधनाए परम आवश्यक हैं।

आत्मशुद्धि के लिये यह निताँत रूपेण आवश्यक है कि हम और आप इस ससार–कानन मे, भयानक भवाटवी मे भटकते हुए, ससार के विषम वातावरण के कारण अपने ज्ञान, दर्शन और चारित्र–इन आत्मगुणो पर जो कचरा बढाते जा रहे हैं, दाग बढाते जा रहे हैं, उस कचरे को, उस मैल को बढने से रोकने के साथ-साथ जो पहले से कचरा जमा है, उसे साफ करे। ये पर्युषण पर्व के आठ दिन उस कर्ममल को नष्ट करने के लिये है। प्रत्येक साधक को प्रतिदिन और विशेषत इन पर्व के दिनो मे ज्ञान, दर्शन और चारित्र—इन तीन आत्मगुणो पर जमे हुए मैल को ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करते हुए नष्ट करने का और नये मैल को न जमने देने का निरन्तर प्रयास करना चाहिये, क्योकि कर्ममल को दूर करने के लिये ही ये पर्व के दिन रखे गये हैं।

बाह्य तप, साधना हेतु समय निकालने का साधन

तीन–चार दिन का तप कर लेते हैं, यह तो कर्ममल को साफ

करने का साधन है। क्योकि तप करने से हमारा समय बचेगा और उस समय को हम ज्ञान, दर्शन एव चारित्र की आराधना मे लगा सकेंगे। खाना हुआ तो पानी की जरूरत भी ज्यादा पडती है। दो बार खाना खायेंगे तो चार बार पानी पीना पडेगा। खाना खाने के पश्चात् थोडा लेटना भी होगा, घूमने के लिये भी जाना होगा, शौच-निवृत्ति के लिये भी जाना होगा, शरीरशुद्धि और कपडे बदलने मे भी समय व्यतीत होगा ही। इसके अतिरिक्त खाना खाया है तो निद्रा भी अधिक आयेगी। साथियो के साथ बैठे और मनुहार करने वाले हुए तो मिष्टान्न, मिर्ची बडे, पकौडी आदि ज्यादा खिला दिये तो पेट मे गडबड भी हो सकती है। मिर्ची तो पेट मे हलचल पैदा कर देती है। अक्सर लोग कहा करते हैं कि चमत्कार चाहिये। पर चमत्कार देखने दूर कहा जाना है। चमत्कार की चाह वाले अगुली के मिर्ची लगा कर आख मे आज ले, उन्हे तत्काल चमत्कार दिख जायेगा, तारे दिन मे ही दिख जायेंगे।

हा, तो मैं कह रहा था कि खाना खाया है और उसमे मिर्ची की पकौडी ज्यादा खा ली है, तो पेट मे गडबड हो सकती है और उसके फलस्वरूप दिन रात का अधिकाश समय शौचनिवृत्ति के लिये जाने-आने मे ही बीत सकता है। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना तो रही दूर, असमाधि की आराधना मे ही सारा समय व्यर्थ चला जायगा। जिस दिन दया करते हैं, उस दिन धर्मध्यान मे, माला मे, जाप मे कितना मन लगता है और जिस दिन पौषध करते हैं, उस दिन कितना अधिक मन लगता है, यह आपसे छुपा नही, यह तो आपके अनुभव की बात है। पौषध करने वाला ज्ञान, ध्यान मे, स्वाध्याय मे कितना लगा रहता है, यह तो उस व्यक्ति की लगन पर, मनोवृत्ति पर निर्भर करता है पर पौषध करने वाले को समय पर्याप्त मिल जाता है, इसमे तो दो राय नही। तो तप करने का मतलब यह है कि साधना के लिये अधिकाधिक समय मिले, प्रमाद घटे। जितना समय मिले उसे सामायिक, स्वाध्याय, चिन्तन, मनन, ध्यान आदि द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना मे लगाय, इसीलिये बाह्य तप को आध्यात्मिक साधना का साधन बताया गया है।

लेकिन लोगो ने किया क्या ? केवल बाह्य तप को ही पकड लिया और भीतर के तप को आभ्यन्तर तप को, जो कि मूल लक्ष्य है, उसे धक्का देकर, गर्दनिया दे कर बाहर निकाल दिया और कहने लगे—"मैं तो उपवास मे हू, पूरी तपस्या मे हू, माला क्यू फेरू, तपस्या सू बढ कर भी है काई कोई ?" पर माई के लाल सोचे कि तपस्या कैसी ? केवल भोजन छोड कर ही सतोष कर लिया और कह दिया—तपस्या है। भोजन क्यो छोडा ? ज्ञानादि के आराधन के लिये समय मिले, इसीलिये तो भोजन छोडा न। आहार करना किसलिये छोडा जाता है ? आहार छोडने के भगवान् ने ६ कारण बताये हैं —

छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गथे आहार वोच्छिदमाणे णाइकम्मइ, त जहा —

आयके उवसग्गे, तितिक्खणे बभचेरगुत्तीए।
पाणिदया तवहेउ, सरीरवुच्छेयणट्ठाए ॥

इन ६ कारणो से आहार छोडना होता है। शास्त्र मे आहार ग्रहण करने के भी ६ ही अन्य कारण बताये हैं। अगर साधक को साधना करते-करते निराहार रहने के कारण बाईटे आने लग जाय, शरीर मे इतनी अधिक निर्बलता आ जाय कि वह प्रतिक्रमण भी न कर सके, तो उस असमाधि को दूर करने के लिए भगवान् ने कहा है कि साधक आहार ग्रहण करे। आहार ग्रहण करने के कारणो मे भी यही है कि साधना अच्छी तरह चलती रहे, शरीर को ठीक ढग से साधना करने के योग्य बनाये रखे।

आहार छोडने के जो ६ कारण बताये गये है, उनमे पहला कारण बताया है—"आयके" अर्थात् शरीर मे रोग हो जाय। रोग ऐसा हो कि कुछ ही क्षणो मे अथवा कुछ समय के विलम्ब से प्राणो का अन्त कर दे। इस प्रकार अकस्मात् ही प्राणान्तकारी रोग की सभावना हो तो सच्चा साधक हाय-हाय करके नही मरता, वह सामी छाती करके (सीना तान कर) मरता है। जो सच्चा सैनिक होगा, वह रणागण मे जूझते हुए मर जायगा पर कभी पीठ नही

दिखावेगा। इसी तरह भगवान् महावीर के भक्त, चाहे वह साधु हो, श्रावक हो चाहे श्राविका हो, वे समाधिपूर्वक बडे धैर्य और शौर्य के साथ मृत्यु का वरण करते हैं। कर्जा देने वाला कर्ज वसूल करने आया हो और कर्जदार पीठ दिखा कर भाग जाय, इसमे उसका साहूकारा नही रहता। जो साहूकार होगा वह कर्ज वसूल करने के लिए आये हुए को देखकर पीठ नही दिखायेगा। यदि उसकी कर्जा चुकाने की ताकत होगी तो उसी समय कर्जा चुकायेगा। यदि उस समय कर्जा चुकाने की स्थिति मे नही होगा तो हाथ जोड कर कर्ज मागने वाले को मनावेगा, मुद्दत मागेगा अथवा खन्दिया बाध देगा। नकद चुकाने वाले तो कम मिलेंगे। कर्जा लम्बा है, रकम बडी है, तो बडी रकम को देने का इलाज क्या है ? धन्धे मे फस गया है पर मन मे साहूकार है तो कर्ज की रकम की खन्दिया कर देता है, किश्तें बाध देता है। उसने हाथ जोड कर, अपनी कमजोर स्थिति बता कर यह रास्ता निकाला, तो उसको कोई खराब नीयत वाला तो नही कहेगा। इसी तरह कर्म का कर्जा चुकाने के लिये सहर्ष उद्यत रहना, समभाव से कर्म के उस कर्ज को चुकाना ही शूरवीरता है। जो कर्म पहले स्वय ने किया है, वह उदय मे आवे, भोगावली कर्म उदय मे आ कर कर्ज वसूल करने आवे और उस समय मन्त्रवादी, यत्रवादी, तन्त्रवादी अथवा वैद्य को पकड कर छूट भागे, तो यह कायरता होगी।

कर्म का कर्ज चुकाने के लिये भी आहार का त्याग करना चाहिये। इसलिये आहार त्याग करने का पहला कारण बताया गया है—"आयके"—अर्थात् आतक हो गया है, रोग हो गया है और साधक को विश्वास हो गया है—"इस रोग के कारण कही मैं कल ही न चला जाऊ।" तो उस समय साधक आहार का त्याग कर तपस्या कर लेता है।

आहार-त्याग का दूसरा कारण बताया है—"उवसग्गे"। किसी प्रकार का प्राणान्तक उपसर्ग उपस्थित हो जाय तो साधक को आहार का त्याग कर देना चाहिये। भगवान महावीर के श्रावक सुदर्शन पर भी उपसर्ग आया, अर्जुन माली मुद्गर उठाकर सुदर्शन पर प्रहार करने के लिये उसकी ओर दौडा। सुदर्शन ने तत्काल ही,

जब तक कि उपसर्ग टल न जाय, तब तक के लिये समस्त सावद्य कर्मो का और आहारादि का परित्याग कर अपना मन प्रभुस्मरण में लीन कर दिया। ऐसे समय मे सुदर्शन यदि रोता, पीठ दिखा कर भागता तो क्या होता ? वह मरता अथवा नही मरता, यह एक अलग बात है पर आज जो रुतबा सुदर्शन का है, वह नही रहता। सुदर्शन दृढधर्मी बनकर उपसर्ग के समक्ष अडा रहा, यही कारण है कि ढाई हजार से अधिक वर्ष बीत जाने पर भी आज तक सुदर्शन का नाम बडी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इसलिये प्रत्येक जैन को दृढधर्मी बनने का प्रयास एव अभ्यास करना चाहिये। प्रियधर्मी बनना भी ठीक है पर प्रियधर्मी कठिन परीक्षा के समय फेल (अनुत्तीर्ण) हो सकता है और दृढधर्मी अन्त तक पास (उत्तीर्ण) ही होता है। आपको कोई भी नियम लेने के लिये कहा जाय तो आप यही कहते है—"बावजी ! सजे कोनी ।" इसके उपरान्त समझाने-बुझाने पर कोई नियम लेंगे तो कहेगे—"बावजी ! साजमादरा आगार है ।" हर समय इस प्रकार की कमजोर मनोवृत्ति रखना अच्छे साधक के लिये उचित नहीं है। कभी कहीं राज का उपसर्ग आ जाय, अन्य किसी भी प्रकार का उपसर्ग आ जाय, तो उस समय दृढधर्मी सच्चा साधक हाय-हाय करके मरने की बजाय बहादुरी से उस आपत्ति का मुकाबला करता है। सुदर्शन श्रेष्ठि का उदाहरण आपके समक्ष है। इस प्रकार के सावधिक अनशन अथवा सथारे को शास्त्रीय भाषा मे इत्वर की सज्ञा दी गई है। इत्वर थोडे काल के लिये होता है।

आहारत्याग का तीसरा कारण तितिक्षा बताया गया है। तितिक्षा का अर्थ है-कष्टसहन। हम पौरुषी नही कर सकते। प्रात काल जब कभी दूध नाश्ता थोडी देर से मिला तो स्वाध्याय मे, किसी काम मे मन नही लगा। ऐसी असहिष्णुता हो, उसको हटाने के लिये धीरे-धीरे तपस्या को बढाने का अभ्यास किया जाय। पहले नवकारसी करे, तदन्तर पौरुषी करे, फिर कभी डेढ पौरुषी करे। दो चार बार इस प्रकार छोटा-मोटा तप कर लिया तो कष्टसहन की क्षमता आ जायगी। यदि कभी कही मेहमानदारी मे चले गये और वहा १२ बजे भोजन मिला, तो भी भूख से मन छटपटायगा नही।

जो इस प्रकार की प्रेक्टिस नही करता, वह सवत्सरी आयेगी तो हर्षित होने के स्थान पर चिन्तित होगा। जोधपुर मे पहले एक वृद्ध श्रावक थे, जो बडे मजाकी थे। वे सवत्सरी के प्रसग पर कहा करते थे—"अरे! सब मर गया, खप गया, पण इण सवत्सरी ने मौत नही आई इण दिन तो उपवास करणो ही पडेला।" उनको सवत्सरी के अवसर पर फिक्र इसलिये लगी रहती थी कि उनको उपवास का अभ्यास नही था। विचार कर देखा जाय तो व्यवहार मे भी यह तपस्या का अभ्यास बडा फायदेमन्द होगा। जिसे तपस्या का अभ्यास होगा, वह यदि कभी दूसरे गाव गया, परदेश गया, अथवा महमान बनकर गया तो विलम्ब से भोजन मिलने पर भी तडपेगा नही। इसके अतिरिक्त तपस्या के अभ्यास का एक बडा लाभ यह है कि तपस्या करने वाला साधारणत किसी रोग का शिकार नही होगा। तपस्या के अभ्यास के बिना कोई व्यक्ति किसी अन्य के भूख के कष्ट को कैसे समझेगा? जब वह दो तीन दिन भूखा रहेगा, तब समझेगा कि भूख की व्यथा कैसी असह्य होती है। उस स्थिति मे वह किसी भूखे व्यक्ति से काम लेने मे भी हिचकिचायेगा। खिला-पिला देने के पश्चात् ही वह किसी भूखे व्यक्ति से काम लेगा।

तप के पीछे मूल उद्देश्य यह है कि हमारे अन्त करण मे आभ्यन्तर अध्यात्म-साधना की प्रवृत्ति अकुरित हो, विकसित हो। आभ्यन्तर साधना को बढाने के लिये तप वस्तुत साधन है। पर आज सामान्यत वस्तुस्थिति यह है कि तप का केवल बाहरी रूप ही रह गया है, भीतर का रूप प्राय चला सा गया है। और इस प्रकार शरीर मे से प्राण निकल कर पिंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है। किसी व्यक्ति के शरीर मे से प्राण निकल जाय तो केवल लाश ही पीछे रह जाती है। लाश का क्या किया जाता है, यह आपसे किसी से छुपा नही।

आत्म-निरीक्षण

इन पर्व के दिनो मे हमे यह प्रयास करना है कि जीवन मे जहा, जहा कमजोरिया आई हैं, उन कमजोरियो को दूर करे। कमजोरियो का आना सभव है। लम्बे समय तक खुराक नही मिलने

से, लम्बे समय तक नही सम्हालने से और साधक द्वारा साधना का अभ्यास न किये जाने की दशा मे भी कमजोरिया आ जाती हैं। उन कमजोरियो को दूर करने के लिये पर्वाधिराज का यह पावन प्रसग है। इसलिये हम इन पर्व के दिनो मे शान्त चित्त हो बैठ कर सोचें, चिन्तन-मनन करें, पर्यालोचन करें—"मेरे ज्ञान मे, दर्शन मे अथवा चारित्र मे कोई दोष तो नही है, अगर दोष है तो क्या क्या हैं, मेरे जीवन मे क्या-क्या दोष हैं?" इस प्रकार के चिन्तन-मनन और पर्यालोचन के पश्चात् हम उन दोषो को दूर करने का पूरी शक्ति लगा कर प्रयास करें। तभी हमारा पर्वाराधन हमारे लिये श्रेयस्कर सिद्ध हो सकेगा।

अभ्यासजन्य एव अनभ्यासजन्य ज्ञान

अपने ज्ञान सम्बन्धी दोषो पर विचार करते समय यह ध्यान रखना है कि एक ज्ञान तो मिलता है और दूसरा ज्ञान मिलाया जाता है। ज्ञान मिलते कौन-कौन से है? अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान—ये तीनो प्रकार के ज्ञान मिलते हैं, मिलाये नही जाते। क्या इन तीनो प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति के लिये अभ्यास करना पडता है? नही। इनके लिये वाचना, पृच्छना एव पठन-पाठन आदि का अभ्यास नही करना पडता। श्रुतज्ञान ऐसा ज्ञान है, जिसे मिलाया जाता है। श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिये अभ्यास करना पडेगा, प्रयास करना पडेगा। पढना, पुनरावर्तन करना, वाचना पृच्छना—ये सब श्रुतज्ञान से सम्बन्धित हैं, अवधि, मन पर्यव और केवल्य—इन तीन प्रकार के ज्ञान से अभ्यास, वाचन आदि का कोई सम्बन्ध नही। इन तीनो मे अभ्यास की कोई अपेक्षा नही है। क्यो कि ये तीनो ज्ञान क्षयोपशम और क्षय से होते अर्थात् अवधि और मन पर्यव ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से तथा केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय से दर्शनावरणक्षयजन्य केवलदर्शन के साथ उत्पन्न होता है।

ज्ञान के अतिचार तथा आचार

श्रुतज्ञान जो कि मिलाया जाता है, उस ज्ञान के १४ तो हैं अतिचार और ८ हैं आचार। ज्ञान के आठ आचारो को जानने वाला

इस सभा मे शायद ही कोई भाई मिले। आचार का अर्थात् ज्ञानाचार का अर्थ है—ज्ञान मिलाने की विधि। किस विधि से ज्ञान सीखना, किस तरीके से सीखे हुए ज्ञान को सुरक्षित रखना, इस विधि का नाम है आचार। आचार ८ प्रकार का है। १४ प्रकार के जो ज्ञान के अतिचार हैं, उनको देखने से भी आप जान सकेंगे कि वे श्रुतज्ञान से सम्बन्धित अतिचार हैं। तो हमे पर्युषण के दिनो मे सोचना है कि हमने ज्ञान के इन अतिचारो का सेवन तो नहीं किया है। ज्ञान के अतिचारो को देखने और उन पर विचार करने से आपको पता चल जायगा कि आपने वस्तुत उन अतिचारो का सेवन किया है और कर रहे हैं। क्या आपने अपने बच्चो और बच्चियो को धार्मिक ज्ञान देने की ओर रुचि लेकर उनका धार्मिक ज्ञान बढाने का प्रयास किया है ? जो लोग पहले लडकियो को पढाना ठीक नही मानते थे, वे भी जमाने की जरूरत समझ कर कि अगर लडकिया पढी-लिखी नही होगी तो, उनका सम्बन्ध नही होगा, लडकियो को पढाना शुरू कर दिया। पढाकर उन्हे बी ए, एम ए कराया।

(तपस्या का प्रत्याख्यान करने के लिये आई हुई कतिपय तपस्विनियो के साथ महिलाओ के समूह को देखकर, उन्हे लक्ष्य करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया)

बहनें पर्वाधिराज के दिनो मे बडी-बडी तपस्याए करके भी घूमती हैं, इसलिये मुझे कहना पडता है—काले तो कम से कम इण तरह फेरी रो मौको नही आवे।

हा, तो मैं कह रहा था, आप लडकियो को पढाने लगे। मेट्रिक, बी ए, एम ए, समाजशास्त्र मे, अर्थशास्त्र मे और फिलोसोफी मे एम ए, पीएच डी करने वाली लडकिया मिलती है। आपने लडकिया पढाना तो शुरू किया पर उन्हे पढाया क्या ? वही पेट के लिये कमाने की विद्या। कमाने की इतनी विद्या इनको पढाने की क्या आवश्यकता थी ? अहमदाबाद मे काम करने वाले लडके मेट्रिक से अधिक नही पढे हैं, पर वे आज लाखो की सम्पत्ति के मालिक बने बैठे हैं। हनुमानजी ! कितनी किताब पढे ? बडे-बूढो को नमस्कार-मन्त्र बोलने का कहा जाय तो वे शुद्ध रूप से

से, लम्बे समय तक नही सम्हालने से और साधक द्वारा साधना का अभ्यास न किये जाने की दशा मे भी कमजोरिया आ जाती है। उन कमजोरियो को दूर करने के लिये पर्वाधिराज का यह पावन प्रसग है। इसलिये हम इन पर्व के दिनो मे शान्त चित्त हो बैठ कर सोचें, चिन्तन-मनन करें, पर्यालोचन करे—"मेरे ज्ञान मे, दर्शन मे अथवा चारित्र मे कोई दोष तो नही है, अगर दोष हैं तो क्या क्या हैं, मेरे जीवन मे क्या-क्या दोष हैं ?" इस प्रकार के चिन्तन-मनन और पर्यालोचन के पश्चात् हम उन दोपो को दूर करने का पूरी शक्ति लगा कर प्रयास करे। तभी हमारा पर्वाराधन हमारे लिये श्रेयस्कर सिद्ध हो सकेगा।

अभ्यासजन्य एव अनभ्यासजन्य ज्ञान

अपने ज्ञान सम्बन्धी दोषो पर विचार करते समय यह ध्यान रखना है कि एक ज्ञान तो मिलता है और दूसरा ज्ञान मिलाया जाता है। ज्ञान मिलते कौन-कौन से हैं ? अवधिज्ञान, मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान—ये तीनो प्रकार के ज्ञान मिलते हैं, मिलाये नही जाते। क्या इन तीनो प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति के लिये अभ्यास करना पडता है ? नही। इनके लिये वाचना, पृच्छना एव पठन-पाठन आदि का अभ्यास नही करना पडता। श्रुतज्ञान ऐसा ज्ञान है, जिसे मिलाया जाता है। श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिये अभ्यास करना पडेगा, प्रयास करना पडेगा। पढना, पुनरावर्तन करना, वाचना पृच्छना—ये सब श्रुतज्ञान से सम्बन्धित है, अवधि, मन पर्यव और केवल्य—इन तीन प्रकार के ज्ञान से अभ्यास, वाचन आदि का कोई सम्बन्ध नही। इन तीनो मे अभ्यास की कोई अपेक्षा नही है। क्यो कि ये तीनो ज्ञान क्षयोपशम और क्षय से होते अर्थात् अवधि और मन पर्यव ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से तथा केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्म के पूर्ण क्षय से दर्शनावरणक्षयजन्य केवलदर्शन के साथ उत्पन्न होता है।

ज्ञान के अतिचार तथा आचार

श्रुतज्ञान जो कि मिलाया जाता है, उस ज्ञान के १४ तो हैं अतिचार और ८ हैं आचार। ज्ञान के आठ आचारो को जानने वाला

इस सभा मे शायद ही कोई भाई मिले। आचार का अर्थात् ज्ञानाचार का अर्थ है—ज्ञान मिलाने की विधि। किस विधि से ज्ञान सीखना, किस तरीके से सीखे हुए ज्ञान को सुरक्षित रखना, इस विधि का नाम है आचार। आचार ८ प्रकार का है। १४ प्रकार के जो ज्ञान के अतिचार है, उनको देखने से भी आप जान सकेंगे कि वे श्रुतज्ञान से सम्बन्धित अतिचार हैं। तो हमे पर्युषण के दिनो मे सोचना है कि हमने ज्ञान के इन अतिचारो का सेवन तो नहीं किया है। ज्ञान के अतिचारो को देखने और उन पर विचार करने से आपको पता चल जायगा कि आपने वस्तुत उन अतिचारो का सेवन किया है और कर रहे हैं। क्या आपने अपने बच्चो और बच्चियो को धार्मिक ज्ञान देने की ओर रुचि लेकर उनका धार्मिक ज्ञान बढाने का प्रयास किया है? जो लोग पहले लडकियो को पढाना ठीक नही मानते थे, वे भी जमाने की जरूरत समझ कर कि अगर लडकिया पढी-लिखी नही होगी तो, उनका सम्बन्ध नही होगा, लडकियो को पढाना शुरू कर दिया। पढाकर उन्हे बी ए, एम ए कराया।

(तपस्या का प्रत्याख्यान करने के लिये आई हुई कतिपय तपस्विनियो के साथ महिलाओ के समूह को देखकर, उन्हे लक्ष्य करते हुए आचार्य श्री ने फरमाया)

बहनें पर्वाधिराज के दिनो मे बडी-बडी तपस्याए करके भी घूमती है, इसलिये मुझे कहना पडता है—काले तो कम से कम इण तरह फेरी रो मौको नही आवे।

हा, तो मैं कह रहा था, आप लडकियो को पढाने लगे। मेट्रिक, बी ए, एम ए, समाजशास्त्र मे, अर्थशास्त्र मे और फिलोसोफी मे एम ए, पीएच डी करने वाली लडकिया मिलती है। आपने लडकिया पढाना तो शुरू किया पर उन्हे पढाया क्या? वही पेट के लिये कमाने की विद्या। कमाने की इतनी विद्या इनको पढाने की क्या आवश्यकता थी? अहमदावाद मे काम करने वाले लडके मेट्रिक से अधिक नही पढे है, पर वे आज लाखो की सम्पत्ति के मालिक बने बैठे हैं। हनुमानजी! कितनी किताब पढे? बडे-बूढो को नमस्कार-मन्त्र बोलने का कहा जाय तो वे शुद्ध रूप से

बोल नही सकेंगे, लिख नही सकेंगे। पर कमाने के धन्धे मे कितने पारगत हैं ! आने वाले का तो पट्टा ही साफ कर देंगे। राणामल अन्याव ! पढाई कठा ताई करी ?

एक लडके अथवा लडकी को कोई वी ए कराना चाहे तो ५-१० हजार तो खर्च हो जाते होंगे ? नही, इतने मे पार नही पडेगा। पर जो वच्चिया-वच्चे हमारे जैन कुल मे उत्पन्न हुए हैं, उनको धार्मिक शिक्षा देना, प्रतिक्रमण सिखाना, दशवैकालिक आदि पढाना क्या आपने जरूरी समझा है ? अगर आप मुझे मौका दे और धोरी घरो की परीक्षा लू तो आपको पता चलेगा कि समाज के धोरियो के कई वच्चे-वच्चियो को नमस्कार मत्र भी नही आता। उन्हे नमस्कार मत्र का अर्थ पूछ ले तो और भी मुश्किल होगी। इस ओर आप लोगो की इतनी उपेक्षा है आज के युग में। जवकि एक ओर पश्चिम के व्यक्ति, पश्चिम के विज्ञानवेत्ता आसमान के ग्रहो की खोज कर रहे है और दूसरी ओर हम अपने घट में रहे आत्मा की, खोज तो रही दूर, आत्मज्ञान से अपने वच्चो को वचित रख आत्मदेव की पूर्णत उपेक्षा कर रहे हैं। चन्द्र और मगल की खोज वस्तुत पर-घर की खोज है, पर-घर की चर्चा है। उसे जान लिया तो क्या और नही जाना तो क्या ? हम तो अपने आप को ही भूले वैठे हैं। -

स्वय को न भूलो, सब परेशानी दूर हो जायगी

यह तो वही मिसाल हुई कि एक गाव के १० साथी सैर के लिये निकले। वे एक वाटिका में पहुचे और एक दूसरे से कहने लगे-"हमें अपनी गिनती कर लेनी चाहिये कि हम पूरे दस है कि नही। रास्ते में हममे से कोई गायव तो नही हो गया है ?" उनके मुखिया ने अपने साथियो की गिनती की और वडे चिन्तातुर स्वर में कहा—"अरे ? गजव हो गया, हम तो ९ ही हैं। गाव से १० साथी निकले थे। एक साथी रास्ते में गायव हो गया।" क्रमश उन सवने अपने साथियो की गिनती की पर गणना में सव की गाडी ९ की सख्या पर आकर रुक गई। वे सव के सव वडे परेशान और वहुत दु खित

हुए। पास ही एक वयोवृद्ध अनुभवी व्यक्ति खडा था। उसने उन लोगो से हैरानी का कारण पूछा। अपनी परेशानी का कारण बताते हुए सबने एक स्वर मे कहा–"हम घर से १० साथी निकले थे पर यहा हम ९ ही हैं, हमारा एक साथी गायब हो गया है।" उस व्यक्ति ने उन साथियो पर दृष्टिपात करते हुए मन ही मन गणना की तो पाया कि पूरे दस ही हैं, ९ नही। उसने १० मे से एक साथी को कहा–"मेरे सामने अपने साथियो की गिनती करो।"उसने पहले की तरह ही गणना कर कहा–"हम नौ ही तो हैं।" उस वयोवृद्ध ने उन्हे समझाते हुए कहा–"बुद्धिसागरो ! तुम मे से प्रत्येक ने अपने दल की गणना करते समय स्वय को भुला दिया है। अपने आपको मत भुलावो। तुम्हारी सारी परेशानी दूर हो जायगी।" भद्र पुरुष की बात समझ मे आ गई। उन्होने जब अपने आपको नही भुलाया तो, उनकी सारी परेशानी दूर हो गई। आप लोग भी हवेली मे बैठ कर गिनती करते हैं कि नोट कितने हैं, चांदी के थाल कितने हैं, कटोरिया कितनी है, पलग, पथरने, रजाइया, थाल, बाजोट आदि कितने-कितने हैं ! आप यह सब गिनती तो करते है, पर आप स्वय को भूले बैठे है।

वे स्वर्णिम दिन याद करो

आप अपनी ओर नही देखते कि आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र की क्या स्थिति है, शासनतन्त्र मे, राष्ट्र मे और सर्व-साधारण जन समाज में पहले आपके पूर्वजो की क्या स्थिति थी और आज आपकी क्या स्थिति है। इस पावन पर्वाधिराज के प्रसग पर आप यह भी सोचें कि व्यावहारिक दृष्टि से भी पहले जैन कहा थे और आज कहा आ गये है। प्रथम चक्रवर्ती के समय से लेकर आज से दो सौ, ढाई सौ वर्ष पहले तक भारतीय सम्राटो के समय में अकबर आदि विदेशी शासको के समय में जैन कहा थे, राज्यसत्ता में जैनो का कहा स्थान था, सर्वसाधारण में, ग्रामो मे, नगरो मे, बाजार मे जैनो का कैसा रुतबा था। इस सब इतिहास को टटोलेंगे तो आपको पता चलेगा कि जैन कहा थे और कहा पहुच गये है। किसी भी राजा, महाराजा अथवा सम्राट् को कोई भी काम करना होता था तो नगर की अन्यान्य सभी ३५ जातिया एक तरफ और

महाजन की अकेली जाति एक तरफ। उस काम के लिये अन्य ३५ कौमो को नही पूछा जाता था। वादशाहो तक के समय मे जैनो का, महाजन कौम का शासन-सत्ता मे इतना सम्मान, ऐसा रुतवा, ऐसा वर्चस्व था कि शासक वर्ग से लेकर सर्वसाधारण तक मे एक लोकप्रिय कहावत प्रचलित हो गई थी—"पहले शाह, फिर वादशाह" आपको आत्मशुद्धि के लिये साधना, चिन्तन-मनन करते समय यह देखना है कि आपके आत्मगुण कहा हैं।

वाडमेर जिले के वी ए एम ए, एलएल वी वकीलो आदि को गिनती करे तो पाच, सात वकील तो आपके यहा मिल जायेंगे। आज धाराशास्त्री वकील दूसरो की पैरवी करने वाले तो हैं पर सोचे कि तुम्हारी स्वय की पैरवी कौन करेगा? चन्द वर्षों से समाज के सद्‌भाव से आपके यहा एक छोटा सा धार्मिक स्कूल चल रहा है। छोटी उम्र के वच्चे, वच्चियो को वहा धार्मिक शिक्षण दिया जाता है। पर क्या आप इतने से धार्मिक शिक्षण से ही सतोष कर लेना चाहते हैं? एक तो अभी यह (भोपालगढ का) वच्चा वोला। वच्चे के वोलने के ढग को देखकर आपके मन मे भी वोलने की हलचल मची क्या? वालोतरा मे इस तरह से बोलने वाला कोई है क्या? आपको अहमदावाद मे लाखो की इन्कम करने वाले ही वच्चे चाहिये या इस तरह वोलने वाले वच्चे भी? वालोतरा मे क्या कोई इस तरह का वच्चा है? क्यो नही है? इसलिये नही है कि आपने अर्थ मिलाना तो सीखा है पर ज्ञान मिलाना अभी तक नही सीखा। छात्रावास यहा पर भी है। वहा शिक्षा के लिये वाहर से आने वाले वच्चो को रहने, खाट विछोने आदि का आराम मिलता है। पर समाज ने आज तक यह नही सोचा कि छात्रावास मे धार्मिक शिक्षण का भी प्रवन्ध किया जाय। सभवत आप छात्रावास मे धार्मिक शिक्षण का प्रवन्ध न किये जाने के सम्वन्ध मे यह कहें कि वहा तीनो सम्प्रदायो के छात्र हैं। पर यह कह कर आप अपने इस पवित्र उत्तर-दायित्व से नही वच सकते। रानी वगैरह मे भी तीनो सम्प्रदायो के छात्रो को तीनो सम्प्रदायो का धार्मिक शिक्षण दिया जाता है। पर्व के दिनो मे स्थानक वाले स्थानको मे और मन्दिरो को मानने वाले मन्दिरो मे जाते हैं पर आप उन्हें मन्दिरो और स्थानको मे—दोनो मे

ही जाते देखते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि आपके यहा हजारो की बिल्डिंग छात्रावास की है पर बालोतरा के श्रीमन्तो ने अपने समाज के बच्चे-बच्चियो को धार्मिक शिक्षण देने, उनमे धार्मिक भावना विकसित करने की ओर अब तक ध्यान ही नही दिया है। यही कारण है कि आपके बच्चे हजारो लाखो कमाने वाले मिल सकते हैं पर धार्मिक शिक्षा मे वे अभी तक पिछडे हुए ही हैं। तो आपको इस पर्वाधिराज के प्रसग पर आत्मालोचन करते समय इस बात पर भी चिन्तन करना है कि हम ज्ञान के क्षेत्र मे कहा थे और आज कहाँ चले गये हैं। यह तो हुई आत्मा के प्रथम गुण ज्ञान की बात।

दर्शन गुण को विशुद्ध करना

अब मैं आत्मा के दर्शन-गुण की बात कहू। बालोतरा के पास ही नाकोडाजी तीर्थ आ गया है। वहा दूर-दूर के दर्शनार्थी बडी सख्या मे आते रहते हैं। नाकोडाजी मे मूल मन्दिर पार्श्वनाथ प्रभु का है, जिनके चरणो मे बैठ कर भैरू नाथ की महिमा बढी। भैरू नाथ का महत्व स्वतत्र नही है। अगर भैरू नाथ का स्वतन्त्र महत्व होता तो हजारो जगह भैरू जी हैं, गाव गाव मे भैरू जी हैं, आपके यहा बालोतरा के अनेक मोहल्लो मे भी भैरू जी के स्थान मिलेंगे, उनका तो इतना महत्व नही है। यदि भैरू नाथ का स्वतन्त्र ही बडा महत्व होता तो इन हजारो स्थानो पर जो भैरू जी हैं, उनके वहा भी बडी सख्या मे दर्शनार्थी आते। पर वस्तुत ऐसा नही है। तो मेरी यह मान्यता है कि नाकोडाजी तीर्थस्थान मे भगवान् पार्श्वनाथ के पीछे भैरू जी का महत्व है। आपके बालोतरा की गलियो मे कितने भैरू जी है? क्या वहा सोना बरसता है ? नही। इससे साधारण व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि नाकोडाजी मे जो भैरू नाथ का महत्व है, वह स्वतत्र नही, अपितु पार्श्वनाथजी के पीछे है। एक बार मैं नाकोडाजी मे ठहरा हुआ था। भैरू जी के घी की बोली लगी तो १९-२० हजार तक पहुच गई और पार्श्वनाथजी के घी की बोली उससे कई गुना कम रह गई। मैंने सोचा भैरू जी की बोली इतनी ऊची और पार्श्वनाथजी की बोली इतनी कम, यह कैसी आश्चर्य की बात है।

दर्शन मे दाग लगा। श्रद्धा स्वैर मत बनो

तो मेरे कहने का मतलब यह है कि ऐसी स्थिति मे आपकी

की वह ताकत दृष्टिगोचर नही होती। दूसरी ओर जैन है, पर मद्य-पान करता है, गोल-गोल (अण्डे) खाता है, उसको खाना खाते समय एक ही थाली में साथ बैठा लेंगे। बालोतरा मे ओसवालो के अति-रिक्त और दूसरे भाई भी जैन होगे, दूसरे भाई भी आपके यहा सत्सग में आते होगे ? क्या आप उनको भी कभी याद करते हैं ? यहा हमने पहले चातुर्मास किया था, उस समय का तो मुझे खयाल नही पर इस बार सुना कि पर्व के प्रसग पर तपस्या के उपलक्ष मे आपके यहा लड्डू बाटे जाते हैं। वे लड्डू ओसवालो के घरो मे ही जाते हैं या आपके यहा सत्सग मे भाग लेने वाले सभी लोगो के घरो मे जाते हैं ? दूसरो के यहा नही जाते। तो इसका यही मतलब हुआ कि आपने धर्म का सही अर्थ नही समझा। रोज मिठाई खा-खा कर जिनके पेट फुल (Full) हो गये हैं, उनको तो आप मिठाई खिलाओ और जो रात दिन आपके यहा सत्सग मे भाग लेते हैं, उन लोगो को ऐसे अवसर पर याद तक नही करते, उनका नाम तक नही लेते, क्या यह उचित है ? आपके इस प्रकार के व्यवहार से तो दूसरे लोग आपके यहा आयेंगे कैसे, बैठेंगे कैसे और टिकेंगे कैसे ?

इस प्रकार की बहुत सी कमिया हैं, जिन-शासन के हित को दृष्टि मे रखते हुए, उन कमियो को दूर करना है। साधुओ का काम तो कहने का है, मार्गदर्शन करने का है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की इन कमियो को दूर कीजिये। पर्वाधिराज के इन पावन दिनो मे पूर्णत आत्मनिरीक्षण कर इन सब कमियो को दूर करने के साथ-साथ अपने स्वय के और समाज के ज्ञान, दर्शन, चारित्र को शुद्ध सम्यक्त्व के सुदृढ पाये पर खड़ा कर जिन-शासन की सेवा करेंगे तो आपका इहलोक एव परलोक सुधरेगा और आप अक्षय आनन्द के भागी बनेंगे।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

मुकन भवन, बालोतरा,
दिनाक २८-८-७६

पुस्त -प्राप्ति-स्थान :

1 शाह मोतीलाल लालचन्द
एल के ट्रस्ट बिल्डिंग
रेवाडी बाजार
अहमदाबाद–२

दूरभाष
कार्यालय 31808
आवास • 65837

2 शाह महेन्द्र कुमार लालचन्द
आनन्द क्लॉथ मार्केट
सारगपुर गेट के सामने
अहमदाबाद–२

3 शाह लाल चन्द श्री श्रीमाल
४० अब्दुल गिरि सोसायटी,
रामबाग रोड, साबरमती
(अहमदाबाद ५)

दूरभाष • 65837

4 श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ,
बालोतरा (राजस्थान)

5 सम्यग्ज्ञान-प्रचारक मण्डल,
बापू बाजार, जयपुर-३